महताबरायके प्रबन्धसे
ज्ञानमण्डल यन्त्रालयमें मुद्रित।

विषय-सूची ।

प्रथम खण्ड

(प्राचीन भारतवर्ष)

द्वितीय खण्ड

(राजपूत तथा मुगल शासक)

तृतीय खण्ड

(मराठा साम्राज्य)

चतुर्थ खण्ड

(सिक्ख राज्यकी उत्पत्ति)

पंचम खण्ड

(प्रथम भाग)

(अंग्रेजोंकी बल-वृद्धि)

(द्वितीय भाग)

(अंग्रेजी शक्ति उन्नतिके शिखरपर)

लेखक अपने गुणोंको बढ़ाकर अपने लिये स्तुति तथा अपने मनुष्योंमें उत्साहका भाव उत्पन्न करते हैं वहाँ वे पराजित जातिकी निर्बलताओं और अवगुणोंपर ज़ोर देकर उसके हृदयसे देशभक्तिका भाव हटानेका प्रयत्न करते हैं।' भारतके सरकारी स्कूलों तथा कालेजोंमें इस देशके इतिहासकी जो पुस्तकें पढ़ायी जाती हैं उनमें हमारे प्राचीन या मध्यकालीन राजनीतिक एवं सामाजिक उत्कर्षका, हमारे पूर्वजोंके उच्च संस्कारों, विचारों या कार्योंका, अथवा उनकी योग्यताका बहुत कम उल्लेख रहता है। यह सत्य है कि जातिके दोषों या कमज़ोरियोंको छिपानेकी चेष्टा निन्द्य और हानिकारक है, किन्तु साथही उनपर अत्यधिक ज़ोर देना, उन्हें बढ़ाकर प्रकट करना, अथवा झूठमूठ ही गढ़ लेना भी उतनाही जघन्य और आपत्तिजनक है। यही विचार कर लेखकने प्रस्तुत पुस्तकमें अंग्रेजीके इतिहासों या उन्हींके ढंगपर लिखे गये हिंदी इतिहासोंमें पाये जानेवाले इस दोषसे बचनेकी चेष्टा की है।

उपर्युक्त दोनों बातें ध्यानमें रखनेसे पुस्तककी अनेक विशेषताएँ समझमें आ जायँगी। *जातीय दृष्टिसे लिखी जानेके ही कारण इसमें राजपूतों, मराठों, तथा* सिक्खोंके अभ्युत्थान और पतनका, अन्य पुस्तकोंकी अपेक्षा, अधिक विस्तृत वर्णन किया गया है। आक्रमण करनेवालों या शासकोंके युद्धों इत्यादिको विशेष महत्त्व न देनेके कारण ही पृष्ठ १४ पर महमूदके सब आक्रमण नहीं दिये गये हैं। दास, खिलजी, तुगलक इत्यादि वंशोंके शासकों तथा बाबर, हुमायूँ, जहाँगीर इत्यादि बादशाहोंका वर्णन एक एक दो दो प्रस्तरोंमें ही समाप्त कर दिया गया है। अनेक गवर्नर जनरलोंके सम्बन्धमें भी यही कहा जा सकता है। किन्तु राजपूतोंके साथ अकबरके, मराठोंके साथ औरंगज़ेबके, तथा मराठों और सिक्खोंके साथ अंग्रेज़ोंके संघर्षका, उसी प्रकार संवत् १९१४ के 'सिपाही-विद्रोह' का विशेष विवरण दिया गया है।

अन्तमें हम इतना और कह देना चाहते हैं कि लेखकद्वारा प्रयुक्त नामोंमें हमने यथा-सम्भव कोई परिवर्तन नहीं किया है। हाँ, कहीं कहींपर कोष्ठकमें उनके शुद्ध रूप अवश्य दे दिये हैं। लिखित पुस्तकमें प्रकरण विभाग न था, अतः हमने समस्त पुस्तकको पाँच खण्डों और कुल ४३ प्रकरणोंमें बाँटनेका जो प्रयत्न किया है, सम्भव है उसमें कई त्रुटियाँ रह गयी हों, क्योंकि ऐसी अवस्थामें ठीक ठीक विषय-विभाग करना और इस बातका ध्यान रखना कि एक प्रकरणका सम्बन्धित विषय दूसरे प्रकरणमें न आने पावे, बड़ा असुविधाजनक कार्य है। आशा है इतिहासके मर्मज्ञ विद्वान् इन सब त्रुटियोंके लिये हमें क्षमा करेंगे।

मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव।

प्रथम खण्ड

प्राचीन भारतवर्ष

इतिहास होता है। लेखकगण इसका ही वर्णन करते हैं। सरकार अथवा शासकदल इस साम्राज्यका शस्त्र है जो इसकी रक्षा करता है अथवा जिससे साम्राज्यकी उन्नति होती है।

इस शासन-प्रणालीके कई भिन्न भिन्न रूप हो सकते हैं। राज्यका प्रबन्ध लोकनिर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा हो सकता है। उनकी ओरसे एक व्यक्ति भी राज्यका प्रबन्ध कर सकता है। यह व्यक्ति राजा कहलाता है। यदि कोई कुल उत्तराधिकारीके रूपमें इस प्रबन्धको अपने हाथमें ले लेता है तो यह राज्य एकतंत्र राज्य (Monarchy) कहलाता है। ऐसे बादशाह साम्राज्यके सूत्रधार होते हैं। इसलिये उनका वृत्तान्त जातिकी उन्नति या अवनतिको प्रकट करता है। परन्तु परिस्थिति सर्वदा बदलती रहती है। यदि कोई बादशाह बाहरसे आकर राज्य हर लेता है तो उसकी सञ्चालन विजित राष्ट्रके लाभके लिये नहीं होती। उसका आशय केवल यह होता है कि उस देशको दासताकी दशामें रखे। इसलिये बाह्य जातिके शासकोंका वृत्तान्त उस जातिका इतिहास नहीं होता। इतिहासका उद्देश्य जातिके अन्दर काम करने वाली उन शक्तियोंका अध्ययन करना है जो जातीय जीवनकी द्योतक होती हैं।

दूसरा प्रकरण।

मनुष्य और समाज।

मनुष्यकी व्याख्या कई प्रकारसे की गयी है। एक तो यह है कि मनुष्य दो पैरोंसे चलनेवाला प्राणी है। दूसरी यह कि मनुष्य वार्तालाप करनेवाला जीव है, परन्तु इनसे बढ़कर ठीक ठीक व्याख्या यह है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है, अर्थात् उसे समाजमें रहनेकी आवश्यकता है। वार्तालाप करना भी एक सामाजिक आवश्यकता है। दूसरेके साथ मिल जुलकर रहे बिना वार्तालाप होना सम्भव नहीं। समाजको दूर करके अकेले मनुष्यका विचार नहीं किया जा सकता। जब एक पुरुषको अपराधके बदले दण्ड दिया जाता है तो उसका अर्थ यह है कि वह समाजसे वंचित किया जाता है। कारावासके दण्डमें सबसे कठोर दण्ड एकान्त कैद है जिसका आशय यह है कि वह कारागृहके कैदियोंसे भी वंचित रखा जाय।

मनुष्यका पशुओंसे भेद

वर्तमान कालमें हमारे समस्त सम्बन्ध—हमारा शोक तथा प्रसन्नता, हमारी सहानुभूति और प्रेम, हमारा त्याग तथा उपकार, संक्षेपतः हमारे सारे भाव—समाज द्वारा उत्पन्न होते हैं। इस समय जो कुछ हम हैं जो कुछ हमारे विचार हैं, जो कुछ भाव हैं और जो कुछ हमारी कामनाएं हैं सब हमारे समाजसे उत्पन्न हुई हैं। जिस समाजमें हमने उत्पन्न होकर शिक्षा ग्रहण की है और अपने अनुभव प्राप्त किये हैं वह समाज एक बहुत प्राचीन कालके सामाजिक जीवनसे, जिसमें साहित्य प्रथायें और रीतियां इत्यादि सम्मिलित हैं, उत्पन्न हुआ है। यदि हम किसी निर्जन वनमें उत्पन्न हुए होते और वहांपर ही हमारा पालन-पोषण हुआ होता तो हम कदापि वह न होते जो हम हैं, क्योंकि मनुष्य केवल भावोंका संग्रह है और ये सब भाव समाजसे उत्पन्न होते हैं। समाजही हमारी सत्ताका बनानेवाला है, इसलिये उसकी रक्षा करना और उसे आगे बढ़ाना हमारा स्वाभाविक कर्तव्य है। अर्ल मारली कहते हैं 'जबतक हम समाजमें रहते हैं हमें समाजके बन्धनमें रहना होगा। यदि समाजसे सर्वथा स्वतन्त्र रहना चाहें तो हमारे लिये मार्ग खुला है कि हम समाजसे पृथक् होकर कहीं वनमें चले जायें।'

हम समाजके द्वारा रचित हैं

यदि कोई मानव जाति ऐसी दशामें हो जिसमें उसे समीपस्थ-जातिके साथ युद्धका भय न हो, तो उसको युद्ध नहीं करना पड़ता और न युद्धकी तैयारी करनी पड़ती है। उनका परस्पर सहयोग स्वकीय लाभके लिये होता है। उनके सदस्य अपने कर्तव्योंको भिन्न भिन्न कामोंमें विभक्त कर लेते हैं। वे अपना २ काम पूरा करके दूसरोंको सुख देते हैं जिसके बदलेमें दूसरोंकी ओरसे उन्हें सुख मिलता है। एक पुरुष कृषिका काम करके धान्य उत्पन्न करता है, दूसरा लोहकारका काम करके उसके लिये शस्त्र शस्त्रोंका निर्माण करता है। इस प्रकारके सहयोगका प्रारंभिक उद्देश्य लाभ और सुख है। पहले प्रकारके सहयोगका लक्ष्य सारे परिवार अथवा जातिको सामुदायिक लाभ पहुंचाना है और इस सामुदायिक लाभके परिणाममें सदस्योंको भी सुख और लाभ प्राप्त होता है। पूर्वीय देशोंमें ऐसे देश हैं जिनमें सामाजिक-उन्नतिका आधार दूसरे प्रकारका सहयोग है

(२) गुप्त सहयोग

हरिवर्ष(यूरोप)की लगभग समस्त जातियां सामरिक-सहयोगमें उन्नत हुई हैं इसलिये उनमें सामरिक एकता और बल अधिक होता है। दूसरे प्रकारका सहयोग अत्युत्तम है परन्तु वह तभी तक लाभदायक होता है जब तक अन्य जातियोंसे मुकाबला न पड़े। सामरिक सहयोग वाली जातियां अधिक संगठित होती हैं और वे अल्प संगठित जातियोंपर राज्य करती हैं।

समाजकी उन्नति सामवायिक है।

समाजकी अखिल उन्नति सामवायिक है जिसके अन्दर रहकर मनुष्य उन्नति करता है। समाजसे पृथक् अकेले पुरुषकी कोई सत्ता नहीं है और न वह अलग रहकर उन्नति ही कर सकता है। यह उन्नतिका क्रम समवायी दशामें एक वर्गसे दूसरे वर्गको पहुंचता चला आता है। इस अर्थमें हमारी सब उन्नति समाजगत ही होती है। हमारी मस्तिष्क तथा विद्या सम्बन्धी उन्नति शारीरिक तथा नैतिक, पारिवारिक तथा सांसारिक, सब प्रकारकी उन्नति समष्टिरूपमें हुई है। एक व्यक्ति उत्पन्न होता है, वह अपना काम करके अपना भाग समाजमें छोड़ जाता है। इस प्रकार धारा समाज भिन्न २ व्यक्तियोंकी कृतियोंसे बढ़ता है। प्रत्येक सत्ताका नाम चेतन पदार्थ है। वृक्ष भी एक चेतन पदार्थ (आर्गेनिज़्म) है। विशेष प्रकारकी परिस्थितियोंसे यह चेतन पदार्थ (औरगेनिज़्म) उन्नति करता है और अपने अस्तित्वको दृढ़ करता है। दूसरी परिस्थितियोंमें आकर उसका अस्तित्व निर्बल हो जाता है। समाजका जीवन विशेष नियमोंका अनुसरण करता है। इतिहासके अध्ययनसे उन नियमोंका पता लगाया जाता है और इनसे राजनीतिक सिद्धान्त निश्चित किये जाते हैं।

साधारणतः मनुष्यका जीवन भी किसी एक विचारके अधीन व्यतीत होता है। मनुष्य प्रायः पाशविक आवश्यकताओंसे ऊपर नहीं जा सकते। किन्तु जब कोई समाज उन्नत होता हुआ पाशविक आवश्यकताओं अर्थात् भूख और सन्तानकी कामनासे मुक्ति पाता है तब कोई न कोई अन्य विचार उसके अन्दर स्थान जमा लेता है। बहुतसे समुदायोंके अन्दर दूसरोंपर शासन करनेका विचार ही प्रबल हो जाता है। इसका बड़ा उदाहरण पुरातनकालमें रोम था। अर्वाचीन कालमें इंग्लैण्ड सबसे बड़ा हुआ है। जापानमें एकमात्र विचार देशभक्तिका ही है। यही उनका धर्म है और यही आधार है। अमरीकामें मानव समानताका विचार राज्य करता है। आर्यावर्तका विचार सात्विक था।

समाजमें विचार-विरोधकी सफलता

अटल नियम तो यह है कि प्रत्येक विचार समाजमें काम करता हुआ उसको एक सीमाकी ओर ले जाता है एक पक्ष उन्नत हो जाता है, दूसरा पक्ष निर्बल हो जाता है। इससे अधःपतन और नाशका बीज पाया जाता है। भारतवर्षमें परमार्थनिष्ठाका विचार प्रबल हो जानेसे यहांकी जनताके अन्दर राजनीतिक कार्योंसे घृणा उत्पन्न हो गयी। परिणाम यह हुआ कि क्षत्रियोंकी संख्या अत्यल्प होगयी और शेष जनता पौरुषहीन पुरुषोंका समूह बन गयी। परमार्थनिष्ठाके अनुचित प्रचारने देशका नाश कर डाला।

नियम अटल होते हैं

जब रोमने संसारमें अपना राज्य बढ़ाया तो रोमन लोग धनाढ्यताके शिखरपर जा पहुंचे। फलतः उनमें विषयासक्ति और आलस्यका प्रचार अधिक हो गया जिसने रोमन राज्यकी जड़ खोखली कर दी। कोई विचार कैसा ही पवित्र और उत्तम क्यों न हो सीमान्तपर पहुंच कर वह नाशका कारण बन जाता है। प्रत्येक गुणमें भी अधःपतनका बीज विद्यमान रहता है। राज्यनिर्माता लोग इस अधःपतनको अपनी बुद्धिमत्ता और सावधानीसे स्थगित कर सकते हैं, परन्तु उससे सर्वदाके लिये बच नहीं सकते, जैसे कि मदिराके व्यसनमें फंसा हुआ मनुष्य अपने शरीरको खोखला होनेसे रोक नहीं सकता।

तीसरा प्रकरण।
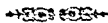
राज्यका विकास।

साधारणतः जातीयतामें ये पाँच बातें संयुक्त हैं। (१) देश (२) धर्म (३) भाषा (४) इतिहास (५) राजनीतिक एकता। ये पांचों अथवा उनमेंसे कुछके विद्यमान होनेसे जातीयता बनती है। यह आवश्यक नहीं कि ये पांचो ही विद्यमान हों। ऐसा भी हो सकता है कि जहां उनमेंसे एक ही बलवान् रीतिपर विद्यमान हो वहां भी एक जातीयताका सम्बन्ध उत्पन्न हो जाय।

जातीयताके चिन्ह

प्रायः लोग हंस कर कह देते हैं कि भौगोलिक सीमा जातीयताका कारण कैसे बन सकती है। परन्तु यह बात सत्य है कि मनुष्यका अपने पर्वतों, नदियों वृक्षों और फूलों आदिसे स्वाभाविक प्रेम होनेके कारण उसमें जातीयताका भाव उत्पन्न हो जाता है।

देश या भौगोलिक सीमा।

धर्मका विरोध जातिको खण्डित कर देता है जैसा कि भारतवर्षमें आर्य और मुसलमान। कभी कभी धर्म-विरोध होनेपर भी जातीयता बनी रहती है। जब सोलहवीं शताब्दीके अन्तमें स्पेनने इंग्लैण्डपर धार्मिक विरोधके कारण आक्रमण किया तो इंग्लैण्डके रोमन कैथोलिक चर्चके माननेवाले भी अपने सहधर्मी स्पेनके आक्रामकोंके विरुद्ध अपने देशके रक्षणार्थ लड़ते रहे। धर्मका एक होना मुसलमानोंमें अति दृढ़ सम्बन्ध स्थापित करता है किन्तु हरिवर्ष (यूरोप) ईसाई होनेके अतिरिक्त कितनी ही भिन्न भिन्न जातियोंमें विभक्त है।

धर्मकी समानता

जर्मनी और इंग्लैण्डके युद्धमें अमरीकाकी सहानुभूति स्वभावतः अंग्रेजोंके साथ थी। आयर्लैण्डके अन्दर जातीयताका नाश करनेके लिये आंग्लस्थानने वहांकी भाषाका नाश करके आंग्ल-भाषाको उसके स्थानमें प्रचलित किया। जर्मनीने फ्रांसके कुछ प्रान्त जीतकर वहांसे फ्रेन्च भाषाका अस्तित्व मिटानेकी चेष्टा की। इस सम्बन्धमें एक मनोहर घटनाका उल्लेख करना अनुचित न होगा। एक फ्रेंच कन्या किसी पाठशालामें पढ़ती थी जर्मनीकी राजमहिषीने उस पाठशालाको देखा और वे उस कन्यापर बड़ी प्रसन्न हुईं। कन्याने उनसे प्रार्थना की कि 'हमारी

भाषा [illegible] होना

पाठशालामें जर्मनके स्थानमें फ्रेंच भाषामें पढ़ाई हो,' अस्तु। भाषाकी विभिन्नता होनेपर भी कहीं कहीं राष्ट्रीयता देखनेमें आती है। स्विट्ज़र्लैण्ड और आस्ट्रियामें भाषामें विभिन्न होनेपर भी एक जातीयता पायी जाती है।

प्राचीन इतिहासका एक होना

जातीयताका एक और भी चिन्ह है। अपनी पुरातन जातीयों और महात्माओंके साथ हमारा स्नेह हमारे रक्तमें पाया जाता है। जब हमारे किसी महापुरुषकी वीरता और साहसका वर्णन हमारे सामने किया जाता है तो हममेंसे प्रत्येकके हृदयमें एक प्रकारका आल्हाद उत्पन्न हो जाता है। हमारे हृदयोंमें एक ही प्रकारकी गति उत्पन्न हो जाती है। इस गतिका उत्पन्न होना ही जातीयताका भाव कहलाता है। जितनी प्रबल तरंग होगी उतनी ही दृढ़ जातीयता समझनी चाहिये। जिन जातियोंके प्राचीन इतिहासका कुछ मान नहीं होता, उनके अन्दर यह भाव काम नहीं करता। किसी जातिके भावको बलहीन करनेकी एक यह विधि बर्ती जाती है कि उसका प्राचीन इतिहास न केवल उलट पलट कर दिया जाय, प्रत्युत सर्वथा नष्ट कर दिया जाय। यदि आर्योंके अन्दर राम और कृष्ण दो नामोंकी प्रतिष्ठा न होती तो मुसलमानी आक्रमणके समय उनकी जातीयताकी समाप्ति हो गयी होती। जब यवनोंके आक्रमण हुए तो इन दो नामोंने देशके समस्त प्रान्तोंमें पुनरुत्थानकी शक्ति उत्पन्न की। उनका प्रेम और प्रतिष्ठा ही इस जातिकी जीवन-शक्ति थी। आर्यजातिके लिये ये नाम आत्माका काम देते रहे। उनको निकाल देना जातिकी आत्मा निकाल कर उसे निर्जीव बना देना है। उनके प्रेमने देशीशक्ति बनकर स्थान स्थानपर जातिकी रक्षाके लिये शक्ति उत्पन्न की, इससे उनकी पूजा ईश्वरके समान होने लगी।

सबसे बढ़कर जाति बनाता चिन्ह राजनैतिक एकता है

मनुष्यके शरीरमें जीवन शक्ति होती है, जिसका काम शरीरके भीतरके उत्पन्न हुए विकारोंको ठीक करना और बाह्य आक्रामकोंसे उसकी रक्षा करना है। भिन्न भिन्न रोग हैजा, प्लेग आदिके कीटाणु हमपर आक्रमण करते हैं, हमारी जीवनशक्ति उनका सामना करती है। जिनकी शक्ति क्षीण होती है वे आफ्तमें फसकर प्राण त्याग करते हैं। पर्याप्त शक्ति होनेपर रोगोंके कारणोंका प्रभाव शरीरपर कुछ नहीं हो सकता। जातियोंके अन्दर राज्य ही उनका "बाहुबल" होता है। राज्य ही जातीय शरीरके भीतरी विकारों और बाह्य आक्रमकोंसे उसकी रक्षा करता है। राज्य ही सब अंगोंकी दुर्बलताको दूर कर सकता है। उनके विद्यमान न रहनेपर वह जातिको बचाता है और काम स्वतंत्र न हो जानेपर इन चिन्हों(अंगों) को पुनः उत्पन्न करता है। यदि यही न रहे तो जाति शनैः शनैः दुर्बल होकर नाशको प्राप्त हो जाती है। सारांश यह कि जिस जातिमें अपना राज्य नहीं उसकी जातीयता मर गयी,

अवस्थामें अच्छी थी। अंग्रेज दार्शनिक हॉब्ज़ और लॉकका सिद्धान्त है कि प्रजा और राजा दोनों पक्ष एक दूसरेके प्रति प्रतिज्ञा-बद्ध रहते हैं। हॉब्ज़ तो यह कहता है कि प्रजा एकबार अपना शासन राजाके हाथमें देकर पुनः नहीं ले सकती। लॉकका मत है कि राजा यदि अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण न करे तो प्रजा भी अपने दिये हुए अधिकार पुनः लौटा ले सकती है।

महाभारतका सिद्धान्त

कृतयुगके लोग सीधे थे। वे झूठ बोलना नहीं जानते थे। कोई किसीको पीड़ा नहीं देता था। ज्यों ज्यों जन-संख्या बढ़नी आरम्भ हुई, त्यों त्यों लोगोंमें क्षोभ बढ़ने लगा। उनमें पारस्परिक झगड़े आरम्भ हुए। लोग अत्यन्त दुःखित होकर प्रजापतिके समीप गये उन्होंने अपने दुःख-की वार्ता कह सुनायी। प्रजापतिने कहा इसका एक ही उपाय है। वह यह है कि तुम लोग अपनेमेंसे ही एक राजा चुनो, उसकी आज्ञाका तुम पालन करो और वह तुम्हारी रक्षा करे। उसके खर्चके लिये तुम अपनी आयका एक नियमित भाग (षष्ठांश) उसको दिया करो। इस प्रकार मनु पहला राजा बनाया गया। उसने नियम बनाये और दण्ड निश्चित किये। भीष्मपितामहने राज-निर्वाचनके सम्बन्धमें कहा है कि यदि राजा प्रजाकी रक्षा करने योग्य न हो तो बांझ स्त्री या दूध न देनेवाली गौके समान समझकर उसे हटा देना चाहिये और जैसे तूफानके समयमें नाविकके उपयोगी न होनेपर कोई भी व्यक्ति (कर्णधार) नाविकका काम कर सकता है, वैसे ही राजाके अनुपयोगी सिद्ध होनेपर कोई भी ब्राह्मण या शूद्र राजा बनाया जा सकता है।

पुरातन यूनानी और रोमकी प्रजातन्त्र रियासतें

एथन्स स्पार्टा आदि नगरोंके निवासी प्रायः एकत्र होकर अपने कार्योंका निर्णय किया करते थे। उन नगरोंका राज्य प्रजातन्त्र कहा जाता है जिनमें शासन सब लोगोंके हाथमें हो। वे अपना कार्य चलानेके लिये पदाधिकारियोंका निर्वाचन किया करते थे और उनको कालक्रमसे बदलते रहते थे। उन्होंने किसीको भी राजा न बनाया। उन नगरोंका राज्य नगरोंकी सीमासे अधिक विस्तृत न होता था और उन नगरोंमें भी यह विधि उसी अवस्थामें सफलता पूर्वक चल सकती थी जब कि उनकी जन-संख्या आजकलके नगरोंके सदृश अधिक न होती थी। जनसंख्याके बहुत अधिक होनेसे लोगोंका एकत्र होना असम्भव हो जाता था।

रोमकी प्रजातन्त्र रियासतने जब दूसरेके साथ युद्ध करके विजयका कार्य आरम्भ किया तो युद्धोंमें विजयी सरदार शनैः शनैः बलवान् होने लगे। समय आया जब कि वे राजाधिराज बन गये। दूसरोंको अपनी अधीनतामें लानेसे प्रजातन्त्रका सारा भाव जाता रहा और जब दूसरोंको अपना दास बनाया तो वे स्वयं व्यसनों और विषयभोगोंमें पड़कर अधोगतिको प्राप्त हुए।

अवस्थामें अच्छी थी। अंग्रेज़ दार्शनिक हॉब्ज़ और लॉकका सिद्धान्त है कि प्रजा और राजा दोनों पक्ष एक दूसरेके प्रति प्रतिज्ञा-बद्ध रहते हैं। हॉब्ज़ तो यह कहता है कि प्रजा एकबार अपना शासन राजाके हाथमें देकर पुनः नहीं ले सकती। लॉकका मत है कि राजा यदि अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण न करे तो प्रजा भी अपने दिये हुए अधिकार पुनः लौटा ले सकती है।

महाभारतका सिद्धान्त

कृतयुगके लोग सीधे थे। वे झूठ बोलना नहीं जानते थे। कोई किसीको पीड़ा नहीं देता था। ज्यों ज्यों जन-संख्या बढ़नी आरम्भ हुई, त्यों त्यों लोगोंमें क्षोभ बढ़ने लगा। उनमें पारस्परिक झगड़े आरम्भ हुए। लोग अत्यन्त दुःखित होकर प्रजापतिके समीप गये उन्होंने अपने दुःख-की वार्ता कह सुनायी। प्रजापतिने कहा इसका एक ही उपाय है। वह यह है कि तुम लोग अपनेमेंसे ही एक राजा चुनो, उसकी आज्ञाका तुम पालन करो और वह तुम्हारी रक्षा करे। उसके खर्चेके लिये तुम अपनी आयका एक नियमित भाग (षष्ठांश) उसको दिया करो। इस प्रकार मनु पहला राजा बनाया गया। उसने नियम बनाये और दण्ड निश्चित किये। भीष्मपितामहने राज-निर्वाचनके सम्बन्धमें कहा है कि यदि राजा प्रजा की रक्षा करने योग्य न हो तो बांझ स्त्री या दूध न देनेवाली गौके समान समझकर उसे हटा देना चाहिये और जैसे तूफानके समयमें नाविकके उपयोगी न होनेपर कोई भी व्यक्ति (कर्णधार) नाविकका काम कर सकता है, वैसे ही राजाके अनुपयोगी सिद्ध होनेपर कोई भी ब्राह्मण वा शूद्र राजा बनाया जा सकता है।

पुरातन यूनानी और रोमकी प्रजातन्त्र रियासतें

एथन्स स्पार्टा आदि नगरोंके निवासी प्रायः एकत्र होकर अपने कार्योंका निर्णय किया करते थे। उन नगरोंका राज्य प्रजातंत्र कहा जाता है जिनमें शासन सब लोगोंके हाथमें हो। वे अपना कार्य चलानेके लिये पदाधिकारियोंका निर्वाचन किया करते थे और उनको कालक्रमसे बदलते रहते थे। उन्होंने किसीको भी राजा न बनाया। उन नगरोंका राज्य नगरोंकी सीमासे अधिक विस्तृत न होता था और उन नगरोंमें भी यह विधि उसी अवस्थामें सफलता पूर्वक चल सकती थी जब कि उनकी जन-संख्या आजकलके नगरोंके सदृश अधिक न होती थी। जनसंख्याके बहुत अधिक होनेसे लोगोंका एकत्र होना असम्भव हो जाता था।

रोमकी प्रजातन्त्र रियासतने जब दूसरेके साथ युद्ध करके विजयका कार्य आरम्भ किया तो युद्धोंमें विजयी सरदार शनैः शनैः बलवान् होने लगे। समय आया जब कि वे राजाधिराज बन गये। दूसरोंको अपनी अधीनतामें लानेसे प्रजातन्त्रका सारा भाव जाता रहा और जब दूसरोंको अपना दास बनाया तो वे स्वयं असमर्थ और विषयोपभोगोंमें पड़कर अधोगतिको प्राप्त हुए।

इधर जब भारतमें बुद्धने धर्मका प्रचार करना आरम्भ किया उस समय यहाँ कई सौ छोटी छोटी रियासतें थीं। इनमें कई रियासतोंमें तो पूर्ण प्रजातंत्र प्रणाली प्रचलित थी। कई स्थानोंपर राजा भी राज्य करते थे। वे राजा कुछ वर्षों या आयु पर्यन्तके लिये चुने जाते थे। यदि कोई राजा अयोग्य होता था तो प्रजा उसको हटा देती थी। गौतम बुद्धका पिता भी इसी प्रकारका एक राजा था। ये प्रजातंत्र रियासतें बहुधा नगरों तक ही विस्तृत होती थीं। ग्राम और छोटे छोटे नगर यद्यपि अपनी रक्षाके लिये किसी राजाके अधिकारको मान लेते थे, तो भी वे अपने कार्यमें स्वतंत्र होते थे। महाभारतमें प्रायः ऐसे राजाओंका वर्णन आता है जो अपने छोटे नगर अथवा ग्रामके स्वामी होते थे। जब ऐसे राजाके समीप कोई ऋषि धनकी विशेष मात्रा मांगने आया करता था तो राजा स्पष्ट कह देता था कि मेरे पास तो इतना धन नहीं है। वह अपनी कन्या ऋषिको दे देता था जिससे वह किसी और राजाको कन्या देकर आवश्यक धन प्राप्त कर ले। पाण्डव-भाइयोंने कौरवोंसे एक पृथक् नगर इन्द्रप्रस्थ बसाकर अपनी राजधानी पृथक् कर ली और वहांपर ही राजसूय यज्ञ किया। इस यज्ञके लिये कोई विजय आदिकी आवश्यकता न थी परन्तु यज्ञ करनेवाले राजाका सबसे बढ़कर प्रतिष्ठित होना परमावश्यक था।

भारतवर्षकी छोटी छोटी रियासतें।

इधर जब हम राजपूतोंके इतिहासकी ओर देखते हैं तो राजाके साथ कई सरदारोंको अपनी भूमिपर शासन करते हुए पाते हैं। ये ही सरदार एक प्रकारके शासक बन जाते थे। यही राजाका भी निर्वाचन करते और उसे सिंहासन पर बिठाते थे। आवश्यकता होने पर अपने सैनिक साथ लेकर राजाकी सहायता करते थे। राजाका निर्वाचन प्रायः राजाके पुत्रों और समीपके सम्बन्धियोंमें से ही किया जाता था राजाके अयोग्य होनेपर उसे सिंहासन परसे उतार देते थे। हरियर्पीय(यूरोपके) देशोंमें मध्य कालमें इसी प्रकारका ही राज्य था ज्यों २ इन देशोंमें चर्च (धर्म मन्दिरों) का प्रचार बढ़ता गया त्यों २ राजाओंके हृदयमें भी यह विचार बढ़ता गया कि हम ईश्वरीय आज्ञासे ही लोगोंपर शासन करते हैं। राजाओंकी इस शक्तिके विपरीत पहले पहल इङ्गलैण्डमें आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। एक संग्राम भी छिड़ गया जिसमें जनताका एक दल राजाके विरुद्ध लड़ता रहा। राजाकी पराजय हुई और उसे फांसी दी गयी। सौ वर्ष पश्चात् फ्रांसमें इसी अभिप्रायसे बड़ा भारी आन्दोलन उठ खड़ा हुआ जिसमें न केवल राजा और उसके परिवारका किन्तु प्रत्येक धनाढ्य पुरुषका भी वध कर दिया गया। उस कालके उपरान्त हरियर्प (यूरोप) और अन्य पाश्चात्य देशोंमें दिन प्रतिदिन लोगोंके निर्वाचित प्रतिनिधियोंका बल पार्लमेण्टमें बढ़तागया और संगठनात्मक राज्यकी नींव पड़ी।

राजपूतोंकी संगठन विधि

जनताद्वारा नियमानुसार प्रतिनिधि-निर्वाचन इंग्लैण्डकी राज्यव्यवस्थाका अत्यन्त सुन्दर अंग है। इंग्लैण्डमें पहले समस्त सामाजिक कार्य बुद्धिमान

प्रतिनिधि सभा

पुरुषोंकी सभा और लोगोंकी जमायतमें निश्चित हुआ करते थे। जब लोक-संख्या बढ़ गयी और युद्धमें प्रवृत्त होनेकी आवश्यकता पड़ी तो सामरिक नेता प्रचुर शक्ति प्राप्त करके राजा बन गये और वे अपने सरदारोंकी सभाकी बैठक करने लग गये। इंग्लैण्डमें सब प्रकारके अभियोग निश्चित करनेके लिये 'ज्यूरी' के सभासद लोगोंकी ओरसे चुने जाते थे। चुननेकी यही विधि धीरे २ शासन में प्रयुक्त होनेसे वर्तमान प्रतिनिधि-सभाकी उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् राजाके साथ प्रतिनिधि सभाकी इस बात पर लड़ाई हुई कि लोगोंसे कर ग्रहण करनेका अधिकार राजाको है या प्रतिनिधि सभाको। इस संग्राममें प्रतिनिधि-सभाकी जीत हुई। जब इंग्लैण्डने अपने अधिनिवेश अमरीकापर बिना वहांवालोंकी इच्छाके कर लगाना चाहा तो उन्होंने कर देनेसे इन्कार कर दिया और कई वर्ष पर्यन्त युद्ध होता रहा जिसका परिणाम यह हुआ कि अमरीका स्वतंत्र हो गया।

अमरीकाकी कतिपय रियासतोंने स्वतंत्र होकर अपना एक संघटन स्थापित किया, धीरे २ रियासतोंकी संख्या अधिक हो गयी और वे सब राष्ट्रसे पृथक् अपने २

अमरीकाका प्रजातन्त्र

काम देखने लगीं। उनमें परस्पर युद्ध छिड़ जानेका भय हुआ। इसकी प्रतिक्रिया यह निकाली गयी कि सरकारके अधिकारोंके दो विभाग करके आभ्यन्तरिक अधिकार रियासतोंके हाथमें दिये जायं, और बाह्य अधिकार जैसे सेना, युद्ध, संधि, डाक इत्यादि, मध्यराष्ट्रके हाथमें रखे जायं। इसका नाम संघराज्य (फेडेरल गवर्नमेण्ट) है। अमरीकाकी रियासतोंकी संख्या चालीससे ऊपर हो गयी और उनका एक प्रबल प्रजातंत्र राज्य संघटित हो गया।

गत शताब्दीमें जर्मन देश (जर्मनी) के मार्क्स नामक एक व्यक्तिने साम्य-वादका प्रचार किया। उसकी नींव इस सिद्धान्तपर पड़ी कि संसारमें अभी तक

साम्यवाद

धनवान् पुरुष सब कुछ अपने ही प्रयोजनकी सिद्धिके लिये करते हैं। व्यापार उनके हाथमें है, शासन उनके हाथमें है, भूमि उनके हाथमें है, धर्म मन्दिर उनके हाथमें है परन्तु श्रमियोंका समुदाय जो सब कुछ उत्पन्न करता है अपने परिश्रमके समुचित फलसे भी वंचित रखा जाता है। इस समुदायके लिए उचित है कि वह अपनी निद्राका त्याग करे एवं एक होकर अपने अधिकारोंको अपने हाथोंमें लावे। इस सिद्धान्तके प्रचारसे इर्विपं (यूरोप) के श्रमियोंने कई चेष्टायें कीं, पर उनके हाथमें शक्ति न आसकी। वर्तमान युद्धका सबसे बड़ा परिणाम रूसका असाधारण परिवर्तन हुआ है जिसमें समस्त राजनीतिक शक्ति इस दलके हाथमें आगया है। संसारमें यह सबसे बड़े देशका प्रथम उदाहरण है जिसमें साम्यवादको क्रियात्मक रूप देनेका प्रयत्न आरम्भ हुआ है।

चौथा प्रकरण !

जातिका इतिहास ।

जातिका इतिहास भी एक शरीरी (आरगेनिज्म)के जीवनका इतिहास है। जातिकी उन्नति आरम्भिक अवस्थामें होती है। उन्नतिके अनन्तर स्वभावतः अधःपतन प्रारम्भ हो जाता है। आर्य पुरुष जिस तरह इस जीवका पुनर्जन्म मानते हैं उसी प्रकार जातियोंका भी अधःपतनके अन्तमें नया जन्म हो सकता है। इस दशामें वे एक नया विचार लेकर संसारमें बढ़ना आरम्भ करती हैं।

जातिका जीवन एक व्यक्तियोंका जीवन है

किसी जातिके इतिहासका अभिप्राय यह है कि उसकी उन्नति और अवनतिकी अवस्थाओं और कारणोंका समुचित अध्ययन कर उनसे उत्तम परिणाम निकाले जायं। जिस तरह प्रत्येक पदार्थका अच्छा अथवा बुरा प्रयोग किया जा सकता है इसी प्रकार आजकल प्रायः जातिकी अवस्था भी विशेष रूपमें प्रकट की जाती है। अभिप्राय यह होता है कि उन अवस्थाओंसे जातीय उत्साह तथा दूसरोंके प्रति घृणा उत्पन्न की जाय। अवस्थाओंका वर्णन अपने २ विचारानुसार किया जाता है। लेखक जिस पक्षको यथार्थ और न्याययुक्त समझता है उसके लिये पढ़ने वालोंके हृदयोंमें प्रशंसा उत्पन्न कर देता है। दूसरा लेखक उसके दूसरे पक्षका वर्णन कर पाठकोंके हृदयोंमें घृणा उत्पन्न करता है। भेड़ और भेड़ियेका विचार अपना २ होता है। भेड़िया तो भेड़को मारकर खा जाना ही सर्वथा यथार्थ और उचित बतायेगा किन्तु भेड़ इस कार्यको सरासर अन्याय ही कहेगी। दार्शनिक "निटशे" ने ही पहले इस बातपर प्रकाश डाला। निटशे जब पाठशालामें पढ़ता था तभी उसे "अधर्मका आरम्भ" शीर्षक एक प्रबन्ध लिखना पड़ा। उसने लिखा है कि "मैं चिरकालतक सोचता रहा और जब मुझे कोई और कारण दृष्टिगोचर न हुआ तो मैंने अधर्मका आरम्भ भी परमात्माके सिर मढ़ दिया।" तत्पश्चात् उसे एक प्राचीन नगरकी दशाका विवरण पढ़नेका अवसर प्राप्त हुआ। उस नगरमें दो पक्ष थे एक धनी पुरुषोंका और दूसरा निर्धनोंका। दोनोंका परस्पर घोर विरोध जारी रहता था। जब धनाढ्योंकी विजय होती थी तो वे शूरवीरता स्वतन्त्रता नीचतासे घृणा इत्यादि गुणोंको अच्छा कहते थे और दया निर्धनता आदि गुणोंको घृणाकी दृष्टिसे देखते थे। जब निर्धनोंकी शक्ति बढ़ गयी तो वे दया निर्धनता आदिको ही अच्छा ठहराने लगे। इस घटनासे निटशेको अपने प्रश्नका यह उत्तर मिल गया कि अच्छा अथवा बुरा केवल मनुष्यका अपना विचार है। इस प्रकार इतिहासके लिखनेमें लेखक अपने ही विचार से प्रायः काम लेता है।

इतिहास लिखनेका विचार

जाती है, कभी नीचे उतर आती है, कभी धीरेसे चलती है और कभी एकदम बन्द हो जाती है। कभी २ ऐसा भी प्रतीत होता है मानो यह बन्द हो गयी हो। इसी गतिका इतिहास जातिका इतिहास है। यह गति ही जातिका जीवन है। इसका स्थूल नाम सभ्यता है। यही इसका धर्म है, इसीको कई बार धर्मका रूप दिया जाता है। इसके बन्द अथवा नष्ट हो जानेसे जातिका नाश हो जाता है। सभ्यता और सभा दोनों शब्द एक ही धातुसे निकले हैं। इनके अर्थ समानार्थक हैं। इस जातिकी सभ्यता समाजका जीवन है। इसी सभ्यताका इतिहास जातिका इतिहास है।

इस देशके तीन ओर तो समुद्र है और एक ओर सबसे ऊंचा गगनचुम्बी पर्वत हिमालय है। उत्तर पश्चिमकी ओरसे यहां आनेका एक मार्ग है जिसमें सिन्धु नदीको पार करना पड़ता है। मेरी सम्मतिमें भारतवर्षके इतिहास-विभागमें यह नदी इस देशकी सीमाको घेरती रही है। इस प्रसङ्ग-वश इसी नदीने इस देश और जातिके नामपर अपना पर्याप्त प्रभाव [illegible] जाता है। पहिले इस देशका नाम आर्यावर्त था और यहांके रहनेवाले आर्य कहलाते थे। इतर देशनिवासी इस देशको हिन्दुस्तान या हिन्दु कहने लग गये। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है। हिन्दुस्तान और हिन्दु शब्द 'सिन्धु' शब्दसे ही बने हैं। सिन्धुका अर्थ नदी है। ईरानी और यूनानी लोगोंने यहां पहुंचकर इस देश और इस जातिको इसी नामसे पुकारना आरम्भ किया, और 'स' को 'ह' में परिवर्तित कर 'हिन्दु' कहना आरम्भ किया। कालान्तरमें इसका रूप 'इन्दु' हो गया। इसीसे 'इण्डिया' शब्द भी निकला है। चीनी यात्री जो बड़ी श्रद्धासे कष्ट उठाकर इस पवित्र भूमिके दर्शनार्थ आते थे, 'हिन्दु' नामका उल्लेख बड़ी प्रतिष्ठा तथा प्रेमसे करते हैं। उनमेंसे एकने इसका 'इन्दु' नाम होनेका कारण यह दिया है कि यह देश गुणोंमें चन्द्रमाके समान है। जिस प्रकार लाखों तारे आकाशमें होते हुए भी तमको नष्ट नहीं कर सकते, चन्द्र ही उसे दूर करता है उसी प्रकार इस देशने संसारको चन्द्रमाके सदृश प्रकाशित कर रखा है। विदेशी लोग हिन्दू शब्दको केवल भौगोलिक नाम समझते हैं।

यह जाति जिसको बाहरके लोग 'हिन्दू' कहते हैं अपने आपको आर्य कहती थी। आर्य इस देशको आर्यावर्त कहा करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि गंगाकी भूमिपर आर्य जातिका प्रथम वास हुआ। इस देशमें गंगाकी

गंगा भूमि

भूमि सबसे अधिक उपजाऊ और सुन्दर समझी जाती है। इस जातिकी उक्तियोंमें गंगा नदी सबसे प्रिय और पवित्र समझी गयी है। ऐसा प्रतीत होता है कि आर्य लोग इसके सौन्दर्यपर मोहित थे। इसमें गंगा-स्नान अत्यन्त बड़ा भारी पुण्य समझा जाता है। भारतवर्षमें सबसे बड़ा तीर्थ स्थान वह समझा जाता है जहांपर गंगा सबसे अधिक सुन्दर है। उत्तर

प्रचार हो चुका था क्योंकि भिन्न भिन्न आर्यजातियोंमें ईश्वरके लिये जो शब्द हैं वे 'दिव' धातुसे निकले हैं जिसका अर्थ चमकना है—आंग्ल शब्द "Diety, divine" यूनानी Theos आदि इस बातके साक्षी हैं। कन्याके लिये, आंग्ल शब्द Daughter, फारसी दुख्तर और संस्कृत दुहितृमें कैसी समानता पायी जाती है ? कृषिकी रीति भी प्रारंभ हो चुकी थी और ये लोग गौओंको भी रखा करते थे और उनका दूध दूहा करते थे।

भाषाका आरम्भ

भाषाका आरम्भ कैसे हुआ, यह एक और प्रश्न है। धार्मिक विचार मानने वाले तो इसका सरल उत्तर दे देते हैं कि भाषा भी परमात्माके यहांसे बनकर प्रकट हुई। यह मान लेनेपर अधिक अन्वेषणकी आवश्यकता नहीं रहती। इसके विरुद्ध दूसरा मत यह है कि भाषा भी सीधे सादे मानव शब्दोंसे विकास-सिद्धान्तके अनुसार उन्नति करके इस अवस्था तक पहुंची है। इस मतके अनुसार पहले पहल मानव शब्द पाशविक शब्दोंके समान थे। बहुत समय व्यतीत हो गया जब कि साधारण शब्दोंसे विशेष अर्थ रखने वाले धातु बने। इन धातुओंका प्रयोग अनेक प्रकारके अर्थोंमें होने लगा। प्रत्येक प्रयोगके लिये धातुमें किञ्चित् मात्र स्वतंत्रता आती गयी। इस प्रकार शब्दोंकी संख्या बहुत हो गयी। शब्दोंकी संख्या परिमित होनेके कारण पहले उनके कई प्रयोग होते थे। ज्यों ज्यों शब्दोंकी संख्या बढ़ती गयी प्रत्येक स्थानके लिये पृथक् २ शब्द निश्चित होते गये। भाषाकी उन्नतिके साथ २ उस संख्या भी बढ़ती गयी। ऐसा प्रतीत होता है कि भाषा अभी आरम्भिक दशामें ही थी कि इस जातिकी शाखाओंका इधर उधर विस्तृत होना आरम्भ हो गया।

देव पूजा

इस कालका प्राकृतिक धर्म देव-पूजा था। जो शाखाएँ ईरान और हरिवर्ष (यूरोप)के देशोंमें फैलीं वे स्वभावतः देवताओंकी पूजा अवश्य करती थीं। सैमेटिक धर्मोंने परमात्माकी एकताका विशिष्ट विचार जगतमें फैलाया और प्राचीन देवताओंकी पूजाके विरुद्ध ऐसे भाव फैलाये कि वे अज्ञानता ही समझे जाने लगे। प्राचीन नाम 'पेगन' भी बुरा समझा जाता था। सत्य बात तो यह है कि इस विषयमें संसार कुमार्गके मार्गपर ही अग्रसर हुआ है। समय आवेगा जब संसारको विदित होगा कि सैमेटिक परमात्माका विचार ऐसी अज्ञानताका है जो मिथ्या देव-पूजापर मढ़ा जाती है। देव-पूजा ही मनुष्यका प्राकृतिक और बुद्धिमत्ताका स्फुट मार्ग है। प्राकृतिक अवस्थामें मनुष्य प्राकृतिक शक्तियों, सूर्य चन्द्र, अग्नि, वायु, पवन और नदियोंकी शक्ति और सुन्दरताको देख कर उनकी ही ओर आकर्षित हो सकता था। उसके मस्तिष्कमें, जो बुद्धि विचारोंसे शून्य था, कल्पित ईश्वरकी सत्ता और उसके एक दूसरेका विचार असम्भव था। जिन शक्तियोंको देख कर उसके हृदयमें आश्चर्य हुआ उन्होंने उसको ही शीश नवाने आकृष्ट किया। मनुष्यका हृदय सौन्दर्यका ही अनुभव करता है। यही शक्तियाँ हैं जो ईश्वरकी शक्तिका प्रकट करती हैं। अतएव हरिवर्ष (यूरोप) में सैमेटिक धर्मप्रचारके पहलेका विचार उस समय तक बड़ अन्धकारमें ही रहा। फिर प्राचीन दर्शनके

वेदों के समय का भ.रत
८०
८४
८८
समुद्र

हजारों उपजातियां पायी जाती हैं। इन सब परिवर्तनोंकी उत्पत्तिका विवरण ही इस जातिका इतिहास है।

ब्राह्मणोंकी विजयका अर्थ यह था कि यथासम्भव क्षत्रिय राजा कभी विजय प्राप्त कर दूसरेका देश दबा न सकें। भिन्न २ राजाओंके राज्य साधारणतः नगरों तक परिमित रहते थे इसलिये देशमें एकचित्त होकर काम करनेकी शक्ति कभी उत्पन्न न हुई और न कभी राजनीतिक एकता ही उत्पन्न हुई। जहां राजनीतिक एकता नहीं होती वहां एक दूसरेके, विशेष कर अपने समीपस्थके, विरुद्ध द्वेषकी अग्नि प्रतिदिन बढ़ती रहती है। यही द्वेष महाभारतके युद्धका कारण था। पिछले राजपूत राजाओंमें द्वेषकी मात्रा अधिक पायी जाती है। अध्यात्म सम्बन्धी विजयके कारण राजाओंको अपनी इच्छाओं तथा बलोंको प्रयोगमें लानेका अवसर न मिला। अन्दर ही अन्दर जलते हुए वे अपने भाइयोंके साथ ही लड़नेको उद्यत रहते थे।

जातीय जीवनपर अध्यात्मज्ञानका प्रभाव

इस जातिने उस कालमें विद्या और ज्ञानमें उन्नति की जब कि संसारको अन्य जातियां असभ्यावस्थामें थीं। स्वभावतः इस जातिके अन्दर एक अभिमान सा उत्पन्न हो गया। यह किसी अन्य जातिको अपने समान पद न देती थी। दूसरोंको म्लेच्छ आदि शब्दसे सम्बोधित कर उनसे किसी प्रकारका सम्बन्ध स्थापित करना न चाहती थी। अभी तक आर्य लोग समझते हैं कि समुद्र पार होनेसे हमारा धर्म नष्ट हो जाता है। दूसरोंसे किसी प्रकारका सम्बन्ध न रहनेसे देशमें एक प्रकारका पृथक्ता उत्पन्न हो गया। इसने युद्धके भावको सर्वथा नष्ट कर दिया और जाति दिनानुदिन निर्बल होती गयी। जातिके अन्दर अभिमानका भाव अच्छा भी होता है, परन्तु जब दूसरे आगे बढ़ जायें तो यह झूठा अभिमान समाजको गिरा देता है।

झूठा मद

शनैः २ जब वर्ण-व्यवस्थामें जन्मने कर्मका स्थान ले लिया तो जातिकी प्रथा आरम्भ हुई। देशमें शस्त्र उठाने और लड़ने भिड़नेका बहुत कम काम पड़ता था इस लिये क्षत्रियोंने भी अपना कर्म छोड़ दिया और वे दूसरे कामोंमें लग गये। कर्म करने वाले क्षत्रियोंका केवल नाम ही रह गया। जब क्षत्रियोंने युद्धका धर्म छोड़ दिया तो उन्हें राजनीतिक कार्योंमें कोई रुचि न रही। न केवल देशके लिये लड़ने वालोंकी संख्या न्यून हो गयी प्रत्युत साधारण पुरुषोंके भी चित्त देशके प्रबन्धसे सर्वथा हट गये। उन्हें इस बातकी कुछ चिन्ता न रही कि हमारा राज्य किसके हाथमें जाता है। जिसके हाथमें बल था उसने आकर राजधानीपर अपना अधिकार जमा लिया और सब लोग बिना विचारे उसकी प्रजा बन गये।

जातियोंका प्रभाव

छठवाँ प्रकरण।

वैदिक काल।

आर्यजातिके सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद हैं। आर्यजातिमें उनका मान यहाँ तक है कि ये अन्तिम प्रमाण और ईश्वरीय ज्ञान माने गये हैं। वेद चार हैं, ऋक्, यजुः साम और अथर्व। आर्योंका विश्वास है कि जो विद्यायें इस देश अथवा अन्य देशोंमें विस्तृत हुई हैं वे सब वेदसे ही निकली हैं। यह बात सर्वमान्य है कि संसारके पुस्तकालयमें वेद ही सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं। जिस समय आर्य जातिमें वेदकी सत्यताकी व्याख्या तथा प्रचार हो रहा था उस समय शेष समग्र जगत् अन्धकारमें पड़ा हुआ था। मनुके शास्त्रमें वेदकी निन्दा करने वाला नास्तिक ठहराया गया है। ऐसे भी दार्शनिक मत हैं जो ईश्वरपर विश्वास न रखते हुए भी वेदको सर्वमान्य मानते हैं। अखिल जातिके अन्दर वेदकी इतनी प्रतिष्ठा यह प्रकट करती है कि किस प्रकार एक जाति अपनी सभ्यताके आदि स्थानको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय समझती है।

वेद

वेद ही ब्रह्म है, अतः ब्राह्मण वह है जो वेदको जानता हो। वेदकी रक्षा और पालन एक विशेष श्रेणीका काम रहा है। यह श्रेणी ब्राह्मणोंकी थी और सर्वोत्तम समझी जाती थी। आर्यजातिकी जातीयता और धर्म ब्राह्मणोंके आश्रयमें चला आया है। पूर्वकालीन आर्यधर्मको 'ब्राह्मणत्व' भी कहते हैं। शास्त्रमें कहा है कि यदि कोई ग्राम अग्निसे भस्मीभूत हो रहा हो तो सबसे पूर्व ब्राह्मणको बचानेकी चेष्टा करनी चाहिये, क्योंकि ब्राह्मणके न रहनेसे ज्ञान-दीपकके शान्त हो जानेका भय है। मनुस्मृतिमें कहा है कि यह निखिल संसार ब्राह्मणके लिए उत्पन्न किया गया है। ब्राह्मण सर्वोत्तम हैं, वे सबके स्वामी हैं। राजा लोग ब्राह्मणका इतना सत्कार करते थे कि यदि वह नंगे सिर तथा नंगे पांव जाता था तो सम्पूर्ण राज-सभा उठ खड़ी होती थी।

ब्राह्मणोंका पद

ब्राह्मण जाति समाजका शिखर इसलिये थी कि वह समाजकी उन्नतिका फल थी, उसकी विद्यमानता समाजके लिये आभरण थी। जैसे बालुकाके ढेरोंमें सुवर्णके कण पाये जाते हैं उसी प्रकार समाजमें ब्राह्मण है। ऐसा क्यों था? हमें ध्यानपूर्वक उस समयका निरूपण करना चाहिये जबकि ग्रन्थोंका प्रचार न था, जबकि इनका मुद्रण करनेके लिये कोई यंत्रालय न था, यहाँ तक कि अभी लिखनेकी विद्याका भी विकास न हुआ था। मानव समाजकी उस दशाका अनुमान हम केवल विचारसे ही कर सकते हैं। उस समयके ब्राह्मणोंके मस्तिष्कमें विद्याओंका भाण्डार था। उन्होंने वेदोंको भी अपने मस्तिष्कमें रखा था। वे बड़े यत्नसे योग्य शिष्यका अन्वेषण कर अपना

इसका कारण क्या है

विद्याकोष अर्पित करते थे। उनके लिये सरलता, तपस्या और त्याग इसलिये आवश्यक थे कि वे वेदोंके ज्ञानकी सत्यताका अनुभव कर उन्हें स्मरण रखें और आगे फैलावें। सांसारिक विषयोंमें फँसे रह कर उनके लिये उस अन्धकारमयी अवस्थामें ज्ञानका दीपक प्रकाशित रख सकना सर्वथा असम्भव था। संसारके सब पदार्थोंपर उनका केवल इसलिये अधिकार था कि वे ऐसे मनुष्य थे जो उन अधिकारोंपर लात मारते थे और उनको घृणाकी दृष्टिसे देखते थे।

वेदोंका आरम्भ

एक मत तो यह है कि मानवसृष्टिके आरम्भ होते ही ईश्वरने चार ऋषियों द्वारा वेदोंको प्रकट किया। दूसरे मतके अनुसार वेदोंकी सत्यता आरम्भिक ऋषियोंके मस्तिष्क तथा आत्मिक पवित्रतासे उत्पन्न हुई है। उनके विचारमें हमें एक धार्मिक विचार बनानेकी आवश्यकता नहीं परन्तु वेदके समस्त संसार और आर्यजातिके लिये मान्य होनेकी बड़ी प्रबल युक्ति यह है कि वह मनुष्यकी प्रथम ज्ञान-पुस्तक है। उसके आधारपर मनुष्यका भविष्य उन्नति चलती है। उसको परे रख देना या भूल जाना उन महर्षियोंके प्रति अकृतज्ञता होगी जिन्होंने सत्यकी खोज कर मनुष्यको ज्ञानके मार्गपर चलाया। उस कालमें ये बातें आज कलके तार रहित विद्युद्यंत्र आदिके समान ही आश्चर्यजनक प्रतीत होती थीं।

वेदोंका काल

ईश्वरने सृष्टिके आदिमें वेदोंको चार ऋषियों द्वारा प्रकट किया, इस सिद्धांतके अनुसार तो यह आवश्यक है कि वे एक ही कालमें ईश्वरकी ओरसे प्रकट हुए होंगे। इससे वेदोंका काल १९६०८५३०२१ पूर्व माना जाता है जो कि सृष्टिके प्रारम्भका समय है। दूसरे मतके अनुसार इसमें कुछ हर्ज नहीं यदि यह माना जाय कि वेदोंके अर्थ भिन्न २ कालोंमें ऋषियोंको प्रकट हुए। यदि मन्त्रोंको समझनेके लिये पश्चात् कालमें ऋषि हुए जो मन्त्रद्रष्टा कहलाये, तो यह समझमें नहीं आता कि क्यों वेही मन्त्रोंके देखने वाले न हो सकते थे? वस्तुतः किसी पुस्तकका महत्त्व इसमें नहीं कि वह ईश्वरीय माना जाय प्रत्युत इसमें है कि उसे पढ़ने और सुननेसे उसकी पवित्रता और गौरव पढ़ने वालेके हृदयमें अङ्कित हो जाय। वेदोंका महत्त्व इसमें है कि वेदान्त और सांख्य आदि दर्शनोंके कर्ता जो ईश्वरके अस्तित्वको भी नहीं मानते थे वेदोंको अपौरुषेय कहनेपर दृढ़ थे।

वैदिक समाज

यह स्पष्ट है कि वैदिक कालमें मनुष्य आचार-व्यवहार आदिकी दृष्टिसे श्रेष्ठ और पवित्र थे। वह सत्ययुगका समय था जिस समय पापका लेशमात्र भी न था। कोई व्यक्ति अपने मनमें बुरा विचार भी न लाता था। व्यभिचार और अब पतन जीवनकी आवश्यकताओं और कष्टोंके बढ़नेसे शनैः२ उत्पन्न हुआ। जब हम इस कालकी सभ्यता और सात्त्विकताका वृत्तान्त पढ़ते हैं और अपनी दशासे तुलना करते हैं तो हमें दोनोंमें विचित्र विरोध दिखायी देता है। ब्रह्मचर्य आदिकी शिक्षायें हमें इतने दुर्लभ आदर्श प्रतीत होती हैं जिनका हमारे क्रियात्मक जीवनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ठीक संख्या बढ़नेसे

महाभारतके शान्तिपर्वमें भीष्म पितामहसे यह प्रश्न किया गया कि रा
किस प्रकार बने । भीष्मने उत्तरमें कहा कि पहिला काल सत्ययुगका था । उ
समय कोई व्यक्ति झूठ न बोलता था; कोई चोरी न करता थ
साधारण दशा । कोई किसीको दुःख न देता था । सन्तानोत्पत्तिको छोड़
कोई स्त्री-भोगकी इच्छा न रखता था । उस समय पापका ले
मात्र भी न था । इन पुरुषोंके लिये न किसी सरकारकी आवश्यकता थी, न कि
राजा की, न दण्ड की । ज्यों २ जन-संख्या बढ़ी लोगोंकी आवश्यकतायें बढ़
गयीं और लोग दूसरोंके अधिकारोंमें हस्तक्षेप करने लगे । चोरी, झूठ आदि प
आरम्भ हुए । सब लोग दुःखित होकर प्रजापतिके पास गये । प्रजापतिने कहा
तुम अपने लिये कोई राजा बनाओ जो तुम्हारी रक्षा करे और अपराध तथा पा
करने वालोंको दण्ड दे । मनु सबसे पहिला राजा बनाया गया, उसने लोगोंके लि
उन नियमोंकी रचना की जो उनके प्रसिद्ध धर्मशास्त्रमें पाये जाते हैं ।

सातवाँ प्रकरण।

उपनिषदोंका काल।

कुछ कालके बाद वेदोंके आधारपर, विद्याओंके भाण्डार चार उपवेद बनाये गये, अर्थात् आयुर्वेद जिसमें शरीर और उसके विकारोंका ज्ञान और चिकित्सा बतायी गयी है, धनुर्वेद जिसमें शस्त्र बनाने और चलानेकी उपदेश और शासन विद्या है, गन्धर्ववेद अर्थात् राग विद्या और अर्थ वेद अर्थात् पदार्थोंका ज्ञान। इन उपवेदोंसे प्रकट होता है कि उस समयका समाज कितनी उच्च और उन्नत अवस्थामें था। उपवेदोंके साथ ही साथ वह काल आया जिसमें वेदोंको समझनेके लिये ब्राह्मण ग्रन्थ लिखे गये।

उपनिषद् और तत्त्वज्ञान

तत्पश्चात् उपनिषदोंका काल आया। इस कालमें समाजके नेता वे ऋषि थे जो वनोंमें रहते और ब्रह्म तथा आत्माके सम्बन्धमें विचार करते थे। ये ऋषि वनोंमें अपनी स्त्रियों तथा बालकों सहित रहते थे। वे न केवल जीवात्मा और परमात्माके गंभीर विषयोंपर परस्पर विचार करते बल्कि जो शिष्य उनसे अध्ययन करनेके लिये आते थे उनको भी ज्ञानका उपदेश देते थे। जिन विषयोंपर उनके विचार दौड़ा करते थे वे उपनिषदोंमें दिये हुए हैं। उन विषयोंमें स्त्रियां भी भाग लेती थीं। संसारके गम्भीर रहस्योंके सम्बन्धके अनेक विचार उनके हृदयोंमें उठा करते थे। उन्हीं रहस्योंकी कुंजी वे ढूंढा करते थे। ब्रह्माण्ड क्या है? आत्मा क्या है? आत्मा शरीर त्यागनेके उपरान्त कहां जाती है? ब्रह्म क्या है? वह कैसे जाना जा सकता है? इस तरहके प्रश्न उनके मस्तिष्कमें आविर्भूत होते रहते थे।

सामाजिक उन्नति

इस कालमें सामाजिक जीवन पहलेका सा सरल न रहा। देशमें साधारणतः बड़े ग्राम या नगर न पाये जाते थे। पर कहीं २ नगर स्थापित होने लग गये जिनमें क्षत्रिय राजा राज्य करते थे। यद्यपि ये राजा क्षत्रिय वर्णके थे परन्तु उपनिषदोंसे विदित होता है कि ये अपनी आत्मिक उन्नति तथा त्यागमें ब्राह्मण ऋषियोंके तुल्य होनेका अभिमान करते थे। वे कहते थे कि हमारा त्याग अधिक कठिन है क्योंकि हम संसारसे भागते नहीं बल्कि सांसारिक भोगोंमें भाग लेते हुए भी उनमें नहीं फंसते। वे अपनी प्रजाके सुखके लिये राज्य सम्बन्धी सब कार्य करते थे और साथ ही जीवात्मा तथा परमात्माके चिन्तनमें भी लगे रहते थे।

राजाओंकी सभा

ये राजा अपने अपने नगरोंमें सभायें करते थे जिनमें ऋषि अपने अपने आसन-पर बैठे हुए एक दूसरेसे शास्त्रार्थ करते थे। उन सभाओंसे उस समयके सामाजिक और आत्मिक जीवनका चित्र अच्छी तरह प्रकट होता है। इन सभाओंमें आत्मा, परमात्मा, तथा मुक्ति आदि गम्भीर प्रश्नों-पर विचार होता था। इन सभाओं और इन प्रश्नोंसे स्पष्टतः विदित होता है कि इस जातिके महापुरुषोंकी रुचि किस ओर जा रही थी। वे सांसारिक उन्नतिकी ओर अधिक ध्यान नहीं देते थे। उनके मस्तिष्ककी सारी शक्ति आत्मिक

ज्ञान प्राप्त करनेमें व्यय होती थी। राज्य करते हुए भी राजाओंका चित्त उसी ओर लगा रहता था।

मिथिलाका जनक-राजवंश विशेष करके इसीके लिये विख्यात था। उनकी राज-सभाओंके सम्बन्धमें कई कथायें प्रसिद्ध हैं जिनसे उस समयके समाजकी वास्तविक अवस्था प्रकट होती है। एक बार राजा जनकने एक सभा यह जाननेके लिये की कि क्या कोई ऐसा ज्ञानी है जो ऐसी विधि बताये जिससे क्षण भरमें ज्ञान हो जाय। सब दिशाओंसे ऋषि और ब्राह्मण आकर एकत्र हुए। इतनेमें अष्टावक्र नामक एक ऋषि आ उपस्थित हुए। अष्टावक्रके शरीरमें आठ कूबड़ थे। लोग उनके शरीरकी ओर देख कर हंस पड़े। अष्टावक्रने तत्काल कहा मैं तो भूलसे इधर आ गया। मैं समझता था कि यह ज्ञानियोंकी सभा है परन्तु यह चमारोंकी सभा प्रतीत होती है क्योंकि ये चमड़ेकी परीक्षा अच्छी तरह कर सकते हैं। चमड़ेसे अष्टावक्रका इशारा अपने शरीर की रचनाकी ओर था।

मिथिलाके राजा जनक

जहां ब्राह्मण और राजागण सब एक ही विषय अर्थात् आत्मिक ज्ञान प्राप्त करनेमें तत्पर हों वहां राजनीतिमें किसी प्रकारकी उन्नति होना अतिशय कठिन था। उस समय न तो कोई बड़ा राज्य दिखायी पड़ता था और न किसी एक राज्यका दूसरेसे युद्ध होता था, इस लिये न कोई राजनीति थी और न कोई राजनीतिक इतिहास। संभवतः देशकी जन-संख्या भी अधिक न थी। वर्तमान कालकी तरह उस समय इतिहास लिपिबद्ध करनेवाले नहीं पाये जाते थे। जातीय जीवनकी जो तरंग उस समय बह रही थी उसका अनुभव वर्णन करनेवाले ऐतिहासिक और ही प्रकारके होते हैं।

राजनीतिक पक्ष

पुरातन ईरानियोंका धर्म-ग्रन्थ "यन्द आवेस्ता" एक प्रकारसे वेदोंकी नक़ल प्रतीत होता है। इसकी लेख-प्रणाली सर्वथा वैसी ही है। शब्द और नाम भी वैसे ही आते हैं। वेदोंके कई मंत्रोंकी नक़ल इसमें मिलती है। इसके अतिरिक्त कई विद्वानोंने खोज करके यह प्रकाशित किया है कि होम करने, पवित्र अग्नि रखने और यज्ञोपवीत डालनेकी रीतियां ईरानियोंने आर्य जातिसे ही ली हैं।

प्राचीन संसारपर वैदिक सभ्यताका प्रभाव

मनुस्मृति संसारमें धर्मकी सबसे प्राचीन पुस्तक है। फ्रांसीसी चीफ जस्टिस "जैकोलैट" ने अपनी पुस्तक "बाईबल इन इण्डिया" में यह सिद्ध किया है कि "तौरेत" के नियम और रीतियां सब मनुस्मृतिके नियमोंकी नक़ल हैं, क्योंकि यहूदियोंने उन नियमोंको मिश्रसे सीखा और मिश्रके लोगोंने जातिका विभाग और नियम सब मनुस्मृतिसे लिये हैं।

बाइल्डियाके पुरातन खण्डहरोंमें जो लेख मिले हैं वे ब्राह्मण ग्रन्थोंकी रीतियोंसे सर्वथा मिलते हैं और उनके देवताओंके नाम वैदिक शब्दोंसे लिये गये हैं। ज्यों ज्यों प्राचीन संसारका अन्वेषण होता जायगा त्यों त्यों इस बातपर प्रकाश पड़ता जायगा कि प्राचीन वैदिक कालकी सभ्यताका पुरातन संसारपर कितना प्रभाव पड़ा था।

आठवां प्रकरण।

दर्शनोंका काल।

उपनिषदोंके कालमें ऋषि ध्यान और चिन्तनमें लगे रहते थे। उस कालमें ऋषियोंको संसार रहस्योंसे पूर्ण प्रतीत होता था। वे इन रहस्योंकी खोजमें दिन रात निमग्न रहते थे और जिस किसी तरह वे इन रहस्योंको खोलना चाहते थे। दर्शनोंका काल इससे सर्वथा भिन्न था। दर्शन सत्ताके प्रश्नोंकी व्याख्या नहीं करते। उस समय समाज इतना बढ़ गया था कि उसमें दुःखका अस्तित्व बड़े वेगसे भासने लगा। दर्शनकार दुःखको देख कर व्याकुल हुए और उनके हृदयमें यही प्रश्न उत्पन्न होने लगा कि अधर्म और दुःख संसारमें क्यों है? क्या यह संसार केवल दुःखके लिये बनाया गया? इस दुःखके बन्धनसे मनुष्य किस प्रकार निवृत्त हो सकता है?

दर्शनोंका प्रारम्भ

उपनिषदोंके उपरान्त जिन छः बड़ी विद्याओंकी नींव डाली गयी थी वे हैं— ज्योतिष, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, शिक्षा तथा छन्द। इन छः विद्याओंको वेदांगकी पदवी दी गयी। इसके अनन्तर जो काल आया उसमें छः बड़े दर्शनोंकी नींव पड़ी जिनको उपांग कहते हैं। उनके नाम ये हैं— पतञ्जलि ऋषिका योगदर्शन, गौतमका न्यायदर्शन, व्यासका वेदान्तदर्शन, जैमिनिका पूर्वमीमांसादर्शन, कपिलका सांख्यदर्शन और कणादका वैशेषिक दर्शन। हमें स्मरण रखना चाहिये कि इस प्रकारके दार्शनिकोंकी संख्या बहुत अधिक थी। उपनिषदोंके ऋषियोंके पास कोई कोई जिज्ञासु शिष्य बनकर रहा करते थे। दर्शन कालके इन आचार्योंने अनेक विशेष आश्रम बनाये जिनमें वे अपने विशेष सिद्धान्तकी शिक्षा दिया करते थे। बहुधा ये आश्रम चलते फिरते मण्डल होते थे। आचार्य अपने शिष्योंके समूहको साथ लिये हुए स्थान स्थान पर फिरते थे जिसमें कि वे दूसरोंके साथ शास्त्रार्थ करें, अपने लिये शिष्य एकत्र करें, और अपने सिद्धान्तों का उपदेश दें।

वेदांग और उपांग

जहां तक दुःखका कारण व छुटकारेका सम्बन्ध है, वहां तक प्रायः सबके सब दर्शन एक ही परिणामपर पहुंचते हैं किन्तु उनके नाम भिन्न भिन्न हैं और दुःख दूर करनेके वे भिन्न भिन्न साधन बताते हैं। दुःखके कारणको वेदान्त मायाके नामसे पुकारता है। योग इसे अविद्या कहता है। सांख्य इसे अविवेक और न्याय अज्ञानके नामसे पुकारता है। इसके दूर करनेका उपाय ज्ञानकी प्राप्ति, योगद्वारा चित्तकी शुद्धि, आदि है। इन उपायोंसे दुःखका मूल नष्ट हो सकता है। इस कालमें आर्योंके सामाजिक जीवनका आदर्श दर्शनके द्वारा समाजमें ज्ञानकी वृद्धि करना था। तदनन्तर बौद्ध

संसारके दुःख का कारण

नवां प्रकरण।

रामायण और महाभारत।

जब हम महाभारतके कालतक पहुंचते हैं तो हमें समयका कुछ पता लगता है, क्योंकि युधिष्ठिरके नामसे एक संवत् लोगोंमें प्रचलित है। इससे इतना पता हमको लगता है कि पांच सहस्र वर्षके लगभग व्यतीत हुए कि कुरुक्षेत्रकी विशाल समरभूमिमें कौरवों और पाण्डवोंका घोर युद्ध हुआ।

रामायण और महाभारतका काल

रामायणका काल महाभारतके कालसे पूर्वका है क्योंकि रामायणमें महाभारत-की घटनाओं अथवा नामोंका कोई वर्णन नहीं पाया जाता। रामका काल कितना पहिले हुआ यह कहना बड़ा कठिन है। रामका काल कदाचित् बहुत पहिलेका है, क्योंकि उस समयके समाजकी अवस्था महाभारतके समाजसे बहुत ही विभिन्न है। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि रामायणके समयका समाज अत्युत्तम और पवित्र था। महाभारतके समयमें समाजका बहुत अधःपतन हो चुका था।

ऐसा प्रतीत होता है कि रामके समयमें आर्यजाति देशके भिन्न भिन्न भागोंमें फैल रही थी और उसे पग पगपर राक्षसोंसे युद्ध करना पड़ता था। रामायणका वृत्तान्त आरम्भ तथा अन्तमें राक्षसोंके साथ युद्धका वृत्तान्त है। महाभारतके कालमें इस देशके भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें बड़े बड़े आर्यराज्य स्थापित हो चुके थे और अब उनके अन्दर आभ्यन्तरिक युद्धका दोष फैलने आरम्भ हो गया था। जहां रामायणमें केवल एक स्त्री कैकेयी पापकी कामना रखती हुई प्रतीत होती है और उसे छोड़ कर कोई ऐसा स्त्री-पुरुष दृष्टिगोचर नहीं होता जो उसका सहायक हो, जहां स्वयं उसके पुत्र उसको बारम्बार धिक्कार देते हैं और जो राज्य वह उसके लिये प्राप्त करना चाहती थी उसपर लात मारते हैं, वहां महाभारतके समय दुर्योधन अपनी दुष्टतामें अकेला नहीं है। उसका पिता उसके साथ है। उसके भाई, सम्बन्धी, मित्र, दुःशासन शकुनि, कर्ण आदि हृदयमें वैसे ही द्वेषकी अग्निमें जलते हुए दिखायी देते हैं। रामायणके अन्दर कैकेयी समाजकी स्वच्छताके ऊपर एक कलंक प्रतीत होती है। महाभारतमें समाज श्वेत तथा कृष्णवर्ण दो भागोंमें विभक्त प्रतीत होता है। रामायणमें लक्ष्मणसे उसकी माता कहती है कि तुम्हारे भाग्यसे राम वनको जा रहे हैं क्योंकि तुम्हें उनकी सेवाका शुभ अवसर प्राप्त होगा। महाभारतमें भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा इत्यादि जो सब प्रकारसे धर्मकी पवित्र मूर्तियां हैं सब कुछ जानते हुए और मानते हुए भी इस युद्धमें अन्यायके लिये अपने प्राणोंका त्याग करते हैं।

रामायण और महाभारतके समयकी तुलना

विश्वामित्र ऋषि जंगलमें कुटिया बनाकर रहते थे। ऋषिलोग वनोंमें जाकर निवास करते थे। जंगलके रहनेवाले राक्षस उनका वहां बसना नहीं पसन्द करते थे। वे आकर उनके यज्ञमें विघ्न डालते थे। उनके हवनकुण्डोंमें अस्थियां डाल जाते थे। ऋषि राजा दशरथके पास यह कहनेके लिये आये कि आप अपना शूरवीर तथा योग्य पुत्र राक्षसोंसे युद्ध करनेके लिये भेजें। राम और लक्ष्मणने ऋषिके पास रह कर उनके आश्रमकी रक्षाकी और उनसे शस्त्रोंकी विद्या भी सीखी।

रामका जीवन

इतनेमें मिथिलापुरीमें जनककी पुत्री सीताका स्वयंवर हुआ। रामने स्वयंवरकी शर्तोंको पूर्ण करके सीताके साथ विवाह किया। दशरथ अयोध्या नगरीके राजा थे, सब अयोध्यावासियोंने कहा कि अब राम राज्य करनेके योग्य है। उसे युवराज बनाकर राज्यका काम उसके अर्पण किया जाय। राजा प्रसन्नता पूर्वक तैयार हो गये। कैकेयीके चित्तमें यह कुबुद्धि उत्पन्न हुई कि रामके राजा हो जाने पर मेरी पदवी नीची हो जायेगी। इसलिये रामको वनवास दिला कर अपने पुत्र भरतको राज्यका स्वामी बनाना चाहिये। राजा दशरथ अपनी पत्नीकी इस इच्छाको जानकर बे सुध हो गये। पूछनेपर कैकेयीने रामको सब कारण बता दिया। वे राजपाट त्याग कर वनको चल दिये। लक्ष्मण और सीता उनके साथ गये। रामने जंगलोंमें राक्षसोंसे युद्ध करके उनको पराजित किया। इस प्रकार रामने दक्षिणकी ओर जाते हुए सबसे बड़े राक्षस लंकाके राजा रावणसे युद्ध करके उसको भी पराजित किया और आर्यजातिकी पताका लंकामें जा हिलायी।

रामायणके समय परिवारमें एक दूसरेके साथ पूर्ण स्नेह पाया जाता है। जैसा भ्रातृ-प्रेम लक्ष्मण और भरतने रामके लिये दर्शाया वैसा संसारमें अल्पतर मिलता है। स्त्रीका धर्म और पति-प्रेम जैसा कि सीताने रामके लिये दर्शाया भारतकी देवियोंका सदासे आदर्श रहा है। रामका एक पत्नीव्रत प्रत्येक भारतवासीका आदर्श होना चाहिये। दशरथने जो स्नेह तथा त्याग रामके लिये किया उसका उदाहरण भी संसारमें कठिनतासे मिलता है। रामायणमें जो श्रवणकी कथा है उसमें पुत्रका अपने माता-पिताके लिये और मातापिताका अपने पुत्रके लिये प्रेम विचित्र प्रकारका है। श्रवण अपने चक्षुहीन मातापिताको बहँगीमें उठाये हुए यात्रा करता था। वह उनके लिये सरोवरसे जल लेनेके लिए गया, दशरथने उसे मृग समझ कर उसपर बाण चला दिया। राजा दशरथ यह दशा देख कर व्याकुल हो गये। जलका पात्र लेकर वह दोनों वृद्धोंके समीप गये, जब उनको वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो उन्होंने बिना जलपान किये पुत्रके वियोगमें प्राण त्याग दिये।

रामायणके समयकी सामाजिक अवस्था

उस समय विवाहके लिये स्वयंवरकी प्रथा प्रचलित थी। कन्याको अपने लिये वर चुननेका पूर्ण अधिकार दिया जाता था। अपनी प्रतिज्ञाका पालन करना प्राणोंसे अधिक प्रिय समझा जाता था। "रघुकुल रीत सदा चलि आई, प्राण जाय पर वचन न जाई।" अपने पिताकी आज्ञाका पालन इससे भी अधिक पवित्र धर्म समझा

भर दिया। ऐसे श्लोकोंका पुस्तकके विषय प्रकरणसे कोई सम्बन्ध नहीं है। वे पीछेसे प्रक्षिप्त किये गये थे। इस मिलावट और अत्युक्तिके होते हुए भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि इतिहास और नीतिकी यह अद्वितीय पुस्तक है।

महाभारतमें सामाजिक अवस्था

रामायणकी अपेक्षा महाभारतमें सामाजिक अवस्था बहुत नीचावस्थाको प्राप्त हो चुकी थी। ब्राह्मण लोग यद्यपि अपनी निर्धनता तथा त्यागके प्रनपर स्थिर थे तथापि वे अधिक सांसारिक होते जाते थे। द्रोणाचार्य उस समयके आदर्श ब्राह्मण हैं। वे बड़े निर्धन थे। उनके अश्वत्थामा नामका एक ही पुत्र था। जब वह बालक था तो उसने एक बार अपने सहचरोंको दूध पीते देखा। उसको भी पीनेकी इच्छा हुई। पिताके पास कुछ न था कि उसे दूध पिला सके। वह किसीसे मांगना भी न चाहता था। दूसरे बालकोंने आटा जलमें घोल कर अश्वत्थामाको पिला दिया। वह उसे दूध समझ कर प्रसन्नतापूर्वक पी कर नाचने लगा। द्रोणाचार्यको अत्यन्त शोक हुआ और उन्होंने पञ्चालके राजा द्रुपदके पास जानेका निश्चय किया। राजा गुरुकुलमें उनका सहपाठी था। जब राजा मिला तो द्रोणने मित्र कह कर सम्बोधन किया। द्रुपदने कहा हे ब्राह्मण! निर्धन और राजामें भला क्या मित्रता हो सकती है? मुझे अपना मित्र मत कहो। द्रोणाचार्य शोकमें भर कर कौरवोंके यहां नौकर हो गये और राजकुमारोंको शस्त्र-विद्या सिखाने लगे जिससे कि वे द्रुपदसे अपने अपमानका बदला ले सकें।

आगे चलकर दुर्योधनकी करतूतोंको देखिये। वह सब कुछ अपने पिता तथा भाइयोंकी सम्मतिसे करता था। पाण्डवोंको विष देने या उन्हें जलाकर मरवा डालनेसे उसकी अथवा उसके पिताकी आत्माको कुछ भी दुःख नहीं पहुंचा। फिर युधिष्ठिरकी साधुशीलता तथा सरलतासे अनुचित लाभ उठा कर उसने कपटसे जूआके द्वारा पाण्डवोंका सब कुछ छीन लिया। इससे कौरवोंकी आत्माको कुछ भी पीड़ा नहीं पहुंची। सबसे बढ़कर बात तो यह है कि भीष्म आदि महापुरुष यह सब जानते हुए भी अधर्मके सहायक बने रहे क्योंकि वे राजाका अन्न खाते थे। वस्तुतः उस समय समाजकी दशा अत्यन्त गिरी हुई थी।

राजनीतिक विचार

समाजके गिरनेका कारण उस कालकी नीति है। महाभारतकी नीति आधुनिक कालकी नीतिसे सर्वथा मिलती है। ऐसा भास होता है कि आधुनिक कालकी नीतिका आरम्भ महाभारतके कालसे हुआ है। महाभारतमें स्थल स्थलपर शत्रुओंके साथ बर्ताव करने और उनसे मोक्ष प्राप्त करनेके नियम बताये हैं। उन्हीं नियमोंपर आजकल भी आचरण किया जाता है। उनका अभिप्राय यह है कि शत्रु शत्रु है, उसपर कभी विश्वास न करना चाहिये, उससे सदा बचते रहना चाहिये और सदा ऐसा अवसर देखते रहना चाहिये जबकि उसका सिर कुचला जा सके।

उस कालमें शत्रु कौन था? जिस मनुष्यके विरुद्ध अपने स्वार्थसे अथवा ईर्षासे शत्रुताकी अग्नि उत्पन्न हो गयी हो वही शत्रु समझा जाता था। उस समय

एक प्रकारकी आत्मप्रशंसाकी कामना राजाओंके हृदयोंमें उत्पन्न हो गयी थी। सब से बड़ा राजा वह समझा जाता था जो राजसूय यज्ञ करे और शेष सब राजा उसके यज्ञमें उपस्थित हों। यदि कोई राजा न आवे तो वह यज्ञ सम्पूर्ण न समझा जाता था। इसका अर्थ यह था कि वह अपने आपको बड़ा समझता था। यह एक प्रकारका समराह्वान था। प्रत्येक राजा बिना कारण एक दूसरेसे, अपने निकटस्थोंसे, तथा अपने भाइयोंसे इसलिये द्वेष करने लगा कि जिसमें उनका मान उससे न बढ़ जाय। यही द्वेषकी अग्नि थी जो दुर्योधनके हृदयमें धधक रही थी।

युधिष्ठिरने जब राज्य सम्भाल लिया तो वे राजसूय यज्ञकी धुनमें लगे। एक दिन सभा लगी थी कि नारद ऋषि, जो सब विद्याओंमें निपुण थे, ऋषियोंको साथ लिये हुए आये। उन्होंने युधिष्ठिरको इस प्रकारका उपदेश

महाभारतकी नीतिके नियम

किया। "आपका खज़ाना तो भरापूरा है या नहीं? आपका मन धर्ममें आनन्द लेता है या नहीं? आप अपने और शत्रुके बलका ध्यान रखते हैं या नहीं? आप कृषिकी वृद्धि, व्यापारकी वृद्धि, दुर्ग-निर्माण, पुल बनवाना, हाथियोंका पकड़ना, रत्नों और धातुओंकी खानोंसे कर लेना और निर्जन स्थानोंको बसाना इन आठ कामोंमें उत्साह लेते हैं या नहीं? शत्रु, उदासीन तथा मित्रके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये यह जानते हैं या नहीं? बड़ी नीतिवाले मन्त्रियोंद्वारा अपने देशको सुरक्षित रखते हैं या नहीं? सहस्रों मूर्खोंकी अपेक्षा एक पण्डितको ग्रहण करते हैं या नहीं? कठोर दण्ड देकर प्रजाको भयभीत तो नहीं करते? अपनी सेनाको नियमपूर्वक वेतन देते हैं या नहीं? आपका सेनापति शूर, बुद्धिमान्, धैर्यवाला, पवित्र स्वभावका, कुलीन, अनुरागवाला और अपने कार्यमें चतुर है या नहीं? भयभीत, शरणमें आये शत्रुके साथ पुत्रके समान बर्ताव करते हैं या नहीं? आपका व्यय आपकी आयसे अधिक तो नहीं है? आपके देशमें सरोवर तो अनेक हैं? कृषिकार्य केवल वर्षाके आश्रित तो नहीं हैं? आपका वेद, धन, शास्त्र तथा स्त्री सब सुफल हैं या नहीं? इत्यादि।" ये समस्त नियम एक बड़े संकीर्ण समाजकी अवस्थामें पाये जाते हैं। महाभारतके कालकी सामाजिक तथा राजनीतिक अवस्था आनेमें बहुत समय लगा होगा।

क्षत्रियोंकी युद्धप्रणालीमें द्वन्द्वयुद्ध बहुत बर्ता जाता था। सेनाके युद्धमें अकेले योद्धा क्षेत्रमें निकल कर युद्धका निर्णयकर लेते थे। जब कभी एक दूसरेके मध्यमें बड़ाई-का प्रश्न होता था तो उसका निर्णय द्वन्द्वयुद्धसे हो जाता था।

युद्ध और विवाद

जरासन्ध कृष्णका बड़ा भयानक शत्रु था। उसने कई राजाओंको पकड़ कर बन्दीगृहमें भेजा था। युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञकी सफलताके लिये जरासन्धको जीतना आवश्यक था। कृष्ण, अर्जुन तथा भीम अकेले वहां चले गये और भीमने अकेले जरासन्धके साथ युद्ध कर उसका वध कर डाला। जब राजसूय यज्ञमें पूजाका समय आया तो भीष्मने भरी सभामें सबसे पहिला पद कृष्णको देनेका विचार किया। शिशुपाल उसके विरुद्ध बोला। इस शास्त्रार्थ-का दृश्य महाभारतमें अत्यन्त मनोरंजक है। जब कोई और उपाय दृष्टिगोचर न

हुआ तो कृष्णने शिशुपालसे द्वन्द्वयुद्ध करके सुदर्शन चक्रसे उसका गला काट डाला। विवाहकी उत्तम रीति तो स्वयंवरकी थी किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि गान्धर्व विवाहकी रीति भी बहुत प्रचलित थी। इस प्रकारके कितने ही विवाहोंका वर्णन महाभारतमें आता है। दुष्यन्त आखेट करता हुआ बहुत दूर वनमें एक ऋषिकी कुटियामें जा पहुंचता है। शकुन्तला नामकी अत्यन्त सुन्दर कन्या वहां खड़ी है। दोनों एक दूसरेको देख कर मोहित हो जाते हैं और विवाह कर लेते हैं। राजा चला जाता है। पीछे भरत उत्पन्न होता है। वह युवावस्थाको प्राप्त होता है। शकुन्तला उसे ले कर दुष्यन्तकी सभामें उपस्थित होती है और दुष्यन्त कहता है "मैं तुमको नहीं जानता।" शकुन्तलाके क्रोधका पारा चढ़ जाता है और वह एक प्रभावशाली वक्तृता देती है, जिसपर आकाशवाणी होती है कि शकुन्तला सच्ची है और भरत दुष्यन्तका पुत्र है।

दूसरा प्रकरण

सिकन्दर और तत्कालीन भारत।

सबसे पूर्व विदेशी जातिके जो लोग आर्यावर्तमें आये वे यूनानी लोग थे। यद्यपि इस समय यहां बौद्ध धर्म प्रचलित हो चुका था तो भी उसका अभी अधिक प्रचार नहीं हुआ था। प्राचीन सभ्यता अभी तक विद्यमान थी, इसलिये इन लोगोंके अनुभव अधिकतर भारतवर्षके वैदिक-काल के अन्तिम भागके द्योतक हैं।

यूनानियोंका भारतवर्षमें आगमन

यद्यपि यूनानियोंको आर्यावर्तका नाम पहिलेसे ज्ञात था तथापि आर्यावर्तकी अवस्था इन लोगोंके लेखोंसे प्रगट हुई जो सिकन्दरके साथ आर्यावर्तमें आये थे। सिकन्दर विजय प्राप्त करता हुआ विक्रमीय संवत् २७० वर्ष पूर्व आर्यावर्तमें प्रविष्ट हुआ। अटकके समीप उसने सिन्धु नदीको पार किया और सबसे पहिले तक्षशिलाकी रियासतमें पहुंचा। तक्षशिला (रावलपिण्डीके समीप) बड़ा भारी धनाढ्य नगर था। यहां पर एक विश्वविद्यालय भी था जहां दस सहस्रके लगभग विद्यार्थी भिन्न भिन्न विद्यायें प्राप्त करते थे।

सिकन्दर

उस समय पंजाब कई छोटी छोटी रियासतोंमें विभक्त था जो एक दूसरेसे द्वेष करती थीं, और विदेशीय आक्रामकोंके साथ, बजाय इसके कि एकत्रित होकर उनसे युद्ध करें, मिलनेके लिये प्रत्येक समय तत्पर रहती थीं।

पोरस नामक एक राजाने झेलम नदीपर बड़ी वीरतासे सिकन्दरके साथ युद्ध किया। लड़ाईमें पोरसके हाथी पीछेको ओर मुड़ पड़े। उन्होंने अपनी ही सेनाको कुचल डाला। पोरसका पुत्र युद्धमें मारा गया।

पोरससे युद्ध।

पोरस स्वयं जख्मी होकर पकड़ा गया सिकंदरने पोरससे कहा "आपको अब तुम्हारे साथ क्या व्यवहार किया जाय"? उत्तर मिला "जो राजाओंके अनुरूप हो"। अन्तको दोनोंमें मित्रता हो गयी। फिर संगालाके जो कुलोंके राठी सर्दार सिकन्दरके साथ युद्ध करनेका निश्चय किया। अन्तमें सिकन्दरने युद्ध करनेके लिये [illegible] दुर्गोंका विनाश कर दिया। परन्तु बाद रे भारतवर्ष तेरा भाग्य! ठीक युद्धके समय [illegible] कि सेना [illegible] हो। इससे सिकन्दरको अपने बढ़नेमें कोई कष्ट न हुआ।

व्यास नदीतक पहुंच कर सिकन्दरकी सेनाने आगे बढ़नेसे इन्कार कर दिया। सिकन्दरको विवश होकर लौटना पड़ा। [illegible] सिकन्दरको बहुत [illegible]। वहांसे सिन्धु नदीके द्वारा वह समुद्र तक पहुंचा, और [illegible]

का एक भाग जहाज़ों द्वारा फ़ारसकी खाड़ीकी ओर चला गया। शेष सेना स्वयं साथ लेकर वह दक्षिण बलोचिस्तान होता हुआ फ़ारस पहुँचा। यद्यपि वह पञ्जाबका कोई भाग विजित न कर सका तो भी कई स्थानोंपर वह कुछ सेना पीछे छोड़ गया। दो वर्ष पश्चात् विक्रम पूर्व २६६ में उसका देहान्त हो गया।

चन्द्र गुप्त

इस कालमें भारतवर्षमें एक बड़ी राजधानी चन्द्रगुप्तके अधीन स्थापित हो गयी। चन्द्रगुप्त पहिले सिकन्दरसे आकर इसलिये मिला जिसमें कि उसकी सेनाकी सहायतासे वह एक राज्यका स्वामी बन जावे। इस उपायमें वह सफल न हुआ; फिर उसने लौटकर मगध देशमें नन्दकुलकी राजधानी पाटलिपुत्रपर अधिकार प्राप्त करके अपना राज्य स्थापित कर लिया और उधर पंजाबकी रियासतोंपर भी अपना अधिकार जमाना आरम्भ कर दिया।

सिकन्दर तक्षशिलामें कुछ सेना और एक हाकिम छोड़ गया। उसके जानेपर भारतीयोंने यूनानी हाकिम और सेनाको मार डाला। जब सल्यूकसने बाक्तरिया (Bactria) में अपना अधिकार जमा लिया तो उसने पंजाबकी ओर मुख किया किन्तु इधर उसे अब छोटे छोटे राजाओंकी बजाय चन्द्रगुप्तसे युद्ध करना पड़ा। उसने चन्द्रगुप्तके साथ मित्रता कर ली और उसके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया। उसने पांच सौ हाथी लेकर पंजाब और काबुल उसके हाथ सौंप दिया। साथ ही अपना एक दूत मेगास्थनीज़ इसके दरबारमें भेजा जो विक्रम पूर्व २४९ से २४१ तक वहाँ रहा। मेगास्थनीज़ने आर्यावर्तके समाजका चित्र इस प्रकार खींचा है—

मेगास्थनीजका भारत-वर्णन

समाज अब चारके स्थानमें निम्नलिखित सात श्रेणियोंमें विभक्त हो चुका था, यथा, तत्त्ववित्, क्षत्रिय, राजाओंके सचिव, कृषक, ग्वाले, व्यवसायी और श्रमण। ब्राह्मण लोग तत्त्ववेत्ता होते थे (उनके जीवनके भिन्न भिन्न भाग वर्णन किये गये हैं)। ब्राह्मणोंके साथ साथ श्रमण भी थे जो कदाचित् वानप्रस्थ और वनोंमें रहनेवाले ब्रह्मचारी रहे होंगे। श्रमण लोग प्रायः बौद्ध धर्मके प्रचलित होनेपर लोगोंके आचारोंको देखनेवाले थे। इन्हींकी नकल ईसाई धर्मके विशप हैं। मेगास्थनीज़ने आर्यावर्तमें सड़ककी नापों, नदियोंके प्रवाहोंके परिवर्तनों तथा देशकी विशालता आदिका भी वृत्तान्त लिखा है। इसके अनन्तर भारतवर्षके लोगोंकी प्रशंसा करता हुआ मेगास्थनीज़ लिखता है कि आर्यावर्तमें दासत्वका नाम मात्र भी नहीं, स्त्रियाँ अतिशय विशुद्धशील हैं; मनुष्य बड़े शूर वीर हैं; वीरतामें ये सब एशियाई जातियोंसे बढ़ कर हैं, लोग अपने द्वारोंपर ताला कभी नहीं लगाते, कभी कोई आर्य झूठ बोलता हुआ नहीं सुना गया; वे गंभीर, परिश्रमी, जमींदार, और अच्छे व्यवसायी हैं; वे कभी राजसभाओंमें नहीं जाते और शान्तिसे अपने पुरुषोंकी आज्ञाओंका पालन करते हैं।

राजा और उसकी शासनप्रणाली ठीक वैसी ही थी जैसी कि मनु महाराजने लिखी है। मन्त्रियों और क्षत्रियोंकी दशा भी इसी प्रकार पायी जाती थी। समस्त

देश ११८ राज्योंमें विभक्त था। उस समय उनमेंसे कईमें प्रजातंत्रशासन स्थापित था। चन्द्रगुप्त सबका अधिराज समझा जाता था। उसने ग्रामोंकी अवस्था भली प्रकार वर्णन की है। प्रत्येक स्थानमें कृषक युद्ध सेवासे अलग रक्खे जाते थे। खेती बहुत कुछ वर्षापर निर्भर थी। ब्राह्मण वर्षाके संबन्धमें भविष्यवाणी किया करते थे। मेगास्थनीजने आर्यावर्तके रंगों, वस्त्रों, वनस्पतियों तथा शाक आदिकी उत्पत्तियोंका भी वर्णन किया है।

यहां यह कथन कर देना अनुपयुक्त न होगा कि यूनानी लोग गन्ना और रुई-का वृक्ष देख कर बहुत विस्मित हुए थे। मेगास्थनीज़ने लिखा है कि एक ऐसा वृक्ष था जिसके रससे मधु उत्पन्न होता था और दूसरेके फलसे वस्त्र। बारहवीं शताब्दी पर्यन्त यूरोपवालोंको शक्करका ज्ञान न था। बारहवीं शताब्दीमें आर्यावर्तसे वहां शक्करका जाना आरम्भ हुआ। सोलहवीं शताब्दी पर्यन्त केवल औषधियोंमें इसका प्रयोग वहां होता रहा। जब पुर्तगालवालोंने भारतवर्षमें आना आरम्भ किया तो वे गन्नेका पौधा वैस्टइण्डीज़में ले गये और शक्करकी उत्पत्ति दूसरे देशोंमें होने लगी। गत सौ वर्षके अन्दर कलोंकी उन्नतिके कारण इतनी शक्कर उत्पन्न होने लगी कि अब भारतवर्ष उसी शक्करको दूसरे देशोंसे मंगाता। है ठीक यही दशा रुईके वस्त्रोंकी भी थी।

सिकन्दर यहांके ब्राह्मणोंकी योग्यतासे बड़ा प्रभावित हुआ। उसने अत्यन्त यत्न करनेके पश्चात् कालानूस नामक ब्राह्मणको अपने साथ चलनेके लिये राजी किया। पर उस ब्राह्मणके साथी उसे अन्ततक रोकते रहे, फारस पहुंचने पर वह ब्राह्मण ज्वरग्रस्त हो गया। उसने निश्चय किया कि मैं अपने शरीरको अग्निके अर्पण कर प्राण त्याग दूंगा।

एक घटना

सिकन्दरने इस बातको सुन कर उसे बहुत समझाया कि ऐसा न करो। ब्राह्मणने उत्तर दिया कि मैं वृद्धावस्थाको पहुंच चुका हूं परन्तु अबतक कभी रोग ग्रस्त नहीं हुआ। अब यह ज्वर प्रकट करता है कि मेरा शरीर आत्माके रहनेके योग्य नहीं रहा। उसने आग्रह किया कि मुझे ब्राह्मणकी सच्ची मृत्यु मरने दिया जाय। सिकन्दरने उसे असंख्य रत्न देकर बड़ी शोभासे वहां तक पहुंचाया जहां उसकी चिता तैयार थी। यह ब्राह्मण गलेमें फूलोंके हार पहने वेद मंत्र गाता हुआ रत्नोंको इधर उधर फेंकता हुआ चितापर चढ़ गया और शान्ति पूर्वक अग्निज्वालामें मिल गया। इस घटनासे प्रकट होता है कि उस समय भी मृत शरीरको जलानेकी रीति प्राचीन आर्य पुरुषोंमें पायी जाती थी और अन्य आर्य जातिकी शाखाओंमें वैसी ही प्रचलित थी जैसी कि भारतके आर्योंके अन्दर।

ग्यारहवाँ प्रकरण।

बौद्ध धर्मका प्रभाव।

आर्यावर्तमें सिकन्दरके आनेके दो शताब्दी पूर्व बौद्धधर्मका प्रादुर्भाव हो चुका था परन्तु इसका प्रचार बादको हुआ। उस समयसे लेकर मुसलमानोंके भारतवर्षमें आने तक समस्तदेशका इतिहास प्रधानतया बौद्धधर्म का इतिहास है। पहिले कुछ शताब्दियों तक इसकी उन्नति होती रही, फिर अवनति होने लगी। ब्राह्मणोंके साथ बौद्धधर्म वालोंका बराबर संग्राम होता रहा। ये सहस्रवर्ष भारतवर्षके इतिहासमें बौद्धधर्मके साथ सम्मिलित हैं।

बौद्धधर्मकी उत्पत्ति

हम पूर्व लिख आये हैं कि बौद्धधर्मसे पूर्व आर्यावर्तमें दर्शनके भिन्न २ मतोंका बहुत प्रचार था। प्रत्येक मतके आचार्य स्थान २ पर अपने शिष्योंको साथ लिये हुए घूमते थे और अपने २ विचारोंका प्रचार करते थे। शाक्य मुनि गौतमने भी इसी विधिके अनुसार अपने सिद्धान्तोंका प्रचार आरम्भ किया। उन्होंने राजपुत्र होकर भी राज्य त्याग कर धर्मका अन्वेषण किया। इसलिये उनके कुलके समस्त मनुष्य एकदम उनके सिद्धान्तोंकी ओर झुक पड़े। उस समय ब्राह्मणोंने शेष जनतापर इतना प्रभाव डाल रखा था कि उनके विरुद्ध एक सुदृढ़ विरोध उत्पन्न हो गया था। उस समय ऐसे लोगोंकी एक विशेष संख्या हो गयी थी जो किसी विशेष वर्णसे सम्बन्ध न रखते थे। ये लोग ब्राह्मणोंके अनुचित दबावसे स्वतन्त्र होना चाहते थे। ब्राह्मण लोग विद्याओंका अध्ययन त्याग कर अधिकतर यज्ञ आदि रीतियोंपर ज़ोर देते थे और उनके द्वारा ही लोगोंको मोक्षका मार्ग बतलाते थे। बुद्धने मनुष्य-समानतापर ज़ोर दिया और प्रत्येक मनुष्यके कर्मोंको अच्छा बनाना ही धर्मका आदर्श बतलाया। इन कारणोंसे बुद्धको अपने सिद्धान्तोंके प्रचारमें अच्छी सफलता प्राप्त हुई। महाराज अशोकने बौद्धधर्मको अंगीकार किया। राजधर्म हो जाने पर इसकी विशेष उन्नति हुई। अब यह भारतवर्षसे बाहर अन्य देशोंमें भी फैलने लगा। इस प्रकार संसारमें एक नये धर्मकी नींव डाली गयी।

सफलताके कारण

वैदिककालमें धर्मका लक्ष्य केवल मनुष्यको जीवन व्यतीत करनेका सच्चा मार्ग बताना और आत्मिक उन्नतिके साधन सिखाना था। अब यद्यपि बौद्धधर्मके प्रचारक केवल प्रेम और युक्तिसे अपने मतका प्रचार करते थे तथापि धर्ममें इन दो नयी बातोंको बढ़ा कर एक नये धर्मकी नींव पड़नेसे मनुष्य-जातिके लिये एक अत्यन्त विचित्र परिणाम उत्पन्न हुआ।

ईसाई और इस्लाम धर्मकी उत्पत्ति

बौद्धधर्मके पश्चात् ईसाईधर्म उत्पन्न हुआ जिसने अपनी प्रचार-प्रणालीमें प्रेमके साथ तलवार और दूसरे कई अनुचित साधन भी धारण कर लिये। मुसलमानोंने तो इसको शिखर तक पहुंचा दिया। इन सब बातोंका आवश्यक परिणाम यह हुआ कि इन दोनों धर्मोंका इतिहास, जो वस्तुतः आधुनिक यूरोपीय जातियोंका इतिहास है, अत्यन्त भयानक रूपमें दिखलायी पड़ता है।

किसी विशेष व्यक्तिके नामपर, चाहे उसका पद कितना ही ऊंचा क्यों न हो, अनुयायी बनानेके लिये यत्न करना इसकी नींव डालता है। इसका वास्तविक परिणाम यह होता है कि जब तक धर्मके साथ उचित अथवा अनुचित विधिसे अपने अनुयायियोंकी संख्या बढ़ानेका विचार लगा रहता है तब तक कभी भी धार्मिक शान्ति स्थापित नहीं हो सकती।

महात्मा बुद्धका जीवन

कपिलवस्तुमें सूर्यवंशके राजा शुद्धोदनके यहां विक्रम पूर्व ५६५में गौतमबुद्धका जन्म हुआ। बुद्धका पिता एक छोटीसी रियासतका चुना हुआ राजा था। बाल्यावस्थासे ही गौतम खेल कूदमें बहुत कम मन लगाते थे। वे अपने महलके कोनोंमें बैठे हुए बड़े गम्भीर विषयोंपर विचार करते थे। पिताने उनका ध्यान अपने कर्तव्योंकी ओर आकर्षित करनेके लिये एक सुन्दरीसे उनका विवाह कर दिया। कुछ समयके लिये गौतम सांसारिक वासनाओंमें लिप्त हो गये परन्तु एक दिन नगरमें फिरते हुए उन्हें वृद्धावस्था, रोग तथा मृत्युके दृश्य दृष्टिगोचर हुए। उससे फिर वे अपने पुराने विचारोंमें निमग्न हो गये। जब वे २९ वर्षके हुए तो उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस भयसे कि अब मैं कदाचित संसारमें सर्वथा न फँस जाऊँ वे गृहत्याग करके विन्ध्याचल पर्वतकी ओर चले गये। एक रात्रिके प्रस्थानके अनन्तर उन्होंने अपना घोड़ा, रत्न और वस्त्र अपने पिताके पास भेज दिये और स्वयं भिक्षुकोंके वस्त्र धारण कर लिये। यह घटना गौतमके जीवनका महात्याग कहलाती है।

उन्होंने सबसे पूर्व राजगिरि जिला पटनामें ब्राह्मण साधुओंके पास शिक्षा प्राप्त की। साधुओंने गौतमको बताया कि मुक्तिका मार्ग शरीर और इन्द्रियोंका संयम करनेसे मिलता है। इस पर गया प्रदेशके वनोंमें जाकर उन्होंने छः वर्ष पर्यन्त तप और साधना की। उस समय पांच शिष्य उनके साथ थे। बुद्धगयाका मन्दिर उसी स्थान पर है जहां वे तपस्या किया करते थे। तपस्यासे शान्ति तो नहीं हुई उलटे निरुत्साह होता गया। उनके हृदयमें कई संशय उत्पन्न होने लगे कि क्या यह तप आदि मुक्तिके ठीक साधन हैं या नहीं? इन संशयोंसे उन्हें इतना दुःख हुआ कि वे मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। जब उन्हें सुध हुई तो उनका जीवन परिवर्तित हो गया। अब उन्हें यह निश्चय हो गया कि मुक्तिका मार्ग शरीरको कष्ट देनेमें नहीं किन्तु मनुष्योंको सच्चा ज्ञान करानेमें है। उन्होंने तप आदि सब साधन त्याग दिये। इस परिवर्तनसे उनके पहिले पांच शिष्य उन्हें छोड़ कर चले गये। इस समय फिर उनके हृदयमें एक संग्राम आरम्भ हुआ कि क्या मैं अकेला ही सन्मार्ग पर था और शेष सब विद्वान्

कुमार्ग पर थे ! यह वह संग्राम था जिसे बौद्ध पुस्तकोंने इस प्रकार वर्णन किया है कि अन्जीरके वृक्षके नीचे बैठे हुए मनुष्यके शत्रुने उसे बहकाया। अन्तमें इस संग्राममें बुद्धको विजय प्राप्त हुई और उन्हें वह प्रकाश मिला जिसका प्रचार बादको उन्होंने संसारभरमें किया। यह वृक्ष उस समयसे 'बोधितरु' अर्थात् प्रकाशका वृक्ष हो गया। उस प्रकाशसे गौतमकी आत्मा प्रकाशित हो गयी।

अब बुद्धका नया जन्म हुआ। दो मासके उपरान्त बुद्धने काशीके समीप अपनी शिक्षा देनी आरम्भ की। उन्होंने शिष्योंको पृथक् करके शिक्षा देनेकी प्राचीन प्रणाली छोड़ दी और उसके स्थान पर साधारण पुरुषोंको उपदेश देना आरम्भ किया। उनके प्रथम शिष्य गृहस्थ मनुष्य और स्त्रियां थीं। उनके पुराने पांच शिष्य इस समय फिर उनसे आ मिले। तीन मासमें उनके ६० शिष्य हो गये। उन्होंने उनको आज्ञा दी कि "जाओ इस नये धर्मका प्रचार करो"। स्वयं कुछ साधुओंको शिष्य बना कर वे राजगिरि पहुंचे जहांका राजा तथा प्रजा दोनों उनके अनुयायी बन गये।

वे प्रत्येक वर्ष आठ मास इधर उधर भ्रमण कर प्रचार करते थे और वर्षके चार मास एक स्थान पर रहते थे। स्त्री, पुरुष, निर्धन तथा धनवान् सब उनका उपदेश सुननेके लिये आते थे। उपदेशका तात्पर्य यह था कि मुक्ति और सुख, त्यागसे तथा अपने मनको वशमें करनेसे प्राप्त होता है। मनुष्यको दुःख और पापसे बचाना ही सबसे बड़ा धर्म है। बुद्धने विशेष करके बिहार तथा अवधमें अपने मतका प्रचार किया। गेरवे वस्त्र धारण किये, शिर मुड़ाये, हाथमें भिक्षापात्र लिये बुद्धका कपिलवस्तुमें द्वितीय बार भिक्षुककी दशामें प्रवेश करना एक हृदयग्राही घटना थी। उनका उपदेश सुनकर उनकी स्त्री और पुत्र भी उनके शिष्य बन गये। बुद्धने ३६ वर्षकी आयुसे लेकर ८० वर्षकी आयु पर्यन्त प्रचार किया। जब उन्होंने अपनी मृत्यु समीप देखी तो अपने शिष्योंको बुलाकर यह अन्तिम उपदेश किया "अपने मनका प्रत्येक समय ध्यान रखो। जो धर्म और नियमोंका आचरण करेगा वह जीवनके समुद्रसे पार होकर दुःखसे छूट जायगा।" बुद्धकी अन्तिम रात्रि आनन्द नामक एक शिष्यको धैर्य दिलानेमें व्यतीत हुई। बुद्धके अन्तिम शब्द ये थे "हे आनन्द, अपनी स्वतन्त्रताके लिये सर्वदा परिश्रम करते रहो।" गोरखपुरके ज़िलेमें कासिया नामक ग्राममें अन्जीरके तरुके तले भगवान् बुद्धने अपने प्राण त्यागे। बुद्धके जीवनके सम्बन्धमें भिन्न २ कथायें चीन तथा तिब्बत आदि देशोंमें लिखी हुई पायी जाती हैं जिनसे उनके राजनीतिक जीवन तथा प्रचारके मार्गमें आने वाली कठिनाइयोंपर बहुत प्रकाश पड़ता है।

महात्मा बुद्धका धर्मोपदेश

बौद्धधर्मके सिद्धान्त ये थे—"संसार दुःख रूपी शृङ्खलामें जकड़ा हुआ है। बुद्ध परमात्माकी ओरसे संसारको दुःखसे छुड़ानेके लिये आये हैं। सब कुछ परिवर्तित हो जायगा किन्तु 'धर्म' परिवर्तित न होगा। धर्मके सामने प्रत्येक व्यक्ति समान है और बिना किसी दूसरेकी सहायताके अपनी मुक्ति अर्थात् निर्वाण प्राप्त कर सकता है।" इन्होंने कर्मोंके सिद्धान्तपर बहुत ज़ोर दिया है। मनुष्यकी प्रस्तुत अवस्था उसके पिछले कर्मोंका फल

बौद्धधर्मके सिद्धान्त

है और वर्तमान कर्मोका फल भविष्य दशा होगी। बुद्धके विचारमें यह सिद्धान्त इतना मज़बूत था कि ईश्वर भी इसमें कुछ हस्तक्षेप न कर सकता था। कर्मोंका सिद्धान्त सभी मनुष्योंके लिये सामान्य था। अहंभाव तथा कामनाके दासत्वसे निकलनेपर मनुष्य परिपूर्ण हो सकता था और उनको सर्वथैव नष्ट कर देनेसे वह इस जीवन-में अर्हत और पश्चात् निर्वाण-पदको प्राप्त कर सकता था। संसारका अस्तित्व और इसकी वर्तमान अवस्था कर्मोंके आधारपर ही बतलायी गयी है। कर्म बीजके समान है और यही संसारकी उत्पत्तिके कारण हैं।

आरम्भमें ब्राह्मण लोग बुद्धके विरोधी न थे। किन्तु भिन्न भिन्न प्रकारके कई मत उस समय बड़े उत्साहसे अपने २ सिद्धान्तका प्रचार कर रहे थे। बुद्धका फैलता हुआ मत उन मतोंके मानने वालोंको भयानक नागके सदृश प्रतीत होता था। आरम्भमें बौद्धमत वालोंको इन्हीं लोगोंके साथ शास्त्रार्थ और झगड़े करने पड़ते थे। बौद्धधर्म लोगोंके आचार तथा विश्वासपर ज़ोर देता था। समाजकी रीतियोंमें बुद्धने कोई परिवर्तन न किया। बौद्ध तथा जैन लोगोंके विवाह और मृतकसंस्कार सब आर्योंके समान होते रहे इस लिये ब्राह्मणोंने कोई झगड़ा न किया। जब बौद्धधर्मकी कौंसिल (महासभा) में यह प्रश्न उठा तो उनके प्रधानने निर्णय कर दिया कि बौद्धधर्मका काम लोगोंको अर्हत बनाना है। कोई मनुष्य 'अर्हत-पद' को तब तक प्राप्त नहीं कर सकता था जब तक वह संसारका पूर्णतया त्याग करके भिक्षुक न बन जाय। जब तक लोग सांसारिक हैं तब तक बौद्ध धर्मको इससे कोई प्रयोजन नहीं कि वे किन रीतियोंका अनुसरण करते हैं। रीतियां ही समाजको बांधने वाले सम्बन्ध हैं इसलिये बौद्धधर्मने किसी नयी सोसायटी या समाजकी नींव न डाली।

बुद्धको अपने कुलमें अर्थात् शाक्य लोगोंमें विशेष सफलता हुई। समस्त शाक्य लोगोंने बौद्धमत धारण कर लिया। नये उत्साहका इतना प्रभाव हुआ कि उन्होंने यह निश्चय किया कि प्रत्येक गृहसे एक व्यक्ति भिक्षुक बनकर प्रचार करे। बुद्ध इस कार्यविधिसे प्रसन्न न थे। बौद्धधर्मके प्रचलित होनेपर उन्हें विशेष कष्टका सामना करना पड़ा। उनका चचेरा भाई देवदत्त एक पक्षका नेता बन बैठा। अधिक तपके कारण उसने बुद्धसे बढ़कर अपने आपको प्रकट किया। उसे इतनी सफलता हुई कि बुद्धको वृद्धावस्थामें नीचा देखना पड़ा। अन्तमें देवदत्तकी त्रुटियोंने ही उसे गिरा दिया।

ब्राह्मण अपनी शिक्षा केवल दो वर्णोतक परिमित रखते थे पर बुद्धकी शिक्षामें यह विशेषता थी कि उन्होंने अपने सिद्धान्तका प्रचार निकृष्ट तथा उत्कृष्ट सब लोगोंमें किया। बुद्धकी शिक्षाका प्रभाव न केवल भारतवर्ष किन्तु समस्त संसारकी जातियोंतक फैल गया। बुद्धकी शिक्षा वास्तवमें प्राचीन आर्यशास्त्रोंकी ही शिक्षा थी। उनका धर्म केवल एक साधन बना जिससे आर्योंका सिद्धान्त और उनका धर्म जिसे ब्राह्मणोंने क़ैद कर रखा था, संसारके भिन्न भिन्न भागोंमें विस्तृत हुआ।

बुद्धने एक विशेष सम्प्रदाय स्थापित किया जिसका मुख्य अभिप्राय यह था

कि उसके सदस्य बाहर जाकर अन्य जातियोंमें धर्मका प्रचार करें। उस संप्रदायका यह भी नियम था कि उसके सदस्य पाक्षिक सभा किया करें और अपने पापोंको उस सभाके सम्मुख स्वीकार करें।

बुद्धकी मृत्युके उपरान्त उसके पांच सौ शिष्य राजगिरि स्थानपर एकत्र हुए। वहां उन्होंने बुद्धकी शिक्षाको तीन बड़े बड़े भागोंमें बांटा यथा (१) उपदेश (२) साधन (३) सिद्धान्त। बुद्धके सौ वर्ष बाद अर्थात् बुद्धकी मृत्युके बाद विक्रम पूर्व ३३० में द्वितीय कौंसिल हुई जिसमें सात सौ शिष्य कुछ विवादास्पद बातोंका निर्णय करनेके लिये एकत्र हुए। परिणाम यह हुआ कि उनकी दो पार्टियां हो गयीं और फिर झगड़ा बढ़ते बढ़ते अट्ठारह भिन्न भिन्न सम्प्रदाय बन गये।

बौद्धधर्मकी उन्नति

महाराज अशोकके कालमें बौद्ध धर्मकी खूब उन्नति हुई। अशोक चन्द्रगुप्तके पौत्र थे। चार वर्षतक अपने भाइयोंके साथ संग्राम आदि करके विक्रम पूर्व २१६ में ये राज-सिंहासन पर बैठे। उनका राज्य काबुलतक फैला हुआ था। ये बहुत ही प्रतापशाली सम्राट् हुए हैं। सिंहासनपर बैठनेके तीन वर्ष पश्चात् उनने बौद्धधर्मकी शरण ली। उनने नये धर्मके फैलानेमें कोई उपाय शेष न छोड़ा। निम्नलिखित पांच भिन्न भिन्न उपाय काममें लाये गये। (१) एक महासभा की गयी जिसके द्वारा उन्होंने बौद्धधर्मका मन्तव्य ठीक ठीक निश्चित किया। (२) इसके लिये उन्होंने राज्यका एक विशेष विभाग नियत किया। (३) प्रचारके लिये स्थान स्थानपर उपदेशक भेजे गये। (४) बौद्ध धर्मकी पुस्तकें ठीक करायीं और (५) स्थान स्थानपर उन्होंने अपने सिद्धान्तोंके प्रचारके लिये स्तम्भ लगवाये।

महाराज अशोककी आज्ञासे तीसरी महासभा पटनेमें विक्रम पूर्व १८३ में हुई। यह महासभा इसलिये की गयी कि कुछ भिक्षुकोंने कई ऐसे नये सिद्धान्तोंका प्रचार करना आरम्भ कर दिया था जो बौद्धधर्मके विपरीत थे। उन सिद्धान्तोंको इस महासभाने अशुद्ध और धर्मके विरुद्ध बतलाया। एक सहस्र मनुष्य इस सभामें एकत्र हुए थे।

अशोककी आज्ञानुसार धर्मके नियम पत्थरके स्तंभोंपर खुदवाये गये जो उत्तर-पश्चिममें यूसफ जई तक, पश्चिममें काठियावाड़तक और पूर्वमें उड़ीसापर्यन्त खुदवाये हुए पाये जाते हैं। कथन है कि अशोकने ८४००० स्तूप बनवाये। धर्मको फैलाने और उसकी उन्नतिका ध्यान रखनेके लिये एक विशेष महकमा निश्चित किया गया जिसका अध्यक्ष धर्ममहामात्र कहलाता था। इसका काम समस्त राज्यमें तथा यवन कांबोज, गान्धार इत्यादि पश्चिमी सीमापर रहने वाली जातियोंके बीच धर्मका प्रचार करना था। सड़कोंपर कूए खुदवाये गये और वृक्ष लगाये गये। सारे राज्यमें मनुष्यों तथा पशुओंके लिये आरोग्यशालायें स्थापित की गयीं। पशुओं और स्त्रियोंके अन्दर शिक्षा फैलानेके लिये कर्मचारी नियुक्त किये गये। ऐसे ही नाना प्रकारके काम इस विभागके अधीन थे। कहा जाता है कि अशोकने बौद्धधर्मका प्रचार करनेके लिये ६४०० उपदेशक

थे। उन्होंने बौद्धनगरर तीन धार्मिक पुस्तकें तैयार कीं और इन तीन पुस्तकोंके आधारपर तिब्बत और चीनके पवित्र ग्रन्थ रचे गये। ये नयी पुस्तकें उत्तरी बौद्ध धर्मकीपुस्तकें कहलाती हैं।

कनिष्कके ग्रन्थ पाली भाषामें नहीं बल्कि संस्कृत भाषामें लिखे गये थे। संस्कृतभाषा पुनः जोर पकड़ने लगी। जिस प्रकार अशोककी महासभासे बौद्धधर्म दक्षिण-की ओर फैला उसी प्रकार कनिष्ककी महासभासे बौद्ध-धर्मका हिमालयके उस पार जोर-से फैलना आरम्भ हुआ। तिब्बत, मध्यएशिया और चीन उसके मार्गमें थे। इधर वह फारस और एशियाईकोचक होता हुआ कास्पियन सागरतक फैल गया। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि बौद्धमतने सिकन्दरिया और फिलिस्तीनमें धार्मिक विचारपर बड़ा प्रभाव उत्पन्न किया। चाहे ईसाई-धर्मके माननेवाले कुछ भी कहें परन्तु बौद्धधर्म और ईसाईधर्मकी रीतियोंमें इतनी समानता है कि इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि ईसाई-धर्मने बौद्धधर्मसे बहुत कुछ सीखा है।

अध्यापक मैक्समूलरने तो यहां तक सिद्ध किया है कि बुद्ध रोमन और ग्रीक चर्चके सेण्ट "जूसोफत" हैं, जिनके लिये रोमन चर्चने २७ नवम्बर (११ मार्गशीर्ष) का दिन निश्चित किया है। भाषाशास्त्रके विद्वान् जूसोफतको बोधिसत्वका अपभ्रंश बतलाते हैं।

बख्तरिया (Bactria) का यूनानी-राज्य शाक्य लोगोंके हाथमें आ गया था। ये लोग तातारी जातिके थे। विक्रमीय संवत्से डेढ़ शताब्दी पूर्व उन्होंने भारत-वर्षकी ओर कूच किया और "हू" जातिके लोगोंने बख्तरियाके राज्यपर अधिकार कर लिया। उसके साथ उन्होंने आगे भी बढ़ना आरम्भ किया और स्थान स्थानपर अपने निवास बनाने लगे। जिस प्रकार यूनानी तरंगको चन्द्रगुप्तने रोका था उसी प्रकार उस समय भारतीमालवा (उज्जैन) के राजा विक्रमादित्य इसी कामके लिये उत्पन्न हुए। विक्रमादित्य अपनी शूर-वीरता तथा पराक्रमके लिये इतने प्रसिद्ध हैं कि उत्तरी भारतवर्षमें उनके नामसे संवत प्रचलित है। उस समय तक युधिष्ठिरका संवत् प्रयुक्त होता था, परन्तु ईसासे ५७ वर्ष पूर्व विक्रमादित्यका संवत् आरम्भ होता है।

शकवीरियाके सौ-थियन और विक्रमादित्य

उन्हींके अनुकरणमें दक्षिणके एक राजा शालिवाहनका संवत् दक्षिणमें प्रच-लित किया गया। शालिवाहनने भी शाक्य लोगोंको पराजित करके उन्हें पीछे लौटा दिया। उसकी वीरताको देखकर उसके नामपर एक दूसरा संवत् प्रचलित किया गया।

शालिवाहनका संवत्

विक्रमादित्यका नाम इस कारणसे और भी प्रत्येक व्यक्तिकी जिह्वापर है कि उनके राज्यमें प्राचीन आर्यधर्मको फिर प्रधानता मिलनी आरम्भ हुई। उनके शासन-कालमें संस्कृतके बड़े बड़े कवि तथा विद्वान् उत्पन्न हुए। उनके दरबारके नवरत्न अभी तक प्रसिद्ध चले आते हैं। उनकी साधुशीलता तथा सर्व-प्रियताकी कथाएं अभी तक सुनायी जाती हैं। उनका नाम इतना प्रसिद्ध हुआ कि बादको उनके नामके कई राजा आर्यावर्तमें हुए। इसी नामके एक राजाने शाक्य लोगोंको कोड़ (मुलतानके समीप) के स्थानपर पराजित किया।

इसके उपरान्त कई सौ वर्षोंतक शुंग, कण्व, आन्ध्र और गुप्तवंश क्रम क्रमसे भारतवर्षमें राज्य करते रहे।

बारहवाँ प्रकरण

बौद्ध धर्मकी अवनति।

जब अशोकके कालमें बौद्धमत राज-धर्म हो गया तो स्वभावतः ब्राह्मण लोगोंको इससे बड़ा भारी धक्का लगा, किन्तु बौद्धधर्मके राजधर्म होनेसे ब्राह्मण निरुत्साह नहीं हुए। कुछ कालके लिये वे दब अवश्य गये पर विक्रमादित्यके

शान्त धार्मिक संग्राम

राज्यमें इन्हें पुनः सिर उठानेका अवसर प्राप्त हुआ। राजा अशोक या कनिष्क, इन दोनोंके नाम साधारण पुरुषोंमेंसे किसीको ज्ञात नहीं पर विक्रमादित्यका नाम प्रत्येक बालककी जिह्वापर है। इससे प्रकट होता है कि ब्राह्मणोंकी धार्मिक शक्ति उस समय कहाँ तक बढ़ी हुई थी। उस समयसे लेकर सात आठ सौ वर्ष पर्यन्त दोनों धर्मोंमें संग्राम होता रहा। प्रत्येक ग्राम और नगरमें दोनों धर्मोंके अनुयायी एक दूसरेके साथ साथ रहते थे। दोनों धर्मोंके मन्दिर स्थान स्थानपर विद्यमान थे। उनका संग्राम शान्त था। अब उन्नतिके शिखरपर पहुँचकर बौद्धधर्मकी अवनति आरम्भ हो गयी और ब्राह्मणोंका धर्म धीरे धीरे उन्नत होने लगा। यह सात आठ सौ वर्षोंका समय भारतवर्षके इतिहासमें शान्तिपूर्ण था। ऐसा प्रतीत होता है कि मुसलमानोंके आक्रमणोंतक भारत वर्षमें ऐसी कोई घटना नहीं हुई जो कथनीय हो। इन शताब्दियोंमें कोई बड़ा नाम दृष्टिगोचर नहीं होता और न कोई सामाजिक अथवा विद्यासम्बन्धी उन्नति ही हुई। यह प्रतीत होता है कि शताब्दियोंतक आर्यावर्तमें केवल यही शान्त संग्राम जारी रहा, ब्राह्मण-धर्म तथा बौद्ध धर्मके पारस्परिक संग्रामने भारतवासियोंकी कई शताब्दियां ले लीं और मानसिक उन्नतिके स्थानमें मानसिक अवनति उत्पन्न कर दी। इसका कारण यह था कि उस समय समस्त देशमें एक ही भाव काम करता था अर्थात् किन साधनोंसे अन्य धर्मोंको नीचा दिखाया जाय। अतः उन्हें ऐसे ही उपाय सोचने और प्रचलित करनेका अधिक विचार होता था, जिनसे वे साधारण मूर्ख लोगोंको अपनी ओर आकर्षित कर सकें।

बौद्ध लोग बुद्धको मानकी पूजा करने लगे थे। स्थान स्थानपर बुद्धकी मूर्तियां स्थापित थीं। बौद्धोंके अतिरिक्त जैनमतके लोग अपने तीर्थोंकी मूर्तियां सजा सजा कर बनाते थे। ब्राह्मणोंने भी इन दोनोंसे आगे बढ़ जानेके

मूर्ति-पूजाकी नींव

लिये अपने वैदिक देवताओंकी भिन्न भिन्न मूर्तियां बना कर स्थान स्थानपर मन्दिर स्थापित कर दिये जिसमें लोग ध्यान दें।

धर्मके फैलानेका दूसरा साधन भिन्न भिन्न पुराणोंकी कथा कहना था। उस समयतक जो शास्त्र संस्कृत भाषामें थे उनका प्रयोग तो केवल विशेष शिष्योंको नियमपूर्वक पढ़ानेमें ही होता था। उनका समझना साधारण पुरुषोंके लिये असम्भव था। इसलिये बौद्धों और जैनियोंकी कथाओंसे बढ़ बढ़ कर कथा सुननेके लिये पुराण रचे गये जिनमें उनकी अत्युक्तिसे भरी हुई कथायें और आश्चर्यजनक बातें साधारण पुरुषोंके हृदयोंपर अधिक प्रभाव डाल सकें।

पुराण

पुराणोंमें एक ईश्वरके तीन स्वरूप बनाये गये। ब्रह्मा, शिव और विष्णुके विषयमें विचित्र कथायें लिख कर पुराणोंकी संख्या तथा परिमाण बढ़ाया गया। इससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि उस कालके लेखकों और उनके श्रोताओंकी मानसिक तथा धार्मिक अवस्था अत्यन्त गिर चुकी थी।

इन सब बातोंका प्रयोजन भली भांति सिद्ध हो गया। बौद्धमत मूर्खोंके हाथ पड़ चुका था इसलिये ब्राह्मणोंने अपनी विद्वत्ता और चतुरतासे बौद्ध धर्मको स्पष्ट रूपसे पराजित कर दिया। बौद्ध धर्मने जो कुछ सीखा वह ब्राह्मण शास्त्रोंसे सीखा। बुद्धके सिद्धान्त सांख्यशास्त्रके सिद्धान्तोंके सिवाय और कुछ नहीं है। ब्राह्मणोंके पास न केवल सांख्यशास्त्र था प्रत्युत सांख्यशास्त्र जैसे कई और शास्त्र भी थे। इसलिये बुद्धकी शिक्षा विदेशोंमें तो सर्वथा नयी और पवित्र प्रतीत हुई, पर ब्राह्मणोंके लिये उसमें कोई विशेष आकर्षण-शक्ति न थी।

[illegible]

दूसरी बात ब्राह्मणोंके पक्षमें यह थी कि बुद्धने वेदों और शास्त्रोंके साथ जातिके प्राचीन महत्त्वको भी त्याग दिया। पुरातनकालकी विद्या और सभ्यताका मानचित्र प्रत्येक आर्य-हृदयपर खींचा जा चुका था। प्राचीन ऋषियों और महात्माओंके नाम तथा राम कृष्णके चरित्र लोगोंके हृदयोंसे एक दम हटा देना असम्भव था। साधारण मनुष्य विशेष पुरुषों और उनकी वीरताओंके इतने दास हो जाते हैं कि उन्हें इस दासत्वसे कोई युक्ति छुड़ा नहीं सकती।

यही सब बातें थीं जिनने लोगोंका चित्त पुनः बौद्धधर्मसे हटाकर ब्राह्मण-धर्मकी ओर फेर दिया। जब बौद्धधर्ममें मन्तव्योंपर झगड़े होकर कई सम्प्रदाय हो गये, तो आर्य-धर्म स्वभावतः इन सम्प्रदायोंसे स्वतन्त्र रहा क्योंकि आर्यधर्म इस प्रकारका धर्म न था जिसका आधार विशेष सिद्धान्तोंपर हो। ब्राह्मण लोग भिन्न भिन्न सिद्धान्तोंका सम्बन्ध दर्शनसे करते हैं। वे सब दर्शनोंके विचारोंको अपने अन्दर संयुक्त समझते थे। इस कारण उन्होंने आरम्भमें बौद्ध-मतके सिद्धान्तोंको एक शाखाका कथन किया किन्तु जब बौद्धमतने एक सिद्धान्तको स्वीकार करके शेष सबको पृथक् कर दिया तो उनके अन्दर आपसमें भेद उत्पन्न हो गया। इसके साथ ही ब्राह्मणोंने बौद्ध-धर्मको निगल जानेके लिये उसके प्रवर्तक महात्मा बुद्धको अपने दस बड़े अवतारोंमें शुमार कर लिया। जब बौद्धधर्म निर्बल हो गया और ब्राह्मणधर्म जोर पकड़ता गया तो ब्राह्मण लोग अभिमानमें चूर हो गये। उस समय दो बड़ी लहरें बौद्धधर्मके विरुद्ध चलायी गयीं।

कथन है कि ब्राह्मणोंने नास्तिकों और वेदकी निन्दा करनेवालोंसे दुःखित होकर आबू पर्वतपर बड़ा भारी यज्ञ किया । इस यज्ञकी समाप्तिपर राजपूतोंकी एक नयी जाति उत्पन्न हुई । उन्होंने वेदोंकी रक्षाका भार अपने ऊपर लिया । इन राजपूतोंको अग्निकुलके राजपूत कहते हैं । इसी कथनके आधारपर कोई सहस्र वर्ष पश्चात्, औरंगजेबके कालमें, पंजाबके गुरु गोविन्द सिंहने, जो पुराणोंके बड़े विद्वान् थे, नैनादेवी पर्वतपर इसी प्रकारका यज्ञ किया और एक नयी राजपूत जाति अर्थात् खाल्सा जाति उत्पन्न की ।

दूसरी लहर विद्वान् ब्राह्मणोंकी थी, जिन्होंने स्थान स्थानपर भ्रमण और शास्त्रार्थ करके भारतवर्षमें गिरते हुए बौद्ध-धर्मको अन्तिम धक्का दिया । इस लहरके

कुमारिल भट्ट

आरम्भ करनेवाले कुमारिल भट्ट विक्रमी सन्‌की आठवीं शताब्दीमें हुए । अभी कुमारिल भट्ट बालक ही थे कि वे एक दिन राजमहलके नीचेसे गुज़रे । ऊपरसे उन्होंने राज-कन्याको संस्कृत श्लोकमें यह कहते सुना कि "क्या करूं, किधर जाऊं, वेदोंकी रक्षा करने-वाला कोई दिखायी नहीं देता ।" कुमारिल भट्टने उत्तर दिया "हे देवी ! शोक मत कर अब कुमारिल भूमिपर विद्यमान है ।"

कुमारिल बौद्धधर्मका अध्ययन करनेके लिये शिष्य रूपसे उनके मठमें प्रविष्ट हुए । एक दिन बौद्ध लोग वेदोंका उपहास करने लगे । यह सुन उनके नेत्रोंमें अश्रुकण आ गये । उन्होंने उनके साथ शास्त्रार्थ आरम्भ किया । अन्तको उनने निश्चयपूर्वक यह कहा कि मैं पर्वतपरसे कूदनेको तैयार हूं । यदि वेद सच्चे हैं तो मुझे कुछ नहीं होगा । वे पर्वतसे कूद पड़े । गिरते हुए उनके नेत्रमें चोट आयी तो उनके विरोधियोंने कहा कि तुम हार गये । उनने उत्तर दिया कि यह पीड़ा इसलिये हुई है कि मैंने वेदके लिये "यदि" शब्दका प्रयोग किया है क्योंकि उससे संशय प्रकट होता है ।

\- कुमारिल भट्टने बौद्धधर्मके विरुद्ध प्रचार करना आरम्भ किया । उन्होंने अद्वैत सिद्धान्तकी नींव रखी और दक्षिणमें लोगों और राजाओंको अद्वितीय ईश्वरकी पूजा करनेका उपदेश दिया । दक्षिणमें उन्हें एक ऐसा शिष्य मिला जिसका नाम संसारके दर्शनविज्ञानमें सर्वथा स्थिर रहेगा । उनने अपना काम उसीके सुपुर्द किया । कुमारिलने चावलकी भूसियोंकी चिता स्वयं बना कर अपने आपको जीवित जला दिया । ऐसा करनेके पूर्व शंकराचार्यने उनसे इसका कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया कि मैंने यह बड़ा भारी पाप किया है कि बौद्धोंको गुरु बना कर धोखा दिया । इसका प्रायश्चित करनेके लिये मैं अपने आपको भस्मीभूत करता हूं ।

शंकराचार्य मलाबारमें उत्पन्न हुए । उन्होंने दक्षिण भारतवर्षसे चल कर सम्पूर्ण आर्यावर्तका दौरा किया । स्थान स्थानपर उन्होंने संस्कृत भाषामें बौद्ध लोगोंसे

स्वामी शंकराचार्य

शास्त्रार्थ किये जिनका वृत्तान्त शंकर-दिग्विजय नामक पुस्तकमें अङ्कित किया गया है । शंकरने वेदान्तकी व्याख्या करके आर्याव-र्तमें वेदान्तके नये मतको सब तक पहुंचा दिया । दुनियांमें न केवल आर्यावर्तमें प्रत्युत संसारमें शंकरके समान कोई नहीं हुआ । प्रचार करते हुए वे काश्मीर तक पहुंचे और ३२ वर्षकी आयुमें उन्होंने केदारनाथमें प्राण-त्याग किया । यह शंकरका ही काम था कि ब्राह्मणोंके धर्मको आर्यावर्तमें फिर विजय प्राप्त हुई ।

तेरहवाँ प्रकरण

चीनी यात्री ।

बील नामक लेखक जो चीनी यात्रियोंके जीवनवृत्तान्त और उनके मार्ग-वृत्तान्तोंका बहुत बड़ा ज्ञाता है, लिखता है:—"आजतक संसारके यात्रियोंमेंसे किन्हींने ऐसी श्रद्धा और भक्तिभावसे कभी इतनी दुस्तर और भयानक मार्ग तय नहीं किया, कभी इतने प्रेम और प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे अनुयायियोंने अपने धर्मके पवित्र चिन्होंको देखनेकी इच्छा नहीं की, और कभी संसारके मानव-समूहने वन, पर्वत तथा समुद्रोंके मार्गमें इतनी कठिनाइयां सहन नहीं कीं जितनी कठिनाइयां सरल किन्तु उत्साह पूर्ण चीनी यात्रियोंने अपने धर्मके प्रवर्त्तककी जन्मभूमि भारत-वर्षके दर्शनार्थ सहन कीं।"

फाहियान विक्रम संवत्की पांचवीं शताब्दीमें अफगानिस्तानसे होता हुआ भारतवर्ष पहुंचा और मगधकी भूमिमें भ्रमण करता हुआ बंगालकी खाड़ीतक आया। उसने देखा कि उस समय ब्राह्मण पुजारियोंका मान भी बौद्ध धर्मके भिक्षुओंके समान ही होता था। बौद्ध-धर्मके मठोंके साथ साथ आर्य देवताओंके मन्दिर भी पाये जाते थे।

फाहियान

छठीं शताब्दीके मध्यमें चीनसे दूसरा यात्री इतसिंग आया। इसने तत्कालीन भारतीय शिक्षाकी प्रणालीपर विस्तारसे लिखा है। इससे पता चलता है कि उस-कालमें शिक्षाका प्रबन्ध बौद्धोंके हाथमें था। यह लिखता है कि उसकालके आर्य भी अपने आपको हिन्दू कहना पसन्द न करते थे।

इतसिंग

ह्वेनसांग सातवीं शताब्दीमें मध्य-एशियासे होता हुआ भारतवर्ष पहुंचा और पन्द्रह सोलह वर्ष तक इस देशमें फिरता रहा। भारतवर्षके सम्बन्धमें उसका स्पष्ट कथन है—"दोनों धर्म लोगोंको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये कटिबद्ध थे। ब्राह्मणोंका बल बढ़ने लग गया था।" जब वह पञ्जाब पहुंचा तो उसे अशोक और कनिष्कके स्मारक दृष्टि-गोचर हुए। वहां शिव और पार्वतीके मन्दिर भी दिखायी दिये। समस्त पश्चिमोत्तर भारतवर्षमें बौद्धधर्मके मठोंके पास ब्राह्मणोंके भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंके मन्दिर विद्यमान थे। अफगानिस्तानकी इन रियासतोंपर एक बौद्ध राजा राज्य करता था। पेशावरका बड़ा स्तूप जिसे कनिष्कने तैयार किया था खाली पड़ा था। लोग अभी बौद्धधर्मसे नहीं हटे थे। काश्मीरमें पांच सौ मठ और पांच सहस्र भिक्षुक थे और इनकी शिक्षाके कारण लोग कट्टर बौद्ध थे। उस कालमें जहां आजकल अन्दुराबी स्थान है लोग बौद्धधर्मसे सर्वथा विमुख हो चुके थे और परस्पर लड़ाई झगड़े करते थे।

ह्वेनसांग

कथन है कि ब्राह्मणोंने नास्तिकों और वेदकी निन्दा करनेवालोंसे दुःखित होकर आबू पर्वतपर बड़ा भारी यज्ञ किया। इस यज्ञकी समाप्तिपर राजपूतोंकी एक नयी जाति उत्पन्न हुई। उन्होंने वेदोंकी रक्षाका भार अपने ऊपर लिया। इन राजपूतोंको अग्निकुलके राजपूत कहते हैं। इसी कथनके आधारपर कोई महत्व वर्ष पश्चात्, औरंगजेबके कालमें, पञ्जाबके गुरु गोविन्द सिंहने, जो पुराणोंके बड़े विद्वान् थे, नैनादेवी पर्वतपर इसी प्रकारका यज्ञ किया और एक नयी राजपूत जाति अर्थात् खाल्सा जाति उत्पन्न की।

दूसरी लहर विद्वान् ब्राह्मणोंकी थी, जिन्होंने स्थान स्थानपर भ्रमण और शास्त्रार्थ करके भारतवर्षमें गिरते हुए बौद्ध-धर्मको अन्तिम धक्का दिया। इस लहरके

कुमारिल भट्ट

आरम्भ करनेवाले कुमारिल भट्ट विक्रमी संवत्की आठवीं शताब्दीमें हुए। अभी कुमारिल भट्ट बालक ही थे कि वे एक दिन राजमहलके नीचेसे गुज़रे। ऊपरसे उन्होंने राज-कन्याको संस्कृत श्लोकमें यह कहते सुना कि "क्या करूं, किधर जाऊं, वेदोंकी रक्षा करनेवाला कोई दिखायी नहीं देता।" कुमारिल भट्टने उत्तर दिया "हे देवी! शोक मत कर अब कुमारिल भूमिपर विद्यमान है।"

कुमारिल बौद्धधर्मका अध्ययन करनेके लिये शिष्य रूपसे उनके मठमें प्रविष्ट हुए। एक दिन बौद्ध लोग वेदोंका उपहास करने लगे। यह सुन उनके नेत्रोंमें अश्रुकण आ गये। उन्होंने उनके साथ शास्त्रार्थ आरम्भ किया। अन्तको उनने निश्चयपूर्वक यह कहा कि मैं पर्वतपरसे कूदनेको तैयार हूं। यदि वेद सच्चे हैं तो मुझे कुछ नहीं होगा। वे पर्वतसे कूद पड़े। गिरते हुए उनके नेत्रमें चोट आयी तो उनके विरोधियोंने कहा कि तुम हार गये। उनने उत्तर दिया कि यह पीड़ा इसलिये हुई है कि मैंने वेदके लिये "यदि" शब्दका प्रयोग किया है क्योंकि उससे संशय प्रकट होता है।

कुमारिल भट्टने बौद्धधर्मके विरुद्ध प्रचार करना आरम्भ किया। उन्होंने अद्वैत सिद्धान्तकी नींव रखी और दक्षिणमें लोगों और राजाओंको अद्वितीय ईश्वरकी पूजा करनेका उपदेश दिया। दक्षिणमें उन्हें एक ऐसा शिष्य मिला जिसका नाम संसारके दर्शनविज्ञानमें सर्वथा स्थिर रहेगा। उनने अपना काम उसीके सुपुर्द किया। कुमारिलने चावलकी भूसियोंकी चिता स्वयं बना कर अपने आपको जीवित जला दिया। ऐसा करनेके पूर्व शंकराचार्यने उनसे इसका कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया कि मैंने यह बड़ा भारी पाप किया है कि बौद्धोंको गुरू बना कर धोखा दिया। उसका प्रायश्चित करनेके लिये मैं अपने आपको भस्मीभूत करता हूं।

शंकराचार्य मलाबारमें उत्पन्न हुए। उन्होंने दक्षिण भारतवर्षसे चल कर सम्पूर्ण आर्यावर्तका दौरा किया। स्थान स्थानपर उन्होंने संस्कृत भाषामें बौद्ध लोगोंसे

स्वामी शंकराचार्य

शास्त्रार्थ किये जिनका वृत्तान्त शंकर-दिग्विजय नामक पुस्तकमें अंकित किया गया है। शंकरने वेदान्तकी व्याख्या करके आर्यावर्तमें वेदान्तके नये मतको सब तक पहुंचा दिया। युक्तिमें न केवल आर्यावर्तमें प्रत्युत संसारमें शंकरके समान कोई नहीं हुआ। प्रचार करते हुए वे काश्मीर तक पहुंचे और ३२ वर्षकी आयुमें उन्होंने केदारनाथमें प्राण-त्याग किया। यह शंकरका ही काम था कि ब्राह्मणोंके धर्मको आर्यावर्तमें फिर विजय प्राप्त हुई।

तेरहवाँ प्रकरण

चीनी यात्री।

बील नामक लेखक जो चीनी यात्रियोंके जीवनवृत्तान्त और उनके मार्ग-वृत्तान्तोंका बहुत बड़ा ज्ञाता है, लिखता है:—"आजतक संसारके यात्रियोंमेंसे किसीने ऐसी श्रद्धा और भक्तिभावसे कभी इतनी दूरका और भयानक मार्ग तय नहीं किया, कभी इतने प्रेम और प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे अनुयायियोंने अपने धर्मके पवित्र चिन्हको देखनेकी इच्छा नहीं की, और कभी संसारके मानव-समूहने वन, पर्वत तथा समुद्रोंके मार्गमें इतनी कठिनाइयां सहन नहीं कीं जितनी कठिनाइयां सरल किन्तु उत्साह पूर्ण चीनी यात्रियोंने अपने धर्मके प्रवर्तककी जन्मभूमि भारत-वर्षके दर्शनार्थ सहन कीं।"

फाहियान

फाहियान विक्रम संवत्की पांचवी शताब्दीमें अफ़गानिस्तानसे होता हुआ भारतवर्ष पहुंचा और गंगाकी भूमिसे भ्रमण करता हुआ बंगालकी खाड़ीतक आया। उसने देखा कि उस समय ब्राह्मण पुजारियोंका मान भी बौद्ध धर्मके भिक्षुकोंके समान ही होता था। बौद्ध-धर्मके मठोंके साथ साथ आर्य देवताओंके मन्दिर भी पाये जाते थे।

इत्सिंग

छठीं शताब्दीके मध्यमें चीनसे दूसरा यात्री इत्सिंग आया। इसने तत्कालीन भारतीय शिक्षाकी प्रणालीपर विस्तारसे लिखा है। उससे पता चलता है कि उस-कालमें शिक्षाका प्रबन्ध बौद्धोंके हाथमें था। वह लिखता है कि उसकालके आर्य भी अपने आपको हिन्दू कहना पसन्द न करते थे।

ह्यूनत्सांग

ह्यूनत्सांग सातवीं शताब्दीमें मध्य-एशियासे होता हुआ भारतवर्ष पहुंचा और पन्द्रह सोलह वर्ष तक इस देशमें फिरता रहा। भारतवर्षके सम्बन्धमें उसका प्रत्यक्ष कथन है—"दोनों धर्म लोगोंको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये कटिबद्ध थे। ब्राह्मणोंका बल बढ़ने लग गया था।" जब वह पंजाब पहुंचा तो उसे अशोक और कनिष्कके स्मारक दृष्टि-गोचर हुए। वहां शिव और पार्वतीके मन्दिर भी दिखायी दिये। समस्त पश्चिमोत्तर भारतवर्षमें बौद्धधर्मके मठोंके पास ब्राह्मणोंके भिन्न भिन्न संप्रदायोंके मन्दिर विद्यमान थे। अफ़ग़ानिस्तानकी इन रियासतोंपर एक बौद्ध राजा राज्य करता था। पेशावरका बड़ा मठ जिसे कनिष्कने तैयार किया था खाली पड़ा था। लोग अभी बौद्धधर्मसे नहीं हटे थे। काश्मीरमें पांच सौ मठ और पांच सहस्र भिक्षुक थे और उनकी शिक्षाके प्रभावसे लोग पक्के बौद्ध थे। उस भागमें जहां आजकल जयपुरकी रियासत है लोग बौद्धधर्मसे सर्वथा विमुख हो चुके थे और परस्पर लड़ाई झगड़े करते थे।

गंगा और यमुनाके बीचवाले प्रदेश तथा बिहारमें बौद्धधर्म अभी उन्नति-पर था । गंगाके तटपर कन्नौजमें एक बड़ा भारी बौद्ध राजा राज्य करता था जिसका नाम शिलादित्य था । उसका राज्य पंजाबसे बंगाल और हिमालयसे नर्मदातक फैला हुआ था । उसके राज्यमें एक सौ मठ और दस सहस्र भिक्षुक रहते थे । उसका ज्येष्ठ भ्राता जो प्राच्य भारतमें एक राजाके साथ युद्धमें मारा गया था बौद्धधर्मसे अत्यन्त घृणा करता था । कदाचित् इसी कारण शिलादित्य दोनों धर्मोंको समदृष्टिसे देखने लग गया । उसके अधीन हिन्दू देवताओंके दो सौ मन्दिर खड़े हो गये ।

शिलादित्य

शिलादित्यको महाराजा अशोकका अनुकरण करनेका बड़ा चाव था । उसने संवत् ६९१ विक्रमीमें एक बड़ी सभा की जिसमें बौद्ध और ब्राह्मण दोनों एकत्र हुए । इनके अतिरिक्त २१ छोटे छोटे राजा भी उसमें विद्यमान थे । उस सभामें भी ऐसा प्रतीत होता है कि ब्राह्मण-धर्म बौद्धधर्मके साथ युद्धके लिये भली भांति कटिबद्ध होगया था , और बौद्धधर्म अपने भेदोंके कारण बलहीन हो रहा था । इस सभामें पहिले ब्राह्मणों और बौद्धोंके मध्य शास्त्रार्थ हुआ । फिर बौद्धधर्मके दो पक्षोंमें शास्त्रार्थ हुआ जिनको दक्षिण और उत्तर क्रम कहते हैं ।

इस अवसरपर जो रीतियां हुईं उनसे भी दोनों धर्मोंकी मिलावट प्रकट होती है । सभाके प्रथम दिन बुद्धकी मूर्ति बड़े समारोहके साथ खड़ी की गयी । दूसरे दिन सूर्य्य देवताकी और तीसरे दिन शिवकी मूर्ति खड़ी की गयी ।

शिलादित्य प्रति पांचवे वर्ष राजकीय कोशको दानमें बांट दिया करता था । ह्यूनसांग लिखता है कि प्रयागमें जहां गंगा और यमुना मिलती हैं एक विस्तृतभूमि-पर निर्धन तथा धनवान् ७५ दिन तक भोजन करते थे । शिलादित्य अपने राजगृहसे सब धन सम्पत्ति लाकर ब्राह्मणों और बौद्धोंके मध्य बिना पक्षपातके बांट देता था । अन्तमें वह अपने राजकीय वस्त्र और आभरण भी उतार कर दूसरोंको दे देता था और स्वयं बुद्धके अनुकरणमें भिक्षुकोंके वस्त्र धारण कर लेता था । इस रीतिसे बुद्धके महात्यागका अनुकरण किया जाता था ।

शिलादित्यकी दानशीलता

नालन्दका बड़ा मठ गयाके समीप एक बड़े ग्राममें है । वहां एक बड़ा विश्व-विद्यालय था, जहां पर दस सहस्र भिक्षुक पढ़ते थे । सहस्रों ब्रह्मचारी अध्यात्म-विद्या, दर्शन, धर्मशास्त्र, विज्ञान और विशेषकर आयुर्वेदका अध्ययन करते थे । इस मठका सब व्यय राज्यसे मिलता था । ब्राह्मण लोग उसपर अधिकार करने या उसे उखाड़ने-पर उद्यत थे ।

ह्यूनसांगने उत्तर और दक्षिण भारतमें भी भ्रमण किया । उसने सर्वत्र दोनों धर्मोंको परस्पर मिलते हुए पाया । बुद्धगया जो स्थान बौद्धोंकी कहानियोंमें बड़ा पवित्र समझा जाता है ब्राह्मणोंके अधिकारमें आ चुका था । आसाम बौद्धधर्मके अन्दर नहीं आया था । समस्त उड़ीसा बौद्धधर्मावलम्बी था । सब जगह ब्राह्मण देवताओंके मन्दिर बौद्ध मन्दिरोंसे पांचगुना अधिक थे । सारे दक्षिणमें बौद्धधर्म ब्राह्मणोंके बढ़ते हुए प्रवाह-विरुद्ध संग्राम कर रहा था ।

इन संग्रामोंके अनन्तर आठवीं शताब्दीमें ब्राह्मण धर्मने भारतवर्षमें बौद्धधर्मको पराजित किया। ग्यारहवीं शताब्दीमें केवल उड़ीसा और काश्मीरकी दो रियासतें बौद्धधर्ममें रह गयीं। जब भारतवर्षपर मुसल्मानोंने अपना हमला किया तो आर्यावर्तके अंतर्भागसे बौद्धधर्म लुप्त हो चुका था। केवल मगधमें पाल कुलके राजा बौद्धधर्मावलम्बी थे। पाल राजाओंका राज्य बख्त्यार खिल्जीके आक्रमण तक क़ायम रहा।

इस प्रकार बौद्धधर्म अपने गृहसे बहिष्कृत किया गया, परंतु यह स्वाभाविक बात थी कि बौद्धधर्मकी सफलता विदेशोंमें अत्यधिक हुई। विदेशोंमें इसकी विजय अत्यन्त आश्चर्यजनक है। मनुष्यजातिका सबसे अधिक भाग इस धर्मका अनुयायी है। तिब्बत, ब्रह्मा, स्याम, चीन, जापान इत्यादि देशोंमें उसका पर्याप्त बल था और संसारकी ½ जनसंख्या अब भी बुद्धकी शिक्षाको मानती है। संसारके आधे मनुष्योंको इसने साहित्य और धर्म दिया है और शेष आधे मनुष्योंके विचारों तथा विद्याओंपर भी बड़ा भारी प्रभाव डाला है।

यद्यपि आर्यावर्तमें बौद्धधर्मका केवल चिन्हही शेष रह गया है तथापि उसका प्रभाव आर्योंपर बहुत गंभीर पड़ा है। बौद्धधर्मके विरुद्ध ब्राह्मणोंका जो संग्राम हुआ उसमें उन लोगोंने पूजाकी नयी नयी विधियां चलायीं और बड़ी अत्युक्तियोंसे भरा हुआ साहित्य उत्पन्न किया, परंतु उसके प्रभावको वे पूरी तरहसे न दबा सके। आर्योंके आचारपर बौद्धधर्मका सबसे बड़ा प्रभाव यह हुआ कि जातिकी जाति नरम दल वाली हो गयी। प्रत्येक दशामें सब प्राणियोंके जीवनका विचार रखना बौद्धधर्मकी विशेषता थी। इस शिक्षाको शिखरपर ले जानेका यह परिणाम हुआ कि वीरता तथा उत्साहका भाव लोगोंके हृदयोंसे लुप्त हो गया, जैसा कि अब भी ब्रह्मा आदि देशोंकी आधुनिक अवस्थासे स्पष्ट है।

बौद्धधर्मका प्रभाव

ब्राह्मणोंके धर्मकी विजय हुई। उस समय यह देखा गया कि मेल-मिलापके सिद्धांतके स्थानपर विभाग तथा पार्थक्यका सिद्धांत बड़े वेगसे काम करने लगा। उसका परिणाम यह हुआ कि समाजमें जात-पांतकी पेचीदगियां पैदा हो गयीं जो अबतक पायी जाती हैं।

सामाजिक प्रभाव

पहिले समाजका विभाग चार वर्णोंके आधारपर था. परंतु जब यूनानी लोग आये उस समय चारके स्थानपर सात वर्ण हो गये थे। जब मध्यएशियाकी अन्य जातियोंका आगमन बढ़ा तो ये वर्ण और बढ़ने लगे। उधर जब ब्राह्मणोंने भिन्न भिन्न देवताओंकी पूजाकी रीति प्रचलित की तो एक विशेष देवताकी पूजा करनेवालोंका एक समूह बन गया। इस प्रकार समाज भिन्न भिन्न समूहोंमें विभक्त होकर छिन्न भिन्न हो गया। जब एक बार विभागका रोग समाजमें प्रविष्ट होगया तो साधारण मत-भेदोंपर भी पृथक् पृथक् समूह बनने लगे। जब कोई व्यक्ति कुछ प्रसिद्ध हुआ तो उसकी सतान अपने आपको एक विशेष नामसे पुकारने लगी ताकि वह शेष समाजसे पहिचानी जा सके। जब एक स्थानके समूह किसी अन्य स्थानमें जाकर निवास करने लगे

तो उन्होंने अपना एक पृथक् समूह बना लिया। इसी प्रकार भिन्न भिन्न व्यवसायोंने अपनी अपनी पृथक् श्रेणी बनाकर विशेष नियम बनाने आरंभ किये। जिन नियमोंपर आज कल पाश्चात्य देशोंमें व्यवसायी पुरुषोंके समाज सोसाइटी तथा सहयोगी संस्थायें बन रही हैं इसी प्रकार इन लोगोंने परस्पर सहानुभूति तथा पारस्परिक सहायताके आधारपर जातियाँ बना लीं। इनके अलावा यवनोंके आक्रमणोंके समय और कई छोटी मोटी घटनाएं उत्पन्न हुईं जिनके कारण समाज सहस्रों छोटी छोटी श्रेणियोंमें विभक्त हो गया। ज्यों ज्यों ब्राह्मणोंकी उन्नति होती गयी त्यों त्यों नयी नयी जातियाँ भी बनती गयीं। पर इन जातियोंके परिपूर्ण होनेमें कई शताब्दियाँ और लगीं। मुसल्मानोंके आक्रमणसे जातियोंके बननेमें और भी सहायता मिली। इस महत्व पर्वके संग्राममें आर्योंने किसी बातमें कोई उन्नति नहीं की बल्कि वैदिककालमें अन्वेषण की हुई क्रियाओंको भी भुला दिया। उन्होंने अपनी सारी शक्ति दूसरे धर्मोंके विरोधमें व्यय कर दी। इसका भयानक फल यह हुआ कि जब इस संग्रामकी समाप्तिपर एक बड़ी धार्मिक तथा नैतिक शक्तिने आकर भारतवर्षको दबाना आरम्भ किया तो आर्यजाति इस संग्रामके प्रभावसे थक कर बलहीन हो चुकी थी। न उसके पास राजनीतिक बल था जिससे वह मुसल्मान आक्रामकोंके विरुद्ध युद्ध कर सकती और न बुद्धि तथा विद्या सम्बंधी कोई बड़ा शस्त्र ही उसके पास था जो इस नये कष्टमें उसके काम आता। चक्रवर्ती महाराजाओंका काल व्यतीत हो चुका था। उस समय देशमें छोटे छोटे राजा राज्य करते थे जिनमें परस्पर कोई एकता न थी और न उनके अन्दर एकत्र हो कर विदेशीय लोगोंके प्रति युद्ध करनेका उत्साह ही विद्यमान था।

बौद्धधर्मका प्रभाव। आर्योंपर चाहे अच्छा हुआ हो अथवा बुरा परन्तु एक बात स्मरण रख लेनी चाहिये कि प्रत्येक आर्य महात्मा बुद्धको राम और कृष्णके पश्चात् अपने देशका सर्वश्रेष्ठ महात्मा समझता है और वह उन्हें प्रतिष्ठा तथा प्रेमकी दृष्टिसे देखता है।

अपूर्व दृश्य हमारे सामने उपस्थित होता है। विदेशी आक्रामक किसी एक राजाके दुर्गपर आक्रमण करता था पर साथके दूसरे राजालोग शान्तिसे बैठे हुए अपना सिर छिपा लेते थे। वे यह नहीं समझ सकते थे कि जो शत्रु आज हमारे भाईको खा-रहा है वह कल हमको भी निगल जायगा। विदेशी आक्रमणकारी शत्रु सहस्रों मील देशके अन्दर भ्रमण करते थे। अपने तथा अपने घोड़ोंके लिये भोजन मार्गमें लेते जाते थे। उन्हें किसी प्रकारकी रुकावट नहीं होती थी। इस प्रकारकी अवस्थासे पता लगता है कि एक एक सैनिक सैकड़ों मनुष्यों तथा स्त्रियोंको दास बनाकर ले जाता था, कोई पूछता भी न था। पकड़े हुए कैदी भेड़ोंके समान साथ चल पड़ते थे। सहस्रोंका वध कर दिया जाता था और वे मृत्युसे बचनेके लिये कोई यत्न न करते थे। वे रोते थे, चिल्लाते थे, पर हाथ उठाना न जानते थे।

यहांके लोग राजनीतिसे सर्वथा अनभिज्ञ हो गये थे। उनकी दृष्टिमें राज्य की कुछ सत्ता ही न थी। देशका राज्य देशके शारीरिक बलको प्रकट करता है।

इसका कारण क्या था?

जिस देशमें राज्यका बल नहीं रहा समझ लेना चाहिये कि उसमें शारीरिक जीवन समाप्त हो गया।

अभी हालमें जो युद्ध यूरोपमें हुआ उसमें इङ्गलैण्डको अपनी सत्ताका भय होने लगा। उसका राज्य जीवित था, उसने क्या किया? स्त्रियों, पुरुषों तथा बालकों को उसने आवाज दी कि खड़े हो जाओ, प्राण बचानेका समय है, अपना अपना कर्त्तव्य पालन करो। नवयुवकोंने विश्वविद्यालय छोड़ दिये, बालकोंने पाठशालायें छोड़ दीं, कोमल शरीर स्त्रियां तथा बालक शिल्प कर्मशालाओंमें काम करने लगे। राज्यने अपने हाथ बाहर फैलाये और दूसरे देशोंकी मित्रतासे लाभ उठाकर अपनी रक्षाका प्रबंध किया।

इस देशमें न कोई राज्य था, न कोई राजनीति जानता था जिससे कि देशकी रक्षाकी कोई विधि निकलती। यह देखकर आश्चर्य होता है कि यह जाति जिसमें महाभारत जैसी पुस्तकें लिखी जा सकती हैं अज्ञानमें पड़कर राजनीतिसे किस प्रकार इतनी अनभिज्ञ हो गयी। जहां कहीं कोई आक्रामक आया उसने अपना राज्य स्थापित कर लिया, लोग शांतिपूर्वक उसकी प्रजा बन गये। महाभारतमें एक स्थल-पर नहीं बल्कि बारबार नीतिका वर्णन है। कुन्ती कृष्णके हाथ अपने पुत्रोंको सन्देश भेजती है और उसमें विदुलाका दृष्टान्त देकर राजनीतिका उपदेश करती है। शान्तिपर्वमें बिल्ली और चूहेकी कथा * वर्णन करके नीतिके अगाध रहस्य बताये

राजनीतिक अनभिज्ञता

* यह कथा दूसरी भाषाओंमें अनुवाद की हुई पायी जाती है। चूहा अपने बिलसे बाहर निकला उसने एक बिल्लीको जालमें फंसे हुए पाया। साथ ही उसकी दृष्टि एक उल्लू पर जा पड़ी जो वृक्षपर बैठा उसकी ओर दाव लगा रहा था। पासही थोड़ी दूरपर एक नकुल भी बैठा था। चूहेने यह आवश्यक समझा कि अपने शत्रु बिल्लीसे भयके समय मित्रता करले। इसके बाद बिल्ली भी मान गयी। वह जाकर

एकत्र हुए। स्पेनके परास्त हो जानेपर यूरोपकी ईसाई जातियोंको भय हो गया और उन्होंने सब शक्ति इस्लामके प्रति युद्ध करनेके लिये एकत्र की। उस समय अरबके अन्दर इस्लामियोंमें विभाग होगये थे और सेनाओंमें दुर्बलता आ गयी थी। युद्धमें इस्लामी सेनाएं पराजित होकर पीछे हट आयीं। इङ्गलिस्तानके प्रसिद्ध ऐतिहासिक गिब्बनने लिखा है कि यदि इस संग्राममें इस्लामकी विजय हो जाती तो आज औक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयोंके अन्दर मुसलमान प्रोफेसर कुरान-पर विद्यार्थियोंको व्याख्यान देते होते। इस युद्धने यह निर्णय कर दिया कि यूरोप-का धर्म ईसाई रहेगा, परन्तु फिर भी इस्लामने समस्त यूरोपमें विद्या तथा सभ्यता फैलानेका कार्य किया। स्पेनके अन्दर सातसौ वर्ष पर्यन्त मुसलमानोंका राज्य रहा और कार्डवदाका विश्वविद्यालय यूरोपमें प्रथम विश्वविद्यालय था, जिसमें समस्त विद्यायें—गणित, आयुर्वेद इत्यादि—पढ़ायी जाती थीं। यूरोपके अन्य विश्वविद्यालय उसके अनन्तर स्थापित हुए। स्पेनसे मुसलमान पिछले कालमें निकले। इसका वर्णन आगे आयगा।

यहां हम इतना बतला देना चाहते हैं कि इस्लामधर्मपर यह आक्षेप करना कि वह तलवारके बलसे संसारमें फैला सर्वथा ठीक नहीं है, क्योंकि इस्लामके सिद्धान्त एक पृथक् वस्तु हैं और इस्लामकी राजनीतिक शक्तिका देशोंमें बढ़ना और बात है।

जब इस्लामी सेनाओंने फारसकी ओर प्रस्थान किया उसी समय सिन्धपर उनके आक्रमण आरम्भ हुए। पहिले दो तीन आक्रमण तो केवल साधारण लूट मारके तौरपर थे और उनका कुछ परिणाम न हुआ। अन्तको संवत् ७६८ में अबुल (मुहम्मद बीन ?) कासिम सेना लेकर सिन्धपर चढ़ा। बड़ी शूरवीरतासे आर्य राजपूतोंने अरबी सेनासे युद्ध किया। इसी समयसे हमें राजपूतोंकी असाधारण सांग्रामिक क्रिया-विधिपर शोक प्रकट करनेका अवसर मिलता है, क्योंकि इससे आर्योंकी पवित्रता सर्वदाके लिये लुप्त हो गयी।

सिन्धपर इस्लामी आक्रमण

राजपूतोंके अन्दर यह विचार बड़ी मजबूतीसे जम गया था कि रणभूमिमें मर जाना ही राजपूती कर्तव्य है। इसी युद्धमें जब इस्लामी सेनाने एक दुर्गपर आक्रमण किया तो राजपूत मरनेके लिये तैयार हो गये। उन्होंने एक बड़ी भारी चिता तैयार कर ली, जिसमें पहिले स्त्रियां और बालक भस्मीभूत हो गये, बादको पुरुषोंने स्नान करके और एक दूसरेसे नमस्कार प्रणाम कह कर दुर्गका द्वार खोला और आक्रामकोंपर जा पड़े। इस तरहसे प्रत्येक मनुष्य कट कर मर गया। राजपूत स्त्रियोंकी वीरताकी एक विचित्र कथाका वर्णन भी इस युद्धमें मिलता है। इस युद्धमें सिंधका बड़ा राजा दाहर था। जब वह रणक्षेत्रमें मारा गया तो उसकी दो कन्यायें मुसलमान सेनापति कासिमके हाथ पड़ गयीं। उसने उनको उपहार स्वरूप खलीफाके पास भेज दिया। उन कन्याओंके हृदयमें प्रत्यपकारकी अग्नि प्रज्वलित हो रही थी। जब वे खलीफाके पास पहुंचीं तो रोने

लगीं। उनसे कारण पूछा गया तो उन्होंने बताया कि तुम्हारे सेनापतिने पहिले हमसे दुराचरण करके पश्चात् हमें तुम्हारे पास भेजा है। खलीफ़ाने आज्ञा दी कि क़ासिमका वध करके उसका शरीर भूसेसे भर कर वापस भेजा जाय। जब उन्होंने अपने पिताके घातकका शरीर देख लिया तो यथार्थ बात कह दी और स्वयं विष खा कर सदाके लिये निद्रादेवीके वशीभूत हो गयीं।

सिन्धकी विजय बहुत कुछ क़ासिमकी वीरताके कारणसे हुई। जब वह मारा गया तो सिन्ध शनैः शनैः मुसल्मानोंके हाथसे निकलने लगा और संवत् ८०३ में राजपूतोंने मुसल्मानोंको निकाल कर पुनः अपना अधिकार कर लिया।

दूसरे वेगका इस्लामी आक्रमण भारतवर्षपर दो सौ वर्ष पश्चात् संवत् १०५७ में प्रारम्भ हुआ। इस समय तक इस्लामने अफ़ग़ानिस्तान आदि देशोंमें अधिकार करके अपने भारको भलीभाँति दृढ़ कर लिया था। इसके विलंबका कारण यह था कि भारतके उत्तर और दक्षिणमें उस समय आर्योंके दृढ़ राज्य स्थापित थे। पश्चिमोत्तरमें वीर राजपूतोंकी भिन्न भिन्न जातियाँ राज्य करती थीं। इन सबोंमें कन्नौजका राज्य सबसे शक्तिशाली था। उन्होंने अपनी शूर-वीरताका प्रताप सिन्धमें पूरी तरहसे दे दिया था। बिहारमें पालवंशका राज्य था। पश्चिममें मालवाका राज्य था, जहाँ विक्रमादित्यकी कथायें सबकी जिह्वा पर थीं। भारतके दक्षिणमें तीन बड़े कुल राज्य करते थे यथा चेर कुल जिनकी राजधानी तलकाड़ वर्तमान मैसूर राज्यमें है, चोल कुल जो पहिले कुम्भकोनम और फिर तंजौरमें राज्य करता था, और पांड्यकुल जिनकी राजधानी मदुरा थी जो दक्षिण भारतमें मथुराके नामपर बसायी गयी थी। यह राज्य विक्रमसे चार सौ वर्ष पूर्व स्थापित हुआ था। इसके एक सौ सोलहवें राजाने मलिक काफ़ूरके साथ युद्ध किया। इसके अनन्तर भिन्न भिन्न आर्यकुल अठारहवीं शताब्दी पर्यन्त मदुरापर राज्य करते रहे।

भारतवर्षपर इस्लामी आक्रमण

दक्षिणमें सबसे बलवान् विजयनगरका राज्य बारहवीं शताब्दीमें स्थापित हुआ। इसकी राजधानीके खण्डहर तुङ्गभद्रा नदीपर बिलारी ज़िलेमें पाये जाते हैं। चार शताब्दियों तक विजयनगरके राजा दक्षिणके मुसल्मान राजाओंसे युद्ध करते रहे। इस रियासतमें वेद और शास्त्रोंको पुनः प्रचलित करने वाले दो बड़े विद्वान हुए हैं। एक माधवाचार्य और दूसरे सायणाचार्य। माधवाचार्य विजयनगरके राजाके मन्त्री थे। इसने संस्कृत पुस्तकोंके अनुवाद और उनके प्रकाशनका एक महकमा बनाया था जिसमें बड़े बड़े पण्डित काम करते थे। सायणाचार्य सबके अनुवादोंकी परीक्षा करते थे। इसी प्रकार उत्तर भारतमें ११ वीं शताब्दीसे लेकर १६ वीं शताब्दीके अन्त तक हिन्दू राजा नित्य मुसल्मान आक्रमणों और उनके उत्तराधिकारियोंसे युद्ध करते रहे। सत्य तो यह है कि अकबरके समयमें संवत् १६१३ से पहिले उत्तर भारतके अन्दर मुसल्मानोंका राज्य पूर्णतया स्थापित न हो सका।

विजयनगर राज्यकी स्थापना

सोलहवां प्रकरण।

पश्चिमोत्तर सीमाके आक्रमण।

गज़नीपर राजा जयपालका आक्रमण

संवत् १०३६ विक्रमीमें सीमान्तर अफ़ग़ानोंकी लूटमारसे दुःखित होकर पंजाबके राजा जयपालने उनकी राजधानी गज़नीपर आक्रमण किया। (यह लूटमार सहस्रवर्षसे अबतक सीमान्तर वैसीही जारी है।) शरद् ऋतु आ गयी थी। पंजाबके राजपूत अफ़ग़ानिस्तानके पर्वतोंकी शीतसे परिचित न थे और न वे पर्याप्त खाद्य-सामग्री ही ले गये थे। इसलिये जान और मालकी बहुत हानि हुई और वे अफ़ग़ानी सेनाके साथ युद्ध न कर सके। ५० हाथी और एक लाख रुपया सुबुक्तगीनको देना अंगीकार करके वे लौट आये।

सुबुक्तगीनका आक्रमण

यह लोकवाद है कि लौट आनेपर राजा जयपालको ब्राह्मण मन्त्रियोंने यह सम्मति दी कि म्लेच्छके साथ प्रतिज्ञापालन करना कोई धर्म नहीं है अतएव उसे यह रुपया न भेजना चाहिये। दूसरी ओर क्षत्रिय मन्त्री यह सम्मति देते थे कि प्रतिज्ञाको अवश्य पूर्ण करना चाहिये। ब्राह्मणोंकी सम्मतिकी विजय हुई। फिर सुबुक्तगीनने पंजाबपर आक्रमण किया। राजा जयपालकी पराजय हुई और सुबुक्तगीन पेशावरमें अपना सैन्यावास निश्चित करके दश सहस्र सेना वहां छोड़कर लौट गया। इस प्रकार पार्वतीय मार्गोंके दोनों ओर अफ़ग़ानोंका अधिकार हो गया। आर्योंके लिये इन मार्गोंको रोकना ही देशके लिये सबसे बड़ी रक्षा थी। पेशावरको अपने हाथसे खोकर उन्होंने अपनेको सर्वदाके लिये अफ़ग़ानी आक्रमणोंका आखेट बना लिया। सुबुक्तगीन मध्य-एशियामें युद्ध करता रहा और संवत् १०५४ में मर गया।

महमूद गज़नवी

सुबुक्तगीनके स्थानपर उसका पुत्र महमूद १६ वर्षकी उम्रमें राजगद्दीपर बैठा। चार वर्ष पर्यन्त तो वह खैबर दर्रेके उस ओर अपना राज्य दृढ़ करता रहा। पश्चात् उसने भारतवर्षपर आक्रमण करना अपने जीवनका लक्ष्य बना लिया। उसे आर्यावर्त्तसे लूटमारके द्वारा रत्न आदि लेजाकर अपने राज्यको धनाढ्य करनेकी बड़ी लालसा थी। परन्तु साथ ही उसे यौवनावस्थामें इस्लामी उत्साह भी खूब था। वह आर्योंके देशको विजित करके यहां इस्लाम धर्मको फैलाना चाहता था। ख़लीफ़ाने उसके उत्साहको देखकर उसे बड़ा भारी धार्मिक पद दिया। उसने भारतवर्षपर १७ आक्रमण किये जिनमेंसे १३ तो पंजाबको पराधीन करनेके आशयसे किये थे। एक आक्रमण काश्मीरपर हुआ जिसमें उसे बड़ी असफलता हुई और तीन आक्रमण कन्नौज, ग्वालियर और सोमनाथपर केवल लूटमारके आशयसे किये गये थे।

पंजाबपर आक्रमण करके उसने जयपालको पराजित किया। जयपाल दो बार पराजित हो चुका था इसलिये राजपूतोंके नियमके अनुसार वह राज्य न कर सकता था। उसने सिंहासन अपने पुत्रको अर्पित किया और स्वयं शाही वस्त्र धारण किये हुए चितापर जलकर मर गया। पंजाबपर छठवें आक्रमणमें जो संवत् १०६५ में हुआ अवध और मालवाके राजाओंने भी राजा आनन्दपालकी सहायताके लिये सेनायें भेजीं। आर्य महिलाओंने अपने भूषण उतार कर दे दिये। निर्धन स्त्रियोंने रूई कातना आरम्भ किया जिसमें कि युद्धमें वे अपने पतियोंकी सहायता कर सकें। महमूद इससे इतना घबड़ाया कि उसने पेशावर आकर इस्ताम लिया। जो सेना पंजाबकी ओर भेजी गयी थी उसपर गक्खड़ राजपूत टूट पड़े और इस तरहसे उन्होंने चार सहस्र अफ़ग़ानों-का वध कर डाला।

परन्तु महमूद हरएक आक्रमणमें देशके कुछ न कुछ भागपर अधिकार करता रहा। अन्तको पञ्जाबके पश्चिमी जिले उसके अधिकारमें आ गये। थानेश्वर और नगरकोटके मन्दिरोंसे बहुत सा लूटका माल इसे प्राप्त हुआ।

सोमनाथपर आक्रमण उसका १६वां आक्रमण संवत् १०८२ में गुजरातमें सोमनाथके मन्दिरपर हुआ। उसकी सेनाको कई बार पीछे हटना पड़ा। अपने साथियोंका दिल टूटते हुए देखकर उसने उनसे कहा—"कहां भाग कर जाओगे, तुम्हारा घर तो हज़ारों मीलकी दूरीपर है, हिन्दू तुम्हें काट डालेंगे, अपमानकी मौतसे लड़कर मरना हज़ार गुना अच्छा है।" इससे उनके दिल बढ़ गये और एकबार ही सबके सब मन्दिरपर टूट पड़े जिससे राजपूती सेनामें संत्रास उत्पन्न हो गया और वे समुद्रमें नौका डालकर भाग खड़े हुए। मन्दिरमें शिवलिंगकी एक मूर्ति थी जिसको महमूदने धार्मिक उत्तेजनामें आकर तोड़ डाला। यह असत्य है कि उसमेंसे महमूदको बहुमूल्य रत्न प्राप्त हुए, क्योंकि वह मूर्ति पाषाणकी थी। महमूद मन्दिरके स्तंभ उखाड़कर ग़ज़नी ले गया। उसमेंसे एक उसने मसजिदमें और एक अपने महलमें लगा दिया और दो मक्का मदीनाको भेज दिये। जब महमूदकी सेना ग़ज़नीको लौट रही थी तो एक ब्राह्मणने सेनाको नष्ट कर देनेका निश्चय किया और महमूदका मार्गदर्शक बनकर उसे सिन्धके मरुस्थलमें ऐसी ओर ले गया जहांसे निकलकर बचना असम्भव था। कुछ दूर जानेपर सैनिकोंको सन्देह उत्पन्न हो गया और उन्होंने मार्गदर्शकका वध कर डाला। समस्त सेना नष्ट होते होते बची। संवत् १०८७ के १० वैशाख (गुरुवार) को महमूदकी मृत्यु हो गयी।

इसकी लूटोंके आक्रमणमें महमूदकी सेनाका बचकर लौट आना प्रकट करता है कि आर्यावर्तके भिन्न भिन्न राजाओंके अन्दर मिलकर युद्ध करनेकी शक्ति सर्वथा लुप्त हो चुकी थी। यहांतक कि किसीको इतना विचार भी न आया कि मार्गमें मनुष्योंके भोजन तथा घोड़ोंके खानेकी सामग्रीको उजाड़कर सेनाको भूखसे ही नष्ट कर दें। इन आक्रमणोंका परिणाम यह हुआ कि पञ्जाबके पश्चिमी जिले ग़ज़नीके अधीन हो गये और चिरकालपर्यन्त इसी दशामें बने रहे।

ग़ज़नी और ग़ोरके वंशोंमें सदा युद्ध हुआ करता था। एक समय ग़ोरको ग़ज़नी-मुहम्मदग़ोरी और के सब भद्रपुरुषोंको कैद करके ले गया। उसने उनका वध करके स्नेह उत्तराधिकारी उनके रक्तका प्रयोग ग़ोरका दुर्ग बनानेमें किया।

संवत् १२०९ में ग़ज़नीपर ग़ोर वंशका अधिकार हो गया। महमूदके कुलका अन्तिम बादशाह खुसरो पंजाबमें भाग आया। संवत् १२४३ में शहाबुद्दीन ग़ोरीने पंजाबका भाग भी उससे ले लिया और महमूदकी तरह भारतवर्षपर विजय प्राप्त करनेका निश्चय किया।

पंजाबके बाद अब उत्तर भारतको भी मुसल्मान आक्रमणकोंसे युद्ध करना पड़ा। उत्तर भारतमें उस समय राजपूतोंकी बड़ी बलवान् रियासतें स्थापित हो चुकी थीं जिनमें तीन बहुत अधिक विख्यात थीं। दिल्लीमें तोमर वंशके राजा राज्य करते थे, अजमेरमें चौहान वंश था और कन्नौजमें राठौरोंका राज्य था। इनके अतिरिक्त बंग-देशमें सेनवंशके राजा राज्य करते थे जिनकी राजधानी नदिया थी। इसकालमें उत्तर भारतमें विद्या तथा धनकी सर्वप्रकार उन्नति हो रही थी। काशी और नदिया विद्याके केन्द्र-स्थान थे। सहस्रों विद्यार्थी इन स्थानोंमें अध्ययन करते थे।

धनके विचारसे कन्नौज सबसे बढ़कर था। कहा जाता है कि यह नगर इतना बड़ा था कि बीस मीलसे अधिक इसकी परिधि थी और नगरके अन्दर केवल पान बनाकर बेचनेवाले तम्बोलियोंकी दो सहस्र दूकानें थीं।

द्वेषकी अग्नि भारतवर्षमें सदैव प्रज्वलित रही है। यह द्वेष इतना प्रबल था कि भारतकी भिन्न भिन्न रियासतोंका विदेशी आक्रमकोंके विरुद्ध एक होना बहुत ही असंभव था। यह रोग आर्यावर्तमें महाभारतके युद्धकालसे चला आता है। उसी समयसे कलियुगका काल भी प्रारम्भ होना है।

दिल्लीके राजा प्राचीनकालसे ही भारतके राजाओंमें महाराजाधिराज कहलाते चले आते हैं। परन्तु कन्नौजमें उस समय इतना ऐश्वर्य था कि कन्नौजका राठौर राजा अपने आपको "महाराजाधिराज" पदके योग्य समझता था।

पृथ्वीराज

दिल्लीका तोमर राजा अनंगपाल मृत्युके समय अपना राज्य अपने दौहित्र पृथ्वीराजको दे गया। पृथ्वीराज चौहान राजपूत था और अजमेरमें राज्य करता था। कन्नौजके राजा जयचन्द्रके हृदयमें पृथ्वीराजके विरुद्ध द्वेषकी अग्नि प्रज्वलित हुई। राजा जयचन्द्रने "महाराजाधिराज"का पद प्राप्त करनेके लिये "अश्वमेध यज्ञ" किया। उसके साथ ही उसकी कन्या संयुक्ताका स्वयंवर भी होनेवाला था।

इस यज्ञमें सब सेवकोंका काम छोटे छोटे राजा लोग करते थे। पृथ्वीराज दरबानका काम करनेके लिये बुलाया गया था। पृथ्वीराजने आना अस्वीकार किया। उसके स्थानपर उसकी पीतलकी मूर्ति बनाकर खड़ी की गयी। जय-चन्द्रकी पुत्री पृथ्वीराजकी वीरताकी प्रशंसा सुनकर उसके साथ आन्तरिक प्रेम करने लगी थी। जब स्वयंवरका समय आया तो कन्याने सब राजाओंके आगेसे चलकर

फूलोंका हार उस मूर्तिके गलेमें डाल दिया । ऐसा कहा जाता है कि पृथ्वीराजको यह सब समाचार विदित था और वह वेष बदले हुए वहां विद्यमान था।

ज्योंही संयुक्ताने ऐसा किया वह उसे अपने घोड़ेकी पीठपर चढ़ाकर वहांसे बातकी बातमें गायब हो गया। बाहर उसकी सेना खड़ी थी। सेनाको साथ लिये हुए वह अपने घर दिल्ली आ पहुंचा।

इस अपमानसे जलकर जयचन्दने शहाबुद्दीनको बुलाया। दिल्ली-विजयके लिए विदेशी शक्तिको बुलाना बड़ी ही मूर्खता और अभाग्यकी बात थी। ऐसी मूर्खता लोग सदासे करते चले आये हैं जिसका फल उन्हें दुःखके साथ सहन करना पड़ा है।

शहाबुद्दीनने भारतपर पहिला आक्रमण सवन् १२४८ में किया। थानेश्वरमें पृथ्वीराजने उसे पराजित किया। शहाबुद्दीन स्वयं आघातोंके प्रहारसे गिरनेको था कि उसे उसका एक अश्वारोही अपने घोड़ेकी पीठपर बिठा कर

थानेश्वरका युद्ध

रणभूमिसे बाहर ले गया। राजपूतोंने चालीस मील पर्यन्त शत्रुओंका पीछा किया। लौटकर शहाबुद्दीनने अपने सरदारोंके गलोंमें यह प्रकट करनेके लिये तोबड़े बांधे कि वे मनुष्य नहीं बल्कि गधे थे।

पृथ्वीराजकी राजसभाके प्रसिद्ध कवि चन्दने अपनी पुस्तक "पृथ्वीराज रायसा" में लिखा है कि शहाबुद्दीन कई बार पराजित हुआ। एक बार वह कैद कर लिया गया जहांसे उसने बहुमूल्य भेंट देने और पृथ्वीराजसे दयाके लिये प्रार्थना करने पर छुटकारा पाया। परन्तु राजपूतोंको घरके संग्रामोंने नष्ट कर दिया। जब शहाबुद्दीन दो वर्ष अनन्तर सेना ले कर आया तो पृथ्वीराजके साथ १०८ राजाओंके स्थानपर केवल ६४ राजा रह गये थे। परन्तु यह कोई बड़ी बात न थी। जब पानीपतके क्षेत्रमें दोनों सेनायें एकत्र हुई तो पृथ्वीराजने अफ़ग़ान सरदारको कहला भेजा कि प्राण बचा कर लौट जाओ, नहीं तो इस बार तुम जीवित न बचोगे। ग़ोरीने बड़ी नम्रतासे किन्तु छलकपटसे भरा हुआ उत्तर दिया कि मैं अपने बड़े भाईकी आज्ञासे आया हूं और उसकी आज्ञाके बिना लौट नहीं सकता। यदि कुछ दिनोंका अवसर मिले तो मैं अपने भाईसे, जो बादशाह है, आज्ञा प्राप्त कर लूं। राजपूत समय देकर स्वयं प्रमादी हो गये और दिनरात बेफिक्रीमें बिताने लगे। एक रातको जब राजपूत बिलकुल बेख़बर थे शहाबुद्दीनने उनपर आक्रमण करके सेनाको भगा दिया और पृथ्वीराजको कैद कर लिया।*

---

* पृथ्वीराज रासोमें इस घटनाका वर्णन इस प्रकार है—"पृथ्वीराजको शहाबुद्दीन कैद करके अपने साथ ले गया। उसके नेत्र निकालकर उसको एक परिमित एवं अंधेरी कोठरीमें कैद कर दिया। चन्द नामक एक श्रद्धालु राजपूत अपने स्वामी-का अन्तिम समय तक साथ देनेके लिये वेष बदल कर यवनोंकी सेनामें प्रविष्ट हो। शहाबुद्दीनने गजनी पहुंचकर एक बड़ा भारी दरबार किया जिसमें बड़े बड़े तीर कमान और तलवार चलानेमें निपुण और सुप्रसिद्ध योद्धा बुलाये गये। वीर चन्दने इस अवसरको उत्तम समझा और उसी प्रकार वेष बदले हुए दरबारमें उपस्थित हो कर अपनी कविता

इस प्रकार गोरीका दिल्लीपर अधिकार हो गया। दूसरे वर्ष उसने कन्नौजपर आक्रमण करके राजा जयचन्द्रको पराजित किया, जयचन्द मारा भी गया। वीर राजपूतोंने विदेशी राज्यके अधीन रहना अस्वीकार किया। वे अपने अपने गृहोंको छोड़ कर इस मरुस्थलमें आ बसे जो उनके नामसे राजपूताना कहलाता है। इन्होंने इस प्रान्तमें आकर अपने पृथक् पृथक् राज्य स्थापित किये।

गोरीका सेनापति बख्त्यार खिलजी संवत् १२५६ में आगे बढ़ा और बिहारको लांघता हुआ संवत् १२६०में बंगाल जा पहुंचा। ब्राह्मण मन्त्री राजा लक्ष्मणसेनको नदियासे अपनी राजधानी किसी दूर स्थानमें बदलनेकी सम्मति देते रहे। राजा ८० वर्षका वृद्ध था। वह सोचता ही रह गया। इतनेमें आक्रमण करने वाले शिरपर आ पहुंचे और जब राजा भोजन कर रहा था उसी समय राजगृहमें जा प्रविष्ट हुए। राजा एक पिछले द्वारसे भाग गया और पुरीमें जा कर आयुके शेष दिन पूजामें व्यतीत करने लगा।

पंजाबकी लड़ाकी जातियां अब भी पराधीन नहीं हुई थीं। संवत् १२६० में गखड़ जातिने पर्वतोंसे निकल कर समूचे प्रान्तपर अधिकार कर लिया। इसके

तथा वार्तालापकी विधिसे उन्होंने सेनापतिको मोहित कर लिया। वार्तालापमें उन्होंने धनुर्विद्याकी आलोचना आरम्भ की जिसमें उन्होंने संसारके समस्त प्रसिद्ध और [illegible] और चलानेवालोंका नाम उपस्थित करते हुए पृथ्वीराजको प्रधानपद दिया। उसने कहा कि इस समय वह चक्षुहीन तथा [illegible] है किन्तु अब भी यदि वह इस दरबारमें बाणोंके चमत्कार दिखलानेके लिये बुलाया जाय तो निश्चयपूर्वक वह सब तीर चलानेवालोंसे बाजी ले जायगा और उसका निशाना कदापि असफल न होगा। शहाबुद्दीनने तत्काल आज्ञा दी कि वह वैसी दरबार सामने उपस्थित किया जाय।

चन्दने उस समय संकेतसे एक श्लोक पढ़ा जिसका अभिप्राय पृथ्वीराजको छोड़ कर और किसीने न समझा। उसने पृथ्वीराजसे कहा कि यही समय तुम्हें [illegible] लेना है; अब फिर ऐसा समय हाथ न आयगा।

[इसमें जो सोरठा मालूम है वह इस प्रकार है

"[illegible] बड़ी कमान, दो [illegible] फिर [illegible] ।
जब चूके चौहान, [illegible] ॥"—सम्पादक।]

शहाबुद्दीनने पृथ्वीराज और [illegible] और चलानेवालोंको अपना अपना चमत्कार दिखलानेकी आज्ञा दी। वह स्वयं एक ऊंचे [illegible] सबके चमत्कारोंकी परीक्षा करनेके लिये चढ़ गया। वह प्रत्येकको बारी बारी [illegible] आज्ञा देता था। ज्यों ही पृथ्वीराजकी बारी आयी उसने [illegible] उसके शब्दकी [illegible] देखा और जाना कि शहाबुद्दीन [illegible] भूमिपर गिर पड़ा और [illegible] हो [illegible] और पृथ्वीराजने [illegible] नाना प्रकारके [illegible] कर दिये जिनसे इन दोनोंने अपने प्राण त्याग दिये।

मार कर आप दिल्लीके सिंहासन पर बैठ जाता था तो वह अपने आपको समस्त देशका अधिराज कहने लगता था, और साधारण पुरुषोंकी दृष्टिमें दिल्लीकी गद्दीपर बैठ जाना ही उस पदको प्राप्त करनेका पर्याप्त उपाय था। इस प्रकार भारतवर्षका अधिराज बनना अत्यन्त सुगम कार्य हो गया। अतः हम देखते हैं कि उस कालमें कई मनचले आदमियोंने एक दूसरेके बाद अपने आपको दिल्लीका बादशाह प्रसिद्ध करके भिन्न भिन्न कुलोंकी नीव डाली। इन कुलोंका भारतके लोगोंके इतिहास-से केवल इतना ही सम्बन्ध है, कि पहिले तो आक्रामक ग़ज़नीकी ओरसे आते थे, अब इन आक्रामकोंने देशके अन्दर ही अपना एक ठिकाना निश्चित कर लिया और इधर उधर आक्रमण करके लूट-मार जारी रखी। यदि इनके बीचमें कोई भद्र पुरुष उत्पन्न हो जाता था तो वह उस लूट-मारके रुपयेको किसी स्मारकके लिये लगा देता था। अफ़ग़ानिस्तानसे भी लूटने वाले कभी कभी आते रहे।

सत्रहवाँ प्रकरण।

दिल्लीकी सल्तनत।

इस वंशकी नींव कुतुबुद्दीनने डाली। यह वंश संवत् १३४७ तक रहा। इस वंशमें अल्तमश सबसे विख्यात हुआ है। इसने सिन्ध और बंगालके मुसल्मान बादशाहोंको जो स्वयं बादशाह बन बैठे थे पराधीन किया। उसकी पुत्री रज़िया उसके अनन्तर सिंहासनपर आरूढ़ हुई। एक हबशी गुलामपर अधिक अनुग्रह करनेके कारण सिंहासनपरसे उतार कर मार डाली गयी।

दासवंश

संवत् १२०० में मध्य एशियासे मुग़लोंने आक्रमण करना आरम्भ किया। इधर पंजाबके गक्खड़ राजपूत और मेवातके पार्वत्य पुरुषोंने राजद्रोही होकर सारे उत्तर भारतको राजधानी तक जीत लिया। उधर मालवा, राजपूताना और बुन्देलखण्डके आर्योंने न केवल अपने आपको स्वतंत्र कर लिया बल्कि वे यमुनाके दूसरे तटपर दिल्ली तक आ पहुंचे। दासवंशके ग़यासुद्दीन बलबनने अपना समय इनके विरुद्ध लड़ने और अपने प्रान्तके शासकोंको अपने अधीन करनेमें व्यय किया। उसने कई अफ़सरोंको बुलाकर उनका वध कर डाला। दिल्लीके दक्षिणमें मेवातके आदुव राजपूत रहते थे। कहा जाता है कि उनकी स्वतन्त्रतासे कुपित होकर उसने उनपर आक्रमण किया और लगभग एक लाख राजपूत क्षत्रियोंको मार कर उनकी जातिकी समाप्ति कर दी। बलबन संवत् १३४४ में मर गया। उसका उत्तराधिकारी तीन वर्ष अनन्तर विषसे मारा गया।

संवत् १३४७ में जलालुद्दीन खिलजी नामक सरदारने दिल्लीपर अधिकारकर लिया और खिलजीवंशकी नींव डाली। संवत् १३७७ तक दिल्लीपर उसका अधिकार रहा। जलालुद्दीनका भतीजा अलाउद्दीन पहिले तो मालवा और बुन्देलखण्डके राजपूतोंके साथ युद्ध करता रहा पर उधर बहुत सफलता न देख कर उसे दक्षिणपर आक्रमण करनेकी सूझी। वह केवल आठ सहस्र अश्वारोही साथ ले कर उधर चल पड़ा। मार्गमें उसने यह प्रसिद्ध किया कि हम अपने चचाके दुर्व्यवहारसे भागकर राजमहेन्द्रीके राजाके पास राजाश्रयके लिये जा रहे हैं। राजाओंने भागे हुए को आश्रय देना ही धर्म समझा और उसे किसीने न रोका यहां तक कि उसने महाराष्ट्रके आर्यराज्यकी राजधानी देवगढ़ी (दौलताबाद) पर अकस्मात् आक्रमण किया। उसने प्रकट किया कि बादशाहकी सेना अभी पीछे आ रही है। राजपूत ज़रा भी तैयार न थे। लूटका बहुतसा माल लेकर वह लौट गया। उसने अपने वृद्ध चचाको लूटका माल विभक्त करनेके लिये बुलाया और उसके साथ आलिंगन करते समय उसे मार डाला। संवत् १३५३ में उसने अपने आपको दिल्लीका बादशाह प्रसिद्ध किया।

खिलजीवंश

उत्तर भारतमें पहले उसने गुजरातपर आक्रमण करके उसे जीत लिया, पर कतिपय वर्षके अनन्तर वह पुनः स्वतन्त्र हो गया। वह जयपुरके राजपूतोंके साथ भी युद्ध करता रहा। संवत् १३६० में उसने चित्तौड़पर आक्रमण किया। चित्तौड़की रानी सौन्दर्यमें अपूर्व थी। उसकी लालसा अलाउद्दीनको उधर खींच लायी। चित्तौड़के राजपूत केशरिया बाना धारण किये हुए शत्रुपर टूट पड़े और एक २ करके कट मरे। उधर रानी पद्मिनी अपनी १३ सहस्र सखियोंके साथ चितामें बैठकर भस्मीभूत हो गयी। जो राजपूत बचे वे अर्वली पर्वत पर चले गये। कुछ काल उपरान्त लौट कर उन्होंने पुनः चित्तौड़ ले लिया। अलाउद्दीनको मध्य एशियाके मुगल आक्रामकोंके मुकाबिलेमें पांच बार जाना पड़ा। मुग़ल पराजित हुए, उनके सरदारोंको उसने हाथियोंसे पददलित करवाया और सैनिकोंको निर्दयतासे वध करवा डाला। उसके समयमें बहुतसे मुगलोंने मुसलमान हो कर दिल्लीके पास रहना आरम्भ कर दिया था। उनकी संख्या बढ़ती गयी, अलाउद्दीन उनके बलसे इतना भयभीत हुआ कि एक समय उसने १५ सहस्र मुग़लोंका वध कराके उनकी स्त्रियोंको दासी बना कर बेच दिया।

चित्तौड़से अवकाश प्राप्त करके उसने अपनी सेना मलिक काफूरके अधीन दक्षिणमें भेजी। संवत् १३६३ में मलिक काफूरने देवगढ़ीके राजाको अधीन किया और पश्चात् महाराष्ट्र तथा करनाटकपर आक्रमण किया। अलाउद्दीन उस समय मारवाड़के राजपूतोंसे युद्ध कर रहा था।

उसने अपने भतीजोंके नेत्र निकलवाकर उन्हें मरवा डाला और अपने पुत्रको राजद्रोही होनेके कारण क़ैद कर दिया। वह संवत् १३७२ में मर गया। उसके स्थानपर मुबारक राजगद्दीपर बैठा, परन्तु वास्तविक बल खुसरो खां नामक एक नीच जातिके आर्यके हाथमें था। इस पुरुषने पहिले मलिककाफूरको मरवाया और फिर वह मुबारकका वध करके स्वयं सिंहासनपर बैठ गया। वह पुरुष यद्यपि मुसलमान हो गया था परन्तु हृदयसे वह आर्य था। उसने कदाचित् इस विधिसे दिल्लीमें आर्यराज्य स्थापित करनेका विचार किया हो। वह क़ुरानको अपने सिंहासनके नीचे रख कर बैठता था। उसने मसजिदोंमें आर्य मूर्तियां स्थापित कर दीं, परन्तु कोई आर्य उसके साथ न मिला। संवत् १३७७ में मुसलमान सरदार उसके विद्रोही हो गये। उन्होंने खुसरोका वध कर डाला।

ग़यासुद्दीन तुग़लकने, जो तुर्की गुलाम था, और बढ़ते बढ़ते मुलतानका शासक हो गया था, दिल्लीपर अधिकार प्राप्त करके तुगलक वंशकी नींव डाली। यह वंश संवत् १४७१ तक कायम रहा। गयासुद्दीनने चार वर्ष तक शासन

तुगलकवंश

किया। इसके बाद उसका पुत्र मुहम्मद तुगलक दिल्लीकी गद्दीपर बैठा। यह बड़ा हठी और पागल था। इसके पागलपनके कई उदाहरण हैं। मुगल लुटेरे बारंबार आते थे, उनको यह रुपया दे कर लौटा देता था। एक बार उसने उत्साहित हो कर फारसपर आक्रमण करनेके लिये असंख्य सेना भरती की। जब उन्हें वेतन न मिला तो वे लूट मार करनेपर कटिबद्ध हो गये।

फिर, एक बार उसने एक लाख सिपाही चीनपर आक्रमण करनेके लिये भेजे। वे सबके सब हिमालय पर्वतमें नष्ट हो गये।

एक बार उसने दिल्लीके सब मनुष्योंको दिल्ली छोड़कर देवगढ़में जाकर बसनेकी आज्ञा दी। जब वे देवगढ़में पहुंचे तो उसने उनको वापस लौट आनेके लिये कहा। लौटते ही उन्हें पुनः प्रस्थान करनेकी आज्ञा दी गयी। इस तरह दुःभिक्ष तथा भूखसे सहस्त्रों मनुष्य मर गये। उसे आखेटका इतना शौक था कि एक बार उसने मनुष्योंका आखेट किया।

शेष समय वह अपने अफसरों तथा उन आर्योंको जो बारंबार स्वतंत्र हो जाते थे, दबानेमें व्यतीत करता था। उसने अपने भतीजेको विद्रोहके अपराधमें जीवित जला दिया। करनाटक और तेलंगानामें आर्य राजा स्वतन्त्र हो गये। उन्होंने मुसलमान सेनाको वहांसे निकाल बाहर किया। जब वह दक्षिणके मुसलमान शासकको दबानेके लिये गया तो पीछे मालवा, गुजरात और सिन्धके लोग विद्रोही होगये।

उसका पुत्र फ़ीरोज़ तुग़लक़ संवत् १४०८के चैत्रमें सिंहासनपर बैठा। वह बहुत भद्रपुरुष था। उसने भारतमें पथिकाश्रम, तालाब, कुएँ, औषधालय, पुल और मसजिदें बनवायीं। प्राचीन यमुनाकी नहर उसीके समयकी है। उसका पुत्र महमूद संवत १४४५ में गद्दीपर बैठा। उस समय तुग़लक़ वंश बहुत निर्बल हो चुका था।

तैमूरलंग

तैमूरके आक्रमणने संवत् १४५५ में इसे बड़ा धक्का दिया। तैमूर अपनी मुग़ल सेना साथ ले कर दिल्ली पहुंचा। पांच दिन तक क़त्लेआम रहा। गलियोंमें इतने मृतक शरीर पड़े थे कि चलना कठिन हो गया। छठें दिन तैमूरने परमात्माको धन्यवाद देकर दिल्लीसे प्रस्थान किया। कहा जाता है कि वह ७० सहस्त्र कैदी साथ ले गया। मेरठके समीप किसी बातसे कुपित होकर उसने सबको मार डालनेकी आज्ञा दे दी और हिमालयके नीचेसे होता हुआ लौट गया। उसके चले जानेपर महमूद तुग़लक़ गुजरातसे, जहां वह भाग कर चला गया था, लौट आया और नाम मात्रको ११ वर्ष शासन करके मर गया। उसीके साथ तुग़लक़वंशकी समाप्ति हो गयी।

सैयदवंश

इसके स्थानपर सैयदवंश दिल्लीमें शासन करने लगा। इस वंशने संवत् १५०७ तक राज्य किया। इस वंशका उत्तराधिकारी पठानोंका लोदीवंश हुआ जिसने संवत् १५८३ तक राज्य किया। इन समस्त बादशाहोंका राज्य दिल्लीके आस पास कुछ मीलों तक ही परिमित था। आर्य राजा सब स्वतन्त्र थे और कई प्रान्तोंमें जैसे कि बंगाल और गुजरातमें मुसलमान शासक स्वतन्त्र बन बैठे थे। संवत् १३९७ में फ़क़ीरुद्दीन बंगालका बादशाह बन बैठा और गौरमें इसने अपनी राजधानी बना ली। गुजरात संवत् १४५८ में स्वतन्त्र हो गया।

बाबर।

बाबर तैमूरके वंशका था। तातारके मुग़ल सदासे भारतपर आक्रमण कर लूट मार करने आये थे। अन्तको इन लोगोंने उसपर अपना अधिकार कर लिया।

अठारहवां प्रकरण।

धार्मिक पुनरुद्धार।

राजनीतिक अस्थिरता

भारतमें इन शताब्दियोंके अन्दर राजनीतिक शक्ति गेंदके समान थी। जो उठता था वही उसे एक ही ठोकरमें अपने आगे कर लेता था। यही कारण है कि अत्यन्त नीच दास तक उठ उठ कर बादशाह बन गये और सारी राजनीतिक शक्ति उन लोगोंने अपने हाथमें कर ली। जो अफ़गान या विदेशी आक्रामक यहां आये उनमें कोई विशेष योग्यता न थी। खुसरो आर्य था। वह दासत्व दशासे उठा और उसने दिल्लीके सिंहासनपर अपना अधिकार कर लिया। गयासुद्दीन तुग़लक दासत्वसे उठ कर दिल्लीका बादशाह जा बना। दक्षिणकी रियासतोंके निर्माता कई आर्य थे किन्तु बहमनी राज्यका प्रवर्तक एक नीच दास था। सर्वसाधारण आर्य ऐसे लोगोंको घृणाकी दृष्टिसे देखते रहे। उन्हें कभी यह विचार ही न आया कि राजनीतिक शक्ति हाथमें रखनेवाला संसारमें कुछ कर सकता है या नहीं। आर्य राजा ब्राह्मणोंसे इतने नीचे दर्जेपर समझे जाते थे कि राज्यका काम ही नीचा समझा जाने लगा। जब आर्यावर्तके अन्दर बौद्ध धर्मका बल बढ़ा तो यह विचार और भी प्रबल हो गया। राजाओंकी दृष्टिमें भी राजनीतिक शक्तिका आदर्श कुछ न रहा। वे भी बुद्धके सदृश साधुओंका जीवन धारण करना बड़ा मानास्पद समझने लगे। जब राजनीतिक शक्ति अर्थात् राज्यका प्रभाव इतना घट गया तो यह उसका प्राकृतिक परिणाम था कि जिस समय विदेशके असभ्य पुरुषोंने राज्य सभाल लिया उस समय देशमें कोई बड़ा क्षोभ या क्रोध उत्पन्न नहीं हुआ। इस अव्यवस्थित अवस्थामें जो कोई चतुर व्यक्ति उठा उसीने राज्य सम्भाल लिया अर्थात् देशमें जो मस्तिष्कवाले व्यक्ति थे वे असावधान हो गये, और लोग समझने लगे, कोई राजा हो हमें उससे क्या मतलब। केवल राजपूत ही आक्रामकोंसे युद्ध करना अपना कर्तव्य समझते थे, और जहां तक उनसे हो सका उन्होंने शत्रुओंका मुक़ाबला भी किया। यह केवल उनके मुक़ाबलेका ही नतीजा था कि मुसलमानोंको भारतमें राजनीतिक अधिकार प्राप्त करनेमें इतनी शताब्दियां लगीं।

मुसलमानोंने राजनीतिक-शक्तिका महत्व भली भांति समझ लिया था, बल्कि इस्लामधर्म तो राजनीतिक शक्तिके रूपमें ही संसारमें प्रकाशित हुआ था। जब मुसलमानोंने अपना बल स्थापित कर लिया और उसके अनन्तर जब इसी बलको वे इस्लामके प्रचारके लिये प्रयुक्त करने लगे तब आर्य नेताओंके नेत्र खुले। जो उत्साह अबतक धर्मप्रचारमें लग रहा था वह परिवर्तित होकर राजनीतिक शक्तिके लिये एक शक्तिशाली भाव बन गया। मराठों और सिक्खोंके दो बड़े राज्य,

इस नयी बुद्धिमत्ताके परिणाम थे जिसे आर्योंने मुसलमानोंसे सीखा था। इन्होंने मुग़-लोंको हटा कर भारतवर्षपर अधिकार कर लिया। उनमें यह बुद्धि बहुत देरके बाद आयी। इन शताब्दियोंमें जब आर्यावर्तका राज्य इधर उधर ठोकरें खा रहा था आर्यसन्तान धार्मिक तथा आध्यात्मिक उत्थानमें लगा रहा। इस धार्मिक उत्थानके प्रवाहपर इस्लामके सिद्धान्तोंका निःसन्देह बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। इस्लामके साथ टक्कर खानेसे आर्योंके अन्दर भी पुनरुत्थानका उत्साह उत्पन्न हुआ। यह उत्थान दक्षिणसे आरम्भ हुआ जहां शंकराचार्यने वेदान्तका प्रचार करनेके साथ साथ शिवपूजापर भी ज़ोर दिया था।

रामानुज

संवत् १२०७ के लग भग रामानुज नामक संस्कृतके एक बड़े विद्वान्ने विष्णु-के नामसे ईश्वरकी पूजाका प्रचार आरम्भ किया। चोलाका राजा शिवका पुजारी था, उसने रामानुजको अपने देशसे निकाल दिया। वहांसे रामानुज मैसूर पहुंचे। वहांके जैन राजाको रामानुजने अपना शिष्य बनाया। रामानुज सब जातिके लोगोंको अपना शिष्य बनाते थे। इन्होंने कोई सात सौ मठ स्थापित किये।

रामानन्द

रामानुजकी पांचवीं पीढ़ीमें उनके शिष्य रामानन्द हुए। इन्होंने १४ वीं शताब्दीमें अपना मत उत्तर भारतमें फैलाया। उनके कामका केन्द्रस्थान काशी था परन्तु स्थान स्थान भ्रमणकर उसने विष्णु नामका प्रचार किया। उसने नीच जातियोंमेंसे १२ शिष्य चुने, उनमेंसे एक मोची, एक नाई और सबसे बड़ा कबीर नामका एक जुलाहा था। इन शिष्योंका कर्तव्य यह था कि संसारका सब प्रकारसे त्याग कर भिक्षापर निर्वाह करते हुए प्रचार करें। रामानन्दने धर्मका सार्वजनिक प्रचार करना आरम्भ किया। इस समयसे आर्य भाषाकी भी उन्नति आरम्भ हुई।

कबीर

कबीरने संवत् १४५० से १४७७ तक बंगालमें प्रचार किया। उसने मूर्ति-पूजाके विरुद्ध शब्द उठाया और शास्त्रोंपर बहुत कटाक्ष किये। ये आर्य और मुसलमान दोनोंकी त्रुटियोंको साफ़ साफ़ कह देते थे। कबीरने सब मनुष्योंके समान अधिकारपर बहुत ज़ोर दिया और संसार-के सब झगड़ोंको माया बता कर मुक्तिका साधन श्रद्धा तथा ध्यान बताया।

चैतन्य

कबीरके पश्चात् चैतन्य नामक एक बड़े महात्मा हुए। इन्होंने विष्णुभक्तिका बङ्गालमें प्रचार किया। यह नदियामें एक ब्राह्मणके घर संवत् १५४२ में उत्पन्न हुए और २४ वर्षकी अवस्थामें संसार-त्याग कर प्रचार करना आरम्भ किया। चैतन्यकी शिक्षा यह थी कि सब जातियां एक हैं, ईश्वरके सामने आर्य, मुसलमान एक हैं, गुरु भक्ति तथा श्रद्धा मुक्तिके लिये आवश्यक है। मुक्तिके लिये सबका त्याग करना आवश्यक है...इत्यादि। बङ्गालमें

संवत् १५३७ में वल्लभस्वामीने अपना एक मत निकाला । उन्होंने ध्यानके स्थानपर कृष्णलीलाको मुक्तिका साधन बताया । वल्लभस्वामीका मत है कि संसारके आनन्द भोगनेसे ही मुक्ति मिलती है । इस धर्मके अनुयायी गुजरात और काठियावाड़में पाये जाते हैं ।

वल्लभस्वामी

संवत् १५२६ में गुरुनानकने पंजाबमें उसी सिद्धान्तका प्रचार करना आरम्भ किया जिसे कबीरने बंगालमें फैलाया था । उनकी शिक्षाका प्रभाव पंजाबपर बहुत गम्भीर हुआ । बाल्यावस्थासे ही उनकी रुचि महात्माओंकी ओर थी । कहते हैं एक समय उनके पिताने कुछ रुपया देकर उन्हें कामके लिये भेजा । उन्होंने मार्गमें सर्वस्व भिक्षुओंको लिटा दिया और खाली हाथ लौट आये । जब पिता कुपित होकर पूछने लगे तो नानकने उत्तर दिया यह रुपया ऐसे कार्यमें लगा दिया है जिसका फल बड़ा होगा । गुरुनानकसे लेकर गुरुगोविन्दसिंह तक दस गुरु हुए गद्दीपर बैठे । सबके सब दयालुता तथा पवित्रताकी मूर्ति थे । लगातार ऐसे दस धार्मिक नेताओंका होना और एकका दूसरेसे अधिक उपयोगी काम करना कदाचित् ही इतिहासमें कहीं दृष्टिगोचर हो ।

गुरुनानक

संवत् १६०१ में अहमदाबादमें दादू नामक एक बड़े धर्मोद्धारक उत्पन्न हुए । उनके उपदेश पश्चिमोत्तर-भारतमें बड़ी प्रतिष्ठाके साथ सुने जाते हैं । उनके ५२ शिष्योंने उनके सिद्धान्त अजमेर और राजपूतानामें फैलाये । उनमेंसे बाबा गरीबदास, माधोदास आदिकी कवितायें और भजन अभी तक पढ़े जाते हैं । इन्होंने दादूपंथकी नींव डाली ।

दादूपंथ

इन धार्मिक-सुधारकोंके अतिरिक्त इस समय भारतवर्षके भिन्न भिन्न भागोंमें बड़े बड़े प्रसिद्ध कवि हुए हैं जो साधु और कवि दोनों थे । उनकी कविताओंने आर्यों में धार्मिक उत्साहको पुनर्जीवित किया और वे स्वयं भी इस नये जीवनके परिणाम थे ।

मथुराके सूरदास जिनकी पुस्तक सूरसागर है, चीतापुरके नाभाजी जिनकी पुस्तक भक्तमाल है और केशवदास जिनकी पुस्तक रामचन्द्रिका है बड़े प्रसिद्ध धार्मिक कवि हुए । इनके पश्चात् इधर भारतके सुप्रसिद्ध कवि तुलसीदास हुए, जिनकी आर्यभाषामें लिखी हुई रामायणने उत्तरभारतमें अद्भुतसा प्रभाव उत्पन्न किया । तुलसीकृत रामायण अलौकिक आर्यभाषाकी सबसे मधुर और कविताकी अद्वितीय पुस्तक समझी जाती है ।

महाराष्ट्रमें धार्मिक कविता नामदेवसे आरम्भ होती है जो १४ वीं शताब्दीमें हुए । १५ वीं शताब्दीके अन्तमें श्रीधर नामक बड़े कवि तथा विद्वान् हुए । इनके पीछे १७ वीं शताब्दीमें तुकारामके समय मराठी कविता महत्त्वाकी सीमापर जा पहुंचा । तुकारामने पहिले एक हट्टी या दुकान खोला । जब इसमें सफलता न हुई तो अपना जीवन भक्ति और प्रेममें अर्पण कर दिया । इस कालमें स्वामी रामदास नामक एक महात्मा हुए जो शिवाजीके गुरु थे । इनका वर्णन आगे आवेगा ।

दक्षिण में ११ वीं और १२ वीं शताब्दीमें द्राविड़भाषाके अन्दर शैवमतके अत्युत्तम कवि हुए जिन्होंने ब्राह्मणोंपर आक्रमण किया और बड़ा सुन्दर साहित्य उत्पन्न किया। इनमेंसे कई कवि परिया जातिके थे। इन्होंने अपना नाम तक पीछे नहीं छोड़ा। परन्तु इनके कालमें आर्योंका उत्साह बहुत बढ़ रहा था क्योंकि इसी समय कुम्बारने द्राविड़ भाषामें रामायण लिखी। तदनंतर दक्षिणमें शिव और विष्णुकी भक्तिका प्रचार रहा और १७ वीं शताब्दीमें एक धार्मिक सम्प्रदायकी तरंग उठी जो "सिद्ध" कवियोंके नामसे विख्यात है। उनका सिद्धान्त यह था कि धर्मको प्राचीन ऋषियोंकी परिपाटीपर चलाना चाहिये और मध्यकालमें जो दोष उत्पन्न हो गये हैं उनको निकाल देना चाहिये।

इसी प्रकार तेलगु भाषामें रामायण और महाभारतके अत्युत्तम अनुवाद किये गये। बिहारमें १४ वीं शताब्दीमें तिहुतके राजा शिवसिंहके दरबारमें विद्यापति बड़े कवि हुए। उनने और वीरभूमिके चण्डीदास ब्राह्मणने राधाकृष्णपर कवितायें लिखीं।

चैतन्यकी तरंगके उपरान्त बंगालमें शिव और कालीकी भक्तिका प्रचार रहा। १६ वीं शताब्दीमें नदियाके एक ब्राह्मण कृत्तिवासने रामायणका बंगलामें अनुवाद किया। इसी समय बर्दवानके मुकुन्दराम चक्रवर्तीने कवितायें लिखीं जिनमें बंगालके अन्दर मुसलमानी क्रूरताका वर्णन किया गया है। १७ वीं शताब्दीमें बर्दवानके एक और कवि काशीरामदासने महाभारतका अनुवाद किया।

उन्नीसवां प्रकरण

मुसलमान ऐतिहासिक तथा अन्वेषक ।

ऐलबरूनी

जब अल्बरूनी आर्यावर्तमें आया तो उसने देखा कि आर्यावर्तसे बौद्धधर्म निकल चुका था। आर्यावर्त ही क्या सम्पूर्ण मध्यएशिया, खुरासान, अफ़ग़ानिस्तान और पश्चिमोत्तर भारतमें बौद्ध धर्मका चिह्न भी न रहा था। अल्बरूनीको बौद्धधर्मके सम्बन्धमें कुछ ज्ञान न था। आर्यविद्याके केन्द्रस्थान उस समय काश्मीर और काशी थे। वहां तक ऐलबरूनी की पहुंच न हो सकी। उस समय आर्यावर्तमें विष्णु देवताका प्रचार बहुत था। पर काबुल और पंजाबके पालकुलके राजा शिवकी पूजा करते थे। अल्बरूनीने आर्यों की दर्शन, ज्योतिष, गणित इत्यादि विद्याओंकी तुलना यूनानकी विद्याओंसे बड़ी निपुणताके साथ की है। वह आर्योंकी विशेषताओंका वर्णन करता हुआ आर्य और मुसल्मानोंके विरोधके निम्नलिखित कारण वर्णन करता है—

आर्य और मुसलमानोंके विरोधके कारण

प्रथम, आर्योंकी भाषा हमसे पृथक् है और उनकी संस्कृत भाषाका सीखना अत्यन्त कठिन है क्योंकि एक तो उसका व्याकरण आदि बहुत विस्तृत तथा जटिल है, दूसरे उसके दो भाग हैं, एक प्राकृत जो साधारण पुरुष बोलते हैं, दूसरे संस्कृत जो केवल विद्वान् पुरुष बोलते हैं। इनकी समस्त विद्यायें उसी भाषामें हैं। उनके कई शब्दोंका उच्चारण हमसे नहीं हो सकता। तीसरी कठिनता यह है कि नकल करनेवाले बड़े असावधान हैं। वे आर्य पुस्तकोंकी ठीक नकल करनेका परिश्रम तथा कष्टसहन नहीं करते। उनकी असावधानतासे लेखककी मानसिक योग्यताके उत्तम परिणाम नष्ट हो जाते हैं। पुस्तक पहली या दूसरी नकलमें ही दोषोंसे भर जाती है और मूलग्रन्थसे सर्वथा विभिन्न हो जाती है जिसको समझना गुरु और शिष्य दोनोंके लिये कठिन हो जाता है। इस असावधानताका यह भी परिणाम हुआ कि प्रायः लेखकोंको अपनी पुस्तक एक विशेष दृष्टिसे लिखनी पड़ी और उसमें कई शब्द ऐसे लिखे गये जिनकी आवश्यकता न थी। इसलिये वह और कठिन बन गयी।

दूसरे, आर्यधर्म हमारे धर्मसे सर्वथा विभिन्न है। आर्य लोग किसी ऐसा पदार्थको नहीं मानते जिसे हम मानते हैं। इनके आभ्यन्तरिक विरोध केवल दर्शन-सम्बन्धी विचारोंपर हैं। इनकी समस्त शक्ति दूसरोंके विरोधमें लगी हुई है। जिनका इनसे मतभेद है उनको ये म्लेच्छके नामसे पुकारते हैं और इनके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध, विवाह आदि नहीं करते। यहां तक कि उनके साथ खाना,

देना और देखना भी अनुचित समझते हैं, क्योंकि इससे वे भ्रष्ट हो जाते हैं। जो वस्तु किसी अन्यके जल, इत्यादिसे स्पर्श कर जाय उसे वे अपवित्र समझते हैं और उस अपवित्र वस्तुको साफ करके भी प्रयोगमें लाना नहीं चाहते। जो कोई उनके धर्ममें नहीं होता उसे वे अपने पास आने भी नहीं देते, इस कारण उनसे कोई सम्बन्ध करना असम्भव है।

तीसरे, हमारे आचार और हमारी रीतियां उनसे इतनी विभिन्न हैं कि वे हमारे नाम, वस्त्र और रीतियोंसे अपने बालकोंको भयभीत करते हैं, और हमें असभ्य कहते हैं, क्योंकि हमारी क्रियायें उनसे सर्वथा विरुद्ध हैं। परन्तु सच्ची बात यह है कि विदेशियोंसे घृणा करनेका विचार न केवल आर्योंमें और इन लोगोंमें ही पाया जाता है किन्तु यह भाव संसारकी समस्त जातियोंमें विद्यमान है।

चौथे, एक अन्य कारण जिसने इस घृणाको और भी बढ़ा दिया, यह है कि पहिले पहिल खुरासान, फारस, इराक, मोसल तथा सीरिया तक समस्त देश बौद्ध धर्मके अनुयायी हो गये थे। बादशाह गुश्तास्प पारसी धर्मका इतना सहायक हुआ कि उसने सब बौद्धोंको अपने राज्यसे निकाल बाहर किया। वे लोग भारतवर्षकी तरफ आये और पारसियोंके विरुद्ध उत्साह फैलाने लगे। फिर इस्लामकी बारी आयी। यवनोंने भारतवर्षपर आक्रमण आरम्भ किये। महमूदके आक्रमणोंने तो इस घृणाकी नींवको और भी दृढ़ कर दिया। यही कारण है कि आर्योंकी विद्यायें उन समस्त प्रान्तोंसे बाहर चली गयीं जिनको हमने विजित किया। वे ऐसे स्थानमें स्थापित की गयीं जहां हमारा हाथ नहीं पहुंच सकता, यथा काश्मीर, काशी आदि। इन स्थानोंमें विदेशियोंके विरुद्ध घृणाका यह भाव राजनीतिक तथा धार्मिक बुनियादपर कायम किया जाता है।

पांचवें, आर्योंकी यह जातीय विशेषता बन गयी है और वे यह समझते हैं कि संसारमें हमारी जैसी कोई जाति नहीं है, हमारे देश जैसा कोई देश नहीं है, हमारे राजाओंके समान कहीं राजा नहीं है, हमारी विद्यायें जैसी कहीं विद्याएं नहीं हैं और हमारे धर्म जैसा कोई धर्म नहीं है। वे लोग बड़े अभिमानी, स्वार्थी और प्रत्येक बात-पर गर्व करने वाले हैं। वे अपनी विद्यायें अन्य जातिके लोगोंको भी सिखलाना नहीं चाहते, विदेशी जातियोंकी तो बात ही अलग है। यदि कोई उनसे कहे कि खुरासान और फारसकी भी अपनी विद्यायें हैं तो उन्हें विश्वास ही नहीं होता। यदि वे अपने देशके बाहर जायं तो उनका यह विचार दूर हो जाय। उनकी अपेक्षा उनके पूर्वज बहुत उच्च-हृदयके थे।

प्रसिद्ध आर्य विद्वान् वराहमिहिरका कथन है कि यद्यपि यूनानी म्लेच्छ हैं, तो भी उनकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये क्योंकि वे विद्वान् हैं। उन विद्वानोंकी प्रतिष्ठा तो अत्यावश्यक है जिनमें विद्याके अतिरिक्त सरलता तथा पवित्रता भी पायी जाती हो।

तत्पश्चात् अलबरूनीने आर्योंके ईश्वर-विश्वासके सिद्धान्तका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। एक पृथक् अध्यायमें उसने जातियोंका वर्णन किया है। इसके

बाद एक और अध्यायमें वह मूर्तिपूजाके आरम्भपर पर्यालोचन करते हुए लिखता है कि आर्य लोग प्रायः मूर्तियों या चित्रोंपर मोहित होते हैं। जिस तरह यदि हज़रत मुहम्मद साहबका चित्र सम्मुख लाया जावे तो मुसलमान उसे चूमेंगे, बड़े मानसे उसको नमस्कार करेंगे, उसी प्रकार मोक्ष पुरुषोंके लिये आर्य विद्वानोंने कई महापुरुषोंकी मूर्तियां बनाकर पुजवानेके लिये निश्चित कर दी हैं। भिन्न भिन्न मन्दिरों तथा देवताओंका वर्णन करके उसने इस बातके बहुतसे प्रमाण भी उपस्थित किये हैं।

इब्न बतोता नामक एक इस्लामी अन्वेषक मिस्रसे प्रस्थानकर भारतवर्षमें आया। उसने दिल्लीके सौन्दर्यका और तुग़लक बादशाहोंके वृत्तान्तका बड़ी योग्यतासे वर्णन किया है। उसने मुहम्मद तुग़लककी मिट्टी बातोंका भी वर्णन किया है। वह लिखता है कि दिल्लीमें कोई तीन मील लम्बा एक कृत्रिम सरोवर है जिसके तटोंपर बड़ी छायावाले वृक्ष हैं।

इब्न बतोता

निर्धन तथा धनी पुरुष दोनों वहां भ्रमणार्थ जाते हैं। उसने भारतके पश्चिमी तीर विशेषकर मालाबारके प्रान्तके वैभव तथा ऐश्वर्यका अच्छा चित्र खींचा है। उसने यह भी लिखा है कि दिल्लीसे थोड़े मीलकी दूरीपर आर्यपुरुष बादशाहकी लेशमात्र भी परवा नहीं करते और सर्वथा स्वतन्त्र रहते हैं, परन्तु जब कभी अवसर प्राप्त होता है तो वे बादशाही मनुष्योंको लूट लेते हैं।

एक और फ़ारसी ऐतिहासिक मासिरुद्दीनने गुजरात (अनहिलवाड़ा) के राजा निहालसिंहकी विचित्र कथाका वर्णन किया है। एक दिन राजा हाथीपर चढ़कर आखेटके लिये गया। मार्गमें उसकी दृष्टि एक सुन्दर कन्यापर पड़ी। उसने अपना हाथी उसकी ओर बढ़ाया किन्तु तत्कालही उसके हृदयमें विचार उत्पन्न हुआ कि राजा होकर मुझे ऐसा पाप न करना चाहिये। इस विचारके आते ही वह अपनी राजधानीकी ओर लौट गया और आते ही अपने ब्राह्मण मन्त्रियोंको बुलाकर अपने बुरे विचारोंका वर्णन कर दण्डका इच्छुक हुआ। ब्राह्मणोंने निश्चय किया कि राजाको चिता बनाकर जल जाना चाहिये। चिता तैयार की गयी। जब राजा उसपर चढ़ने लगा तो ब्राह्मणोंने आगे बढ़कर उसे रोक लिया और कहा, बस अब दण्ड मिल गया, क्योंकि तुमने पापका केवल विचार किया था इसलिये उस अपवित्र विचारके बदले जो दुःख आवश्यक था वह तुम्हें मिल गया। विचारका सम्बन्ध शरीरसे नहीं प्रत्युत मनसे है, इसलिये इस अपवित्र विचारके लिये दण्ड भी मनको ही मिलना चाहिये। शरीरको निर्दोष समझकर उसे दण्ड देनेकी आवश्यकता नहीं है। राजाको सदा सब कार्य धर्मानुसार करना चाहिये।

द्वितीय खण्ड

राजपूत तथा मुग़ल शासक ।

जब मुग़ल लोग पश्चिमोत्तरकी ओरसे स्थलमार्गद्वारा आक्रमणके लिये आ रहे थे उसी कालमें समुद्रकी ओरसे हरिवर्षीय (यूरोपीय) जातियां, जिनका धर्म ईसाई था, भारतवर्षमें व्यापारके लिये आयीं। जबतक दिल्लीमें मुग़लोंका राज्य दृढ़ रहा ये जातियां केवल व्यापारमें लगी रहीं। परन्तु जब औरंगजेबके कालमें आर्योंने उठकर मुगल राज्यको धक्का देना चाहा तो उन व्यापारी जातियोंमेंसे अंग्रेज़ोंने भी राजनीतिक-बलके लिये हाथ पांव मारे परन्तु कुछ सफलता न हुई। पीछे राजनीतिक उन्नतिके लिये उनका तथा फ्रांसीसीयोंका परस्पर संग्राम हुआ।

यूरोपीय जातियोंका आगमन

इस संग्रामकी समाप्तिपर १६वीं शताब्दीके आरम्भमें जब मैदान अंग्रेज़ोंके हाथ रहा, उस समय आर्योंने देशके अन्दर अपना अधिकार जमा लिया था किन्तु भारतवर्षका सबसे धनाढ्य प्रान्त अंग्रेज़ोंके हाथ आ गया। उस कालसे उनके तथा आर्योंके मध्यमें भारतके राज्यके लिये युद्ध प्रारम्भ हुआ। पहिले चालीस वर्ष तो मराठोंके साथ संग्राम होता रहा, फिर सिक्खोंके साथ हुआ। अन्तमें देश उनके हाथ चला गया। विक्रमकी २०वीं शताब्दीके आरम्भमें जो हलचल हुई वह इस भागको समाप्त करती है।

इन सब भिन्न भिन्न घटनाओंका वर्णन पृथक् पृथक् अध्यायोंमें किया गया है। इस अध्यायमें मुग़ल-साम्राज्यके साथ राजपूतोंकी मुठभेड़का ज़िक्र होगा। इस मुठभेड़में राजपूतोंके अन्दर दो भिन्न भिन्न पक्ष हो गये। राजपूतानेके परिमित राजाओंने मुग़लोंके साथ युद्ध करना व्यर्थ समझा। उनमें सबसे बड़ी रियासत जयपुरकी थी। वहांके राजाने देखा कि राजपूताना अकेला मुग़लोंको आर्यावर्तसे नहीं निकाल सकता इसलिये उन्होंने उनके साथ मित्रता तथा सम्बन्ध करके उन्हें अपने अन्दर मिला लेना चाहा। राजाने अपनी कन्याका विवाह अकबरसे कर दिया। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि इस नीतिमें बड़ी सफलता हुई, और यदि शाहजहांके उपरान्त उसका ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह सिंहासनपर बैठ जाता तो सफलता पूरी हो जाती। जयपुर तथा जोधपुरके राजा उसके सहायक थे क्योंकि वह धर्ममें प्रायः आर्य था। जयपुरका अनुकरण करके जोधपुरके राठौर राजाने अपनी कन्या जहांगीरको विवाहमें दी। वास्तवमें यह कन्या रानीसे उत्पन्न न थी। वह एक दासीके गर्भसे उत्पन्न हुई थी। यह घटना केवल इतना प्रकट करती है कि जोधपुर ऊपरसे जयपुरकी नीतिका सहायक हो गया परन्तु हृदयमें राठौर इसे राजपूती शानके विपरीत समझते थे और चित्तौड़की नीतिके अनुयायी थे।

मुग़लोंके साथ राजपूतोंकी मुठभेड़

इस नीतिके विरुद्ध जो रियासत निरन्तर अड़ी रही वह चित्तौड़की रियासत थी। जिस प्रकार राजपूत-जाति आर्योंकी रक्षक थी उसी प्रकार राजपूतोंमें चित्तौड़के कुलने राजपूतोंके मानको स्थिर रखा और मुग़लोंसे मित्रताकी नीतिको अनुचित ठहराया। इसी चित्तौड़के राजपूतवंशजोंने मरुभूमियोंसे जाकर हिमालय पर्वतपर नेपालका सुप्रसिद्ध राज्य स्थापित किया। नेपालको मुगलोंने नहीं छुआ। अंग्रेज़ोंने भी थोड़ा सा युद्ध

चित्तौड़की महत्ता

करके इसे स्वतंत्र ही रहने दिया। नेपालके राजपूतोंने भारतवर्षके इतिहासमें अत्यल्प भाग लिया है। सर्वथा सुरक्षित पर्वतपर होनेसे वे अपने आपको भारतसे पृथक् ही समझने लग गये हैं।

यद्यपि प्राचीन कालसे महाराजाधिराजका पद दिल्लीके राजाओंके पास रहा है परन्तु चित्तौड़के राजपूत भी अपने कुलको न्यून नहीं समझते थे। जब दिल्लीका सिंहासन मुसल्मानोंके अधिकारमें हो गया तो उस समयसे चित्तौड़के राजाओंने अपने आपको आर्याधिपति मानना प्रारम्भ किया। केवल यही एक राज्य था जिसका विचार फिर दिल्लीमें आर्य राज्य स्थापित करनेका था, इसलिये इनका कुछ वृत्तान्त वर्णन करनेके लिये कुछ शताब्दियां पीछे जाना अनुचित न होगा।

राजपूतोंकी उत्पत्ति

राजपूत अपनी जातिको रामचन्द्रसे मिलाते हैं, और राजपूतोंके छत्तीस कुलोंमें इनका नाम सबसे उच्चतम है। चित्तौड़के राणा "हिन्दु-सूर्य्य" कहलाते चले आये हैं। प्रसिद्ध अन्वेषक कर्नल टाड इस जातिका वर्णन करते हुए लिखता है कि "कहां है संसारमें कोई जाति जिसने इतने तूफान तथा आक्रमणोंके पश्चात् अपने धर्म, जाति और रीतियोंको सर्वथा साफ तथा पवित्र रखा हो? तुलना करो ब्रिटन लोगोंसे। पहिले वे रोमन लोगोंके दास हो गये, फिर क्रमशः सैक्सन, डेन्ज़ तथा नौर्मनके, और अन्तमें समस्त धर्म परस्पर मिल जुल गये। केवल ये राजपूत ही हैं जो शताब्दियोंके कठोर आक्रमणोंके बाद आज भी उसी प्रकार पाये जाते हैं जैसे इनके पूर्वज थे।" रामके एक पुत्र लवने लवपुर (लाहौर) बसाया। उसी कुलसे कनकसेनने आकर सौराष्ट्रपर अधिकार किया। वह भी बड़ा नगर था और वहांके रहने वाले जैन धर्मावलंबी थे।

उसी वंशके एक राजा शिलादित्यने सीथियन आक्रामकोंका मुक़ाबला किया जिसमें वह मारा गया। उसका बहुत छोटा बच्चा गोहा रह गया। गोहाने ईदरमें भीलोंसे राज्य छीन लिया और अपने नामसे गहलोतवंशकी नींव डाली। उसकी सन्तानके आठ राजाओंने शासन किया। भील लोगोंने राजद्रोही होकर सबका वध कर डाला, केवल एक बालक बापा शेष रह गया।

बापाका बाल्यकाल इधर उधर गड़रियोंके साथ व्यतीत हुआ। उसने अपने सहक्रीड़कोंको एकत्र करके उनको शपथ देकर अपनी सरदारी स्थापित की।

बापाका पराक्रम

जब सोलंकी राजाको इसका वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो बापा वहांसे भी भाग गया। फिर उसने एक साधुकी सेवा की। साधुने उसे एक तलवार दी जो पत्थरको काट सकती थी। यह तलवार लेकर बापा चित्तौड़में आया। वहां मोरी वंशके राजाने उसे अफ़सर बनाया। दूसरे सरदार द्वेषसे जलने लगे। परन्तु जब एक समय एक शत्रु चढ़ आया तो सबने राजाका साथ देनेसे इन्कार किया। बापाने जाकर शत्रुको परास्त किया। इस घटनासे वह इतना लोकप्रिय हो गया कि थोड़े ही दिनों पश्चात् चित्तौड़पर

अधिकार कर वह " हिन्दु-सूर्य्य " का पद ले सिंहासनपर बैठ गया। बापाने वृद्धावस्थामें जाकर खुरासानको जीता, और यह भी कहा जाता है कि ईरान, अफगानस्थान, काश्मीर, कन्धार इत्यादिको भी विजय की। इन देशोंमें उसने कई विवाह किये। उसके सब पुत्रोंने भिन्न भिन्न राजपूत वंशोंकी नींव डाली।

बापासे लेकर समरसी तक जब कि शहाबुद्दीनने पृथ्वीराजको परास्त किया चार शताब्दियाँ व्यतीत हो जाती हैं, उनमें सिवाय एक मुसलमान आक्रमणके जो कि राणा खोमाके कालमें ९ वीं शताब्दी विक्रमीके अन्तमें हुआ और कुछ वृत्तान्त नहीं मिलता। उस आक्रमणमें मुसलमान आक्रामक परास्त किया गया और उनका सरदार क़ैद कर लिया गया।

दूसरा प्रकरण।

समरसी और उनके उत्तराधिकारी।

रावल समरसी

रावल समरसी (समरसिंह) संवत् १२०६ में उत्पन्न हुए। उनका विवाह पृथ्वीराजकी भगिनीसे हुआ था। जब पृथ्वीराजको शहाबुद्दीनके साथ युद्धकी तैयारी करनी पड़ी तो उन्होंने लाहौरके राजा चन्द्रराजको दूत बनाकर समरसीके पास भेजा। उनके वस्त्र मोतियोंके थे। उनके गलेमें कमलके बीजोंकी माला थी। समरसीने शहाबुद्दीनके साथ कई युद्ध किये। अन्तको शहाबुद्दीन हारकर लौट गया। परन्तु कथन है कि उसे अपने आपको कैदसे छुड़ानेके लिए मूल्य भी देना पड़ा।

दूसरी बार जब कि कन्नौज, पत्तन (गुजरात) और धारके राजा सताता रहे थे समरसी पुनः सहायताके लिये आ उपस्थित हुए। पृथ्वीराज तथा उनके सम्बन्धी मार्ग कोस तक उनके सत्कारके लिये गये, और उनके आनेपर दिल्लीमें नक्कारे तथा शादियाने बजाये गये। समरसी अपने स्थानमें अपने छोटे पुत्र कर्णको कर्ता धर्ता बना आये थे, जिसपर बड़े पुत्र अप्रसन्न हो गये। एक तो दक्षिणमें बेदरके इस्लामी बादशाहके पास चला गया और दूसरा हिमालयके पर्वतोंमें नेपालकी रियासतपर अधिकार जमा बैठा।

युद्धमें समरसीका मत सबसे बढ़कर होता था। समस्त राजा तथा सरदार उनके तम्बूमें एकत्र होते और उनकी सम्मतिके अनुसार कार्य करते थे। इस युद्धमें उनका पद नेस्टरके समान था। युद्धमें समरसी, उनका पुत्र कल्याण तथा उनके १३ सहस्र राजपूत काम आये। उनकी रानी पृथा यह समाचार सुनकर चितापर चढ़कर भस्मीभूत हो गयी। अब आर्योंमें विनाश आरम्भ हुआ जिसमें जब कभी अवकाश मिला राजपूत उठे और अपने शत्रुओंको दबानेके लिये उद्यत हो गये। यहाँ तक कि राजस्थानकी प्रत्येक सड़कपर खूनकी नदी बह चली।

रानी कर्मदेवी

कर्ण अभी छोटे थे, उनकी माता कर्मदेवी उनकी प्रतिनिधि हुईं। कर्मदेवीने अपनी सेना एकत्र करके कुतुबुद्दीनका मुकाबला किया और अम्बरके पास उसे नीचा दिखाया। इस युद्धमें वह ज़ख्मी भी हो गया। नौ और राजा रानीके साथ थे।

कर्ण संवत् १२४९ में गद्दीपर बैठे। फिर संवत् १२५७ में राहप गद्दीपर बैठे। उन्होंने उस वंशका नाम सिसोदिया रखा। अपना पद रावलसे राणा कर दिया। उन्होंने शम्सुद्दीनके साथ नागौरमें युद्ध करके उसे पराजित किया। उनके उपरान्त पचास वर्षके भीतर नौ राजपुत्र सिंहासनपर बैठे। उनमेंसे छः ने रणक्षेत्रमें प्राण दिये। उनका काम सबको मुसलमानोंसे बचाना था।

राणा लखमसी

संवत् १३३१ में राणा लखमसी (लक्ष्मणसिंह) सिंहासनपर बैठे। उनके चाचा भीमसी (भीमसिंह) रक्षक थे। भीमसीकी स्त्री पद्मिनी थी जिसका वर्णन पूर्व हो चुका है।

अलाउद्दीन प्रथमबार तो असफल लौट गया परन्तु दूसरे वर्ष फिर चढ़ आया। राणाको एक स्वप्न हुआ जिसमें देवीने उनके पुत्रोंका बलिदान मांगा। शत्रुके मुकाबलेमें अपनी तथा इस राजपुत्र क्रमशः सिंहासनारूढ़ हुए और युद्धमें मारे गये। केवल अजयसी पिताकी आज्ञासे भागकर निकल गये और बचकर केलवाड़ामें आ पहुँचे। उनके ज्येष्ठ भ्राता अरसीका एक पुत्र हमीर ही उनके वंशका एक मात्र जीवित चिन्ह था।*

राणा अजयसी

अजयसिंहका एक पार्वतीय ठाकुर मुञ्जाके साथ झगड़ा था। उनके दोनों पुत्र भीरु सिद्ध हुए। उन्होंने हमीरको बुला भेजा। हमीरने शत्रुका सिर काटकर चाचाके चरणोंमें रख दिया। अजयसीने हमीरको प्यार किया और मुञ्जाके रक्तसे उनके माथेपर तिलक लगा दिया। अजयसीका एक पुत्र तो वहीं मर गया। दूसरा सज्जनसी दक्षिणमें चला गया जिसकी सन्तानसे शिवाजीका होना बताया जाता है।

राणा हमीर सिंह

हमीरसिंह संवत् १३५७में गद्दीपर बैठे और ६४ वर्षपर्यन्त राज्य करते रहे। उन्होंने चित्तौड़के इर्द गिर्दका सारा प्रान्त नष्ट कर दिया। लोग भागकर पर्वतोंमें वास करने लगे। दुःखित होकर मालदेवने अपनी कन्या हमीरको विवाहमें देनी चाही। हमीरने स्वीकार कर लिया। हमीरको बादमें विदित हुआ कि वह कन्या बालविधवा थी। जब कि मालदेव बाहर गया था हमीरने (उस स्त्रीकी सहायतासे) चित्तौड़पर अधिकार

---

* हमीरकी उत्पत्तिका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है। एक बार अरसी अपने साथियों सहित सूअरका आखेट कर रहे थे। सूअर एक मक्काके खेतमें घुस गया। खेतकी रक्षिका एक कन्या थी। उसने कहा मैं सूअरको बाहर निकाल दूंगी। उसने मक्काके पौधे हाथमें लेकर सूअरको हांककर बाहर निकाल दिया। कन्याकी वीरतापर सब विस्मित हो गये। उस कन्याकी ओरसे, जब वह पक्षियोंको उड़ा रही थी, एक कंकर एक घोड़ेको लगा उसका वह अंग अकर्मा हो गया। जब वे लौट रहे थे उन्होंने कन्याको देखा कि वह शिरपर दूध और दोनों हाथमें भैंसके बच्चे उठाये आ रही है। एक सवारने उसके साथ उपहास किया। कन्याने एक धक्का देकर अश्वारूढ़को नीचे गिरा दिया। पता लगानेपर विदित हुआ कि वह एक राजपूत जमींदारकी कन्या है। दूसरे दिन अरसीने राजपूतको बुला भेजा। राजपूत आकर राणाके पास बैठ गया। अरसीने कहा कि तुम अपनी कन्याका विवाह मेरे साथ कर दो राजपूतने साफ इन्कार कर दिया। उसने घर आकर अपनी स्त्रीको यह हाल कह सुनाया। स्त्रीने उसे वापिस भेज दिया कि अपनी अज्ञानताके कारण क्षमायाचना करो। निदान उस राजपूतनीका विवाह अरसीसे हो गया, उसका पुत्र हमीर हुआ जो कि अपनी माताके गृहमें ही रहता था।

और छः मास उपरान्त उसे उपहार दे कर छोड़ दिया। इस विजयके स्मरणार्थ चित्तौड़में एक बड़ी मीनार खड़ी की गयी जिसकी तैयारीमें दस वर्ष लगे। राणा कुम्भाने कई भवन बनवाये। ये अच्छे कवि थे। उनकी रानी मीराबाई मेड़ताके राठोरकी कन्या थी जो अपने प्रेम, भक्ति तथा भजनोंके लिये विख्यात है।

राणा कुम्भाजी पचास वर्ष राज्य करनेके उपरान्त संवत् १५२५में अपने पुत्र ऊदाके हाथसे मारे गये जिसे "हत्यारा" नाम दिया जाता है। सब राजा उससे बागी हो गये। वह लज्जामें डूबा रहता था। अन्तको उसने दिल्लीके बादशाहको कन्या दे कर मित्रताका विचार किया। ईश्वर चित्तौड़को इस अपमानसे बचाना चाहता था। जब वह दिल्लीमें दरबारसे उठा तो बिजली गिरी और वह जलकर भस्मीभूत हो गया।

राणा ऊदा

ऊदा (उदयसिंह)के पुत्र रायमल संवत् १५३०में राजगद्दीपर बैठे। यह बड़े वीर थे। पहिले उन्होंने शाहीसेनाको पराजित किया पश्चात् मालवाके बादशाहोंसे युद्ध करते रहे, उन्हें अपने पुत्रोंके झगड़ोंसे बहुत दुःख हुआ। एक पुत्र जयमल तो दुराचारसे मारा गया। दूसरे दो पुत्रों-सांगा तथा पृथ्वीराज-के मध्यमें सदा विग्रह ही रहा। पृथ्वीराज अपने भाईको बड़ा शूरवीर विचार करके गद्दीके योग्य समझता था। एक दिन सांगाने बात करते कहा कि यद्यपि बड़ा होनेसे अधिकार मेरा है परन्तु मैं इसका निर्णय देवीपर छोड़ता हूं। अन्तको वे मन्दिरमें पहुंचे और पूछा कि गद्दीका स्वामी कौन है। उत्तर मिला सांगा। इसपर पृथ्वीराजने तलवार खींच ली और इस कथनको अन्यथा करना चाहा।

राणा रायमल

राजपुत्र सांगाको पांच ज़ख्म लगे और आंखमें तीर लगा किन्तु वे वहांसे भाग कर बच गये। उन्होंने वेश बदल लिया और बाहर गड़रियोंके साथ रहने लगे। एक दिन ज़मींदारने उन्हें यह कह कर निकाल दिया कि तुम्हें पशुओंके रखनेकी योग्यता नहीं। एक स्थानमें उन्हें रोटियां सेकनेका काम दिया गया तो एक बार उन्हें यह सुनना पड़ा कि पकानेकी अपेक्षा तुम्हें खानेका बहुत शौक़ है। यह हाल परमारके ठाकुरने सुना। उसने उन्हें ले जाकर अपनी कन्याके साथ उनका विवाह कर दिया।

राजपुत्र सांगाकी विपत्ति

पृथ्वीराजने अप्रसन्न होकर पिताने उसे निकाल दिया। अब जयमल बोझ रह गया। वह राव सुरतानकी कन्या ताराबाईके साथ विवाह करना चाहता था। राव सुरतानको पठानोंने निकाल दिया था। उसने कहा कि यदि जयमल मेरा राज्य मुझे लौटा दे तो विवाह कर दूंगा। जयमल इसके लिये तय्यार हुआ किन्तु जब सुरतानसे पूर्व ब्याहके कन्याको देखना चाहा तो कन्याके पिताने क्रोधमें उसे मार डाला। रायमलने यह समाचार सुनकर कहा—"जयमलको ठीक दण्ड मिला क्योंकि इसने एक दुःखित तथा पीड़ित राजपूतका अपमान करना चाहा था।"

राजपुत्र जयमल

राणाने पृथ्वीराजको वापस बुलाया। राणाका भाई सूर्य्यमल भी गद्दीपर बैठनेका इच्छुक था। वह मालवामें जा पहुंचा। उसने वहांसे सेना ले कर आक्रमण किया। राणा युद्ध करने गये। पृथ्वीराज राणाकी सहायताको जा पहुंचा। संग्राममें सूर्य्यमल तथा पृथ्वीराज दोनों जख्मी हुए और सन्ध्याको थक कर हट गये। पृथ्वीराज अपने चचाके पास गया जब कि शल्यवैद्य उनके जख्म सी रहा था। सूर्य्यमलने खड़े हो कर भतीजेका सत्कार किया, परन्तु उनके सनम्र जख्मोंके बन्द टूट गये। पृथ्वीराजने पूछा, चचा, जख्म कैसे हैं? सूर्य्यमलने कहा, तुम्हें देखनेके आनन्दसे सर्वथा अच्छे हो गये हैं। बातें करते करते पृथ्वीराजने खानेके लिये भोजन मांगा। भोजन करनेके उपरान्त पृथ्वीराज चला और कहता गया चचा, कल हम युद्ध समाप्त करेंगे। सूर्य्यमलने उत्तर दिया "अच्छा, पुत्र शीघ्र आना।"

चाचा और भतीजा

पृथ्वीराज तथा रायमल दोनों कुछ कालमें इन्तकाल कर गये और राजपुत्र सांगा लौट कर संवत् १५६६ में गद्दीपर बैठा। सांगाके राज्य-कालमें मेवाड़ उन्नतिके शिखरपर पहुंच गया। सांगाकी यह इच्छा थी कि मैं फिर दिल्लीमें राजपूती राज्य स्थापित करूं। जब उन्होंने अपने गृह सम्बन्धी झगड़ोंका निर्णय करके उनसे छुट्टी पायी तो वे अपना राज्य बढ़ानेकी धुनमें लगे। उन्होंने मालवा तथा दिल्लीके सुलतान बादशाहके मुकाबलेमें अठारह युद्ध जीते। उनमेंसे दो अर्थात् बकरोल तथा घटोलीमें इब्राहीम लोदी स्वयं उनके मुकाबलेपर था। सारी शाही सेनाका वध हुआ और एक राजपुत्र विजयके चिह्न स्वरूप चित्तौड़में लाया गया।

मारवाड़ तथा अम्बरके राजाओंने उनका आधिपत्य स्वीकार किया। ग्वालियर, अजमेर, सीकरी, रायसेन, कालपी, चन्देरी, बून्दी, गकरोन, रामपुरा तथा आबूके राजा उनको कर देने लगे। अखिल राजस्थान उनकी ओर देखने लगा और राजकुल उनकी पूजा करने लगे।

राणाका शरीर बड़ा दृढ़ था। कार्तिक संवत् १५८४ में बाबरसे उनका युद्ध हुआ जिसका वर्णन आगे चलकर आवेगा। मरते समय राणाके शरीरपर तलवार या भालेके अस्सीसे अधिक जख्मोंके चिह्न विद्यमान थे। एक आंख अपने भाईके साथ युद्धमें नष्ट हुई थी। एक बाहु लोदीके साथ युद्धमें आहत हुआ था। उनका एक पैर एक और युद्धमें तोपके गोलेसे टूट गया था।

वे इतने वीर तथा साहसी थे कि उन्होंने मालवाके बादशाह मुजफ्फरको उनकी राजधानीमें जाकर कैद कर लिया, और रणथम्भोरका अजेय दुर्ग शाहीसेनाका मुकाबला कर ले लिया।

संवत् १५८६ में रत्नाजी (रत्नसिंह) सिंहासनपर बैठे। वे पिताके ही सदृश वीर थे। उन्होंने चित्तौड़ दुर्गके द्वार यह प्रकट करनेके लिये खुले रहनेकी आज्ञा दी कि इनके द्वार दिल्ली और मांडू हैं। अभी वे नवयुवक ही थे कि उन्होंने अपने सम्बन्धी बून्दीके राजासे झगड़ा किया और दोनोंके प्राण चले गये।

रत्न सिंह

संवत् १५९१ में विक्रमाजीत राजगद्दीपर बैठे। यद्यपि ये वीर थे परन्तु इन्हें अपने कर्तव्योंका विचार न था। इन्होंने अपनी मूर्खतासे सारे सरदारोंको हटा दिया। चित्तौड़को निर्बल पाकर मालवाके वीर बहादुरशाहने प्रत्यपकार करनेके लिये आक्रमण किया। जब सहस्रों राजपूत युद्धमें मारे गये तो राणा सांगाकी रानीने अपने छोटे पुत्र उदयसिंहकी रक्षाके लिये हुमायूं से प्रार्थना की। हुमायूं देर करके पहुंचा। चित्तौड़की राजपूत स्त्रियोंने पुनः अपनी वीरताका परिचय दिया। सहस्रों जलकर भस्मीभूत हो गयीं। हुमायूं के आनेपर बहादुरशाह चित्तौड़को छोड़ कर चला गया। इतनी हलचलके बाद भी विक्रमाजीत वैसेके वैसे ही रहे। एक दिन उन्होंने राजसभामें अजमेरके वृद्ध राजा कर्मचन्दको जिसने सांगाको दुःखकालमें आश्रय दिया था अपमानित किया। समस्त ठाकुर एकत्र हो गये। कानजी चन्दावत उनका नेता था। उसने विक्रमाजीतको गद्दीसे उतार कर पृथ्वीराजके खवास पुत्र बनवीरको सिंहासनपर बिठाया।

राणा विक्रमाजीत

बनवीर पहिले तो सिंहासनसे इन्कार करता था परन्तु जब गद्दीपर बैठ गया तो उसकी इच्छा हुई कि उदयसिंहको ही अपने मार्गसे हटा दें। उसने उदयसिंहका वध करनेका विचार कर लिया। जब महलोंमें शोर हुआ तो उदयसिंहकी धात्री(दाया) पन्नाको यह समाचार विदित हो गया। उसने कलेजेपर पत्थर रखकर उदयसिंहको बारीके सुपुर्द किया कि वह उसे बाहर ले जावे। दो मिनट पश्चात् घातक पहुंचा तो दायाने अपने पुत्रकी ओर इशारा कर दिया। अपनी आंखों अपने पुत्रका वध होते देखा किन्तु उसने एक आह तक न ली। भारतकी वीर देवी! तूने अपने कर्तव्यका पालनकर वह अपूर्व दृष्टान्त इतिहासके सामने रखा है कि तेरा नाम सर्वदा तथा सर्वत्र प्रतिष्ठासे लिया जायगा।

वीर धात्री पन्ना

यह दाया सच्ची राजपूतनी थी। पन्ना उदयसिंहको लेकर भीलोंकी सहायतासे डोंगरपुर होती हुई कमलमीर पहुंची और उसे वहांके जैनशासक आशाशाहके सुपुर्द कर वापिस आयी। सात वर्ष व्यतीत हो गये। शनैः शनैः यह समाचार फैल गया और राजपूत ठाकुर उदयसिंहके पास आने लगे। कोम्भूके दुर्गमें उसे तिलक लगाकर मेवाड़का राणा स्वीकार किया। दुर्गके राजपूत ठाकुरोंके साथ मिल गये।

संवत् १५९७ में उदयसिंह राणा प्रसिद्ध हुए। बनवीर अपने परिवार सहित दक्षिणको चला गया। उदयसिंहके अन्दर कोई भी गुण न था। अतः इनके शासनसे मेवाड़को कोई विशेष लाभ या गौरव-प्राप्ति न हुई। इसी वर्ष अमरकोटमें हुमायूं का पुत्र अकबर उत्पन्न हुआ जब कि हुमायूं शेरशाहसे पराजित होकर भागा जा रहा था, और अमरकोटके सोढा राजाने उसे अपने यहां आश्रय दिया था।

राणा उदयसिंह

आर्य राजाओंकी सहायतासे अकबरने पंजाबसे बिहार तकके मुसलमान शासकों अपने अधीन किया। संवत् १६३३ में बंगाल प्रान्त अफगानोंसे जीतकर मुगल राज्यका प्रान्त बना लिया गया। मानसिंह वहांका शासक नियुक्त हुआ। इस मालवाको संवत् १६२८ में और उससे एक वर्ष पीछे गुजरातको अपने अधीन किया संवत् १६४३ में काश्मीर, संवत् १६५१ में कन्दहार और संवत् १६४९ में सिन्ध जीता। अकबर दक्षिणमें बहुत सफल न हुआ। संवत् १६५१ से लेकर १२ वर्ष पर्यन्त अहमदनगरकी रानी चान्दबीबीके विरुद्ध मुगल सेना लड़ती रही। चान्द बीबीकी शूरवीरता तथा बुद्धिमत्ता विख्यात है। उसने फारसी-हब्शी दोनों सम्प्रदायोंको मिला लिया और बीजापुर और अन्य मुसलमान रियासतोंसे मित्रता स्थापित करके युद्ध किया। संवत् १६५५ में अकबरने स्वयं सेना लेकर आक्रमण किया परन्तु फिर भी अहमदनगर अधीन न हुआ। अकबरने खानदेशपर अधिकार कर लिया और दक्षिण विजयका काम अपने उत्तराधिकारियोंके लिये छोड़ दिया। अकबरने दिल्लीसे हटकर आगरामें राजधानी बनायी। वह संवत् १६६२ में मर गया।

जहांगीर

संवत् १६६२ में जहांगीरने सिंहासनको सुशोभित किया। उसने २२ वर्ष राज्य किया। उसका राज्यकाल अपने पुत्रों द्वारा किये गये द्रोहोंको मिटानेमें व्यय हुआ। उसमें राजनीतिक योग्यता न थी। अकबरके मृत्युके बाद ही उसके राज्यमें परिवर्तन आरम्भ हो गया अकबर राज्यका निर्माता था। उसका पुत्र जहांगीर विध्वंसक था। उसका जीवन और नीति एक स्त्रीके प्रेममें ही पायी जाती है।

मिर्जा गयास किसी कारणसे ईरान छोड़कर भारत वर्षको आरहा था मार्गमें उसके एक पुत्री उत्पन्न हुई। वह इतना निर्धन था कि उसका पालन न कर सकता था अतः वह उसे वहीं मार्गमें छोड़कर आगे चल पड़ा। एक काफ़िलेने उस कन्याको उठा लिया और उसकी माताको दूध पिलानेपर नौकर रख लिया। मिर्जा गयास अकबरके दरबारमें किसी पदपर नियुक्त हो गया। वह कन्या मेहरुन्निसा सौन्दर्यमें अद्वितीय थी। एक बार जब वह उद्यानमें टहलती थी तो राजपुत्रने उसे देखा। राजपुत्रने दो कपोत उसे पकड़ाये। एक कपोत उसके हाथसे उड़ गया। राजपुत्रने पूछा यह किस प्रकार उड़ गया? मेहरुन्निसाने दूसरा कपोत भी उड़ा दिया और कहा कि "इस प्रकार"। जब अकबरको जहांगीरके प्रेमका वृत्तान्त विदित हुआ तो उसने कन्याका विवाह करके उसके पतिको बंगालका शासक नियुक्त कर दिया। जब जहांगीर सिंहासनपर बैठा तो उसका प्रेम न भूल सका। उसने शेर अफगनका वध करके मेहरुन्निसासे विवाह कर लिया और उसका नाम नूरजहां रक्खा।

जहांगीर स्वयं कहा करता था कि मैंने एक प्याला शराबके लिये अपना राज्य नूरजहांके हाथ बेच दिया है। इसकी अपनी कोई शक्ति न थी। नूरजहां ही वास्तवमें राज्य करती थी। नूरजहां अपने पहिले पति से उत्पन्न लड़कीके लिये राजसिंहासन प्राप्त कराना चाहती थी। परिणाम यह हुआ कि शाहजहां विद्रोही हो गया।

अकबर के समय का भारत
(संवत १६६२)

[पृष्ठ ९६

सम्राट् जहाँगीर ।

सेनाका सेनापति था एक गोली लगी। जयमलने ज्यों ही दूसरे आई गोलीका निशाना बन कर अपनी मृत्यु निश्चित जानी, त्यों ही उसने अपनी सेनाको लड़नेके लिये आज्ञा दी। आठ सहस्र राजपूतोंने वाणवस्त्र धारण कर लिये, पान मुखमें धर दुर्गका द्वार खोल शत्रुओंपर जा पड़े। सहस्रोंका वध किया और स्वयं रणक्षेत्रमें वीरोंके समान मरे। इस रक्तपातके उपरान्त अकबर चित्तौड़में प्रविष्ट हुआ। अकबर कोपानलसे इतना प्रज्वलित था कि उसने चित्तौड़के बड़े बड़े स्मारकों तथा भवनोंको गिरा दिया। इस प्रकार आर्यजातिका अन्तिम दुर्ग अकबरके हाथमें आया।

राणा उदयसिंहने अरवली पर्वतमें आश्रय लिया। फिर उसने उदयपुर नगर बसाया जो कि अभी तक मेवाड़की राजधानी बना हुआ है। चार वर्ष अनन्तर वह परलोकको प्रस्थान कर गया। उसने अपने स्थानमें बड़े पुत्रके बदले जगमलको ही बैठाना निश्चित किया। जब सिंहासनपर बैठनेका समय आया और सब ठाकुर एकत्र हुए तो झालावाड़ने चन्द्रवत् ठाकुरको कहा, यह तो बड़ा अन्याय है कि बड़े पुत्रका अधिकार मारा जावे। सब ठाकुर प्रतापके पक्षमें हो गये। जब जगमल गद्दीपर बैठने लगा तो चद्रवतने उसे बाहुसे पकड़कर यह कह कर पीछे हटा दिया कि "महाराज आप चूक गये। यह स्थान तो आपके भाईका है।" यह कहकर प्रतापको सिंहासनपर बिठा दिया।

राणा प्रताप बिना किसी सामानके गद्दी पर आरूढ़ हुए। उनके चित्तमें बड़े सकाम थे। वे चित्तौड़को जीत कर पुन. उसी पदपर लाना चाहते जो उसे पहिले प्राप्त था। राणा सांगाका वृत्तान्त पढ़ कर यह भी विचार होता था कि कोई समय ऐसा अवश्य आयगा जब मुझे दिल्ली पहुंचनेका अवसर मिलेगा।

राणा प्रताप

अकबर बहुत आलस्यशील न था। उसने मारवाड़, अम्बर और बीकानेरके राजपूतोंको अपना सहायक बनाकर मेवाड़का शत्रु बना लिया। प्रतापने उन सबके साथ विवाह आदि बन्द कर दिये और अपनी कन्यायें अपने ठाकुरोंमें ही देनेकी रीति जारी की। यद्यपि अम्बर और मारवाड़का राज्य बढ़ गया और मेवाड़ राज्य बहुत बलहीन हो गया तो भी सत्यकी सर्वदा जीत होती है। बादमें यही प्रसिद्ध राजा जयसिंह तथा यशवंतसिंह बड़ी सविनय प्रार्थना करते थे कि हम फिर राजपूत बना लिये जावें और हमारे साथ विवाहका सम्बन्ध प्रचलित किया जावे।

प्रतापने प्रतिज्ञा की कि अपनी राजपूती प्रतिष्ठाको स्थिर रखते हुए अपने देशकी रक्षा करूंगा। उन्होंने अक्षरशः इस प्रतिज्ञाका पालन किया। २५ वर्ष पर्यन्त वे मुगल साम्राज्य और उसके समस्त सहायकोंके विरुद्ध लड़ते रहे। कभी वे एक स्थानसे दूसरे स्थान तक दौड़ते और छिपते फिरते, कभी राजसेनाका नाश करते थे। उन्होंने अपनी क्रियाओंसे सिद्ध कर दिखाया कि बापा रावलका कुल किसी मनुष्यके सामने सिर नहीं झुकाता। प्रसिद्ध काम प्रत्येक घाटीके अन्दर और प्रत्येक सड़कमें राजपूतके ठाकुर जयमलकी सन्तान, कलाके बराज और चन्द्रवत कुलके

प्रतापकी प्रतिज्ञा

राजपूत सर्वदा उनके लिये प्राण देनेको उद्यत रहे। सहस्रों राजपूत ऐसे थे जो प्रतापके कष्टोंका वृत्तान्त सुन कर उनके पास जा पहुंचे और जंगल और मैदानमें उन का साथ देते रहे।

चित्तौड़का ध्वंस देख कर प्रतापने सुखके सब सामान त्याग दिये। सोने चान्दीके पात्र अलग रख दिये। पत्तोंपर खाना और तृणादिपर सोना आरम्भ किया, तात्पर्य यह कि उन्होंने प्रत्येक सांसारिक सुख त्याग दिया।* उन्होंने बड़ी कठोर आज्ञा दी कि सब लोग समभूमियोंको छोड़कर पर्वतों पर जाकर बसें।

अकबरने प्रतापके विरुद्ध युद्ध स्थिर रखनेके लिये अजमेरमें जाकर डेरे लगाये। वह राजपूतानेकी रियासतोंको प्रतापके विरुद्ध करनेकी चेष्टायें करने लगा। अम्बरकी गद्दी पर उस समय राजा मानसिंह थे। वे बड़े वीर पुरुष थे। अकबरका आधा राज्य इन्हींके द्वारा विजित हुआ था। राजा मानसिंह शोलापुरपर विजय प्राप्त करके लौट रहे थे, कोमलमीरमें उन्होंने प्रतापसे मिलना चाहा। जब भोजन रक्खा गया तो प्रताप सिर पीड़ाका बहाना कर भोजन करने न आये। प्रतापके पुत्र अमरने राजा मानसिंहसे भोजन आरम्भ करनेके लिये प्रार्थना की। राजा मानसिंह इस अपमानसे जल गये। राणा प्रतापने सन्देसे कहला भेजा कि मैं उस राजपूतके साथ भोजन नहीं कर सकता जिसने अपनी पुत्री तुर्कों को दी है। राजा मानसिंहने "अन्न देवता" का निरादर न किया, दो चार दाने अपनी पगड़ीमें रख लिये और कहा हमने आपका मान रखनेके लिये ही अपनी कन्यायें तुर्कोंको दीं और अपनी भगिनियोंको कलंकित किया। यदि आप विपत्ति ही बुलाना चाहते हैं तो यही सही। आप इस देशमें न रह सकेंगे। फिर घोड़े पर चढ़ के यह कहते हुए चले गये कि मेरा नाम मानसिंह नहीं यदि मैं आपका गर्व न तोड़ूं। प्रतापने कहा "मैं आपसे मिलनेके लिये तत्पर रहूंगा।" राजा मानसिंहके चले जाने पर वह भूमि खोदी गयी और वहां गंगाजल छिड़का गया। जिन ठाकुरोंने राजा मानसे भेंट की थी उन्होंने जाकर स्नान किया और वस्त्र बदले।

राजा मानसिंह

यह सब समाचार अकबरके कानों तक पहुंच गया। इसका परिणाम हल्दी-घाटका भयंकर युद्ध हुआ। युवराज सलीम सेना लेकर प्रतापसे लड़ने आया। उसके साथ राजा मानसिंह और महाबतखां थे। महाबतखां राजपूत था पर मुसलमान हो गया था। प्रताप अपने बाईस सहस्र वीर राजपूत लेकर हल्दीघाट पर आ डटे। श्रावण सुदी ७ संवत् १६३२ का दिन भारतवर्षके इतिहासमें वीरताके लिये प्रसिद्ध रहेगा। जब राजपूतोंने मुगल सेनासे अतियुद्ध किया तो राणा प्रताप राजा मानसिंहको देखते हुए सलीमके सामने पहुंचे। हाथमें तीर कमान लिये और प्रसिद्ध घोड़े चेतक पर चढ़े हुए उन्होंने सलीमपर आक्रमण किया। महावत मारा गया। हौदा लोहेका था, इससे सलीम

हल्दीघाटका युद्ध

* ये सब बातें अबतक किसी न किसी रूपमें प्रचलित हैं। उदयपुरके राणा सोनेके पात्रोंके नीचे पत्ते रखकर भोजन करते हैं, परन्तु [illegible] हैं। वे [illegible] शय्याके नीचे रखते हैं।

बच गया किन्तु उसका भयभीत हाथी फिर वहाँ न ठहरा रहा । रणक्षेत्रसे भाग गया। बड़ा घोर संग्राम हुआ । प्रतापको सात आघात लगे । वे अपना छत्र धारण किये रहते थे इसलिये तत्काल पहिचाने जा सकते थे । वे तीन बार घेरे गये और बड़ी कठि-नतासे निकले । अन्तिमवार झाला ठाकुरने अपने स्वामीको बचानेके लिये छत्र छीन लिया और अपने प्राणोंकी आहुति दे दी। इस प्रकार प्रतापकीरक्षा हुई । मुग़ल तोपखाना बड़ा स्थिर था, राजपूत उससे युद्ध न कर सके । केवल आठ सहस्र पुरुष जीवित बचे । प्रताप चेतक पर चढ़कर बाहर निकले । चेतक पर्वत तथा नदियाँ कूदता जाता था । उसके पीछे दो मुग़ल अश्वारोही लगे हुए थे । चेतकके शरीरसे भी रक्त-पात हो रहा था । एक आरोही अति निकट आ पहुंचा । उसने पुकार कर कहा "ऐ नील घोड़ेका सवार हो ।" प्रतापने फिरकर देखा तो अपने भाई सक्तापर नज़र पड़ी । सक्ता आत्मकीय शत्रुताके कारण मुग़लोंसे जा मिला था, परन्तु भाईको एकाकी दौड़ते देखकर उसे प्रेम आ गया और वह प्रतापका पीछा करने वालोंको मारकर भाईसे जा मिला । दोनों भाई परस्पर मिले । चेतकने तत्काल गिर कर अपने प्राण त्याग दिये । उस स्थान पर चेतकका स्मारक बनाया गया जो अब भी वर्तमान है । वर्षाकाल आ गया, सलीम पीछे हटा । परन्तु वर्षाकालके व्यतीत हो जाने पर फिर आ उपस्थित हुआ । प्रतापने कोमलमीर और चोन्दके स्थानों पर युद्ध किया परन्तु उन्हें पीछे हटना पड़ा । शत्रु सेनाने चारों ओरसे प्रतापको घेर लिया किन्तु वे एक स्थानसे दूसरे स्थान पर जा पहुंचते थे । एक समय झपटकर उन्होंने फरीदखांकी सेनाको काट डाला । फिर दूसरा वर्षाकाल आया तो प्रतापको विश्राम मिला ।

इसी प्रकार वर्षों व्यतीत हो गये । प्रत्येक वर्ष प्रतापके साथी तथा युद्धकी सामग्री न्यून होने लगी । वनोंमें दौड़ते हुए उन्हें अपने बाल बच्चोंकी चिन्ता लगी रहती थी । अन्तको अकबरने भी उनके साहस और वीरताको मान लिया । खां खानाने तो यह लिख कर भेजा "संसारमें सब कुछ परिवर्तित हो जाता है । देश तथा धन चले जाते हैं किन्तु अच्छा नाम सदा स्थिर रहता है । पत्तो (प्रताप) ने धन और देश त्याग दिया किन्तु अपना सिर नहीं झुकाया । भारतवर्षके समस्त राजाओंमें केवल इसने अपनी जातिका मान स्थित रखा है ।"

एक समय प्रतापमें भी निर्बलता आ गयी । घटना केवल यह प्रकट करती है कि अन्तको राणा प्रताप भी तो मनुष्य ही थे । मुग़लसेना इस प्रकार पीछा कर रही थी कि पांच बार खाना पका हुआ छोड़ना पड़ा । एक दिन उनकी स्त्रीने घासकी बीजोंकी रोटियां पकायीं और एक एक सब बच्चोंको दी । बच्चोंने आधी खाली और आधी दूसरे समयके लिये रख छोड़ी । प्रताप लेटे हुए अपनी दशापर सोच रहे थे कि उन्होंने एक आर्तनाद सुना—उनकी सबसे छोटी बालिकाकी आधी रोटी बिल्ली छीन कर ले गयी थी । छोटे बच्चेके यह पाषाणहृदयको हिला देने वाले नादने उस वीरपुरुषको भी जिसने अपने सहस्रों सम्बन्धियोंको कटते मरते देखा था निराश कर दिया और उसने निराशाकी दशामें एक पत्र लिखा । अकबरको पत्र पाकर अत्यन्त

हुए। प्रतापने दीर्घ निश्वास लिया। सोलम्बरा ठाकुरने पूछा, "महाराजको क्या कष्ट है"? प्रतापने बड़े गंभीर भावसे कहा "क्या मेरे अनन्तर मेरा देश शत्रुओंके अधिकारमें चला जायगा? क्या इन सुन्दर कुटियोंके स्थानपर जो मुझे राजमन्दिरोंसे भी अधिक प्रिय हैं रमणीय प्रासाद खड़े होंगे? क्या राजपूत अपनी वीरता त्याग आलस्यशील तथा विषयासक्त हो जायेंगे? शोक! क्या राजपूती स्वतंत्रता धूलिमें मिल जावेगी?" यह सुनकर सबने प्रतिज्ञा की कि "हम कदापि ऐसा नहीं होने देंगे।" इस प्रकार आश्वासन पाकर प्रतापकी आत्माने शान्ति पूर्वक यह नश्वर शरीर त्याग दिया।

पाँचवा प्रकरण।

राणा प्रतापके पश्चात्।

संवत् १६५४ में राणा अमरसिंह सिंहासनपर बैठे। उनके पश्चात् अकबर आठ वर्ष तक राज्य करता रहा। उसने राणाको न छेड़ा। इस कालमें अमरसिंहने अपने राज्यमें बड़े बड़े परिवर्तन किये। परन्तु जैसा कि प्रताप को भय था, वे शीघ्र ही आरामासक्त हो गये और जब संवत् १६६६ में जहांगीरने मेवाड़को अधीन करनेका निश्चय किया तो उन्हें बड़ी व्याकुलता हुई। सालुम्बरा (सलूम्बर) के चन्दावत (चूंडावत) ठाकुरने प्रतापकी प्रतिज्ञा का स्मरण करके राजगृहमें प्रवेश किया और राणा "अमरा" को बाहुसे पकड़ कर उठाया कि उठो, आरूढ़ हो। राणा पहिले तो क्रुद्ध हुए परन्तु जब ठाकुर तलवार देखे तो विवश होकर घोड़ेपर सवार हो गये। घोड़ेपर चढ़ना था कि राजपूती रक्तने जोश मारा। राणाने सबसे क्षमा-याचना की और मोहन्पुराके अभिमुख हो बोले 'बढ़े चलो' देवरके स्थानपर शाही सेनासे युद्ध करके उसे पराजित किया। थोड़े कालके लिये संधि हो गयी। अगले वर्ष फिर एक संग्राम रनपुर (राणापुर) की भूमिपर हुआ जिसमें शाहीसेना सर्वथा नष्ट हो गयी।

राणा अमरसिंह

जहांगीरने चित्तौड़की गद्दीपर सगरको बिठाना चाहा। सात वर्षके उपरान्त उसने चित्तौड़ अपने भतीजेके अर्पणकर दिया और स्वयं लौट कर जहांगीरके पास चला गया। जहांगीरने उसे धिक्कारा तो उसने आत्मघात कर लिया।

इन पराजयोंसे दुःखित हो कर जहांगीर सेना लेकर स्वयं अजमेर पहुंचा। उसने अपने पुत्र परवेजको प्रतियुद्धके लिये भेजा। राणा पहिली विजयसे प्रसन्न होकर खमनोरके स्थान शाहीसेनासे जा भिड़े। शाहीसेना पराजित हुई और वह भाग कर अजमेर लौट आयी। प्रत्येक युद्ध राजपूतोंको निर्बल करता जाता था। उनके बड़े बड़े शूरवीर लड़ाईमें काम आये। युवराज खुर्रम (शाहजहां) ने बड़ी सेना सहित उदयपुरपर आक्रमण किया। राणाकी सेना अत्यल्प रह गयी थी इसलिये उन्हें संधिके लिये प्रार्थना करनी पड़ी, परन्तु उन्होंने मुगल बादशाहको कर देना स्वीकार न किया। सब ठाकुरोंको एकत्र करके उन्होंने अपने पुत्रको राजतिलक लगाया।

संवत् १६७८ में करणसिंह राणा हुए। राणाका भाई भीम मुगल सभामें रहने लगा। राजपूत शाहजहांके सहायकारी थे। जब शाहजहां अपने भ्राता परवेज का वध करके राजविद्रोही हो गया और जहांगीरने उसके विरुद्ध सेना भेजी तो शाहजहां दौड़ कर उदयपुरकी शरण आया। उसने सदा इनके व्यवहार तथा मित्रताको स्मरण रखा।

राणा करणसिंह

संवत् १६८५ में राणा जगतसिंह गद्दीपर बैठे। इसके थोड़े समयके उपरान्त जहांगीर मर गया। शाहजहां दक्षिणसे उदयपुर आया और वहां पर सबसे पूर्व बादशाह स्वीकार किया गया। राणा जगतसिंहने जनताके लाभके लिये बहुतसे भवनादि बनवाये ।

जगतसिंह

संवत् १७११ में राणा राजसिंह राजसिंहासनपर बैठे। ये बड़े वीर पुरुष थे। इनके अतिरिक्त उस समय जयपुरके राजा जयसिंह और मारवाड़के राजा जसवन्तसिंह भी अतिशय वीर पुरुष थे।

राजसिंह

पांच वर्ष अनंतर जब शाहजहां अस्वस्थ हुआ तो उसने दाराशिकोहको उत्तराधिकारी बनाया। इसपर उसके तीनों पुत्र सिंहासनपर अधिकार करनेके लिये उद्यत हो गये। समस्त राजपूतोंकी सहानुभूति दाराशिकोहके साथ थी।

राजा जयसिंह बंगालमें शुजासे लड़नेके लिये भेजे गये और जसवन्तसिंह औरंगज़ेबके विरुद्ध दक्षिण भेजे गये। औरंगज़ेब बहुत बलवान् था इसलिये जसवन्तसिंह राजपूतोंकी तथा शाही सेना लेकर औरंगज़ेबकी ओर बढ़े, फतहाबादके स्थान पर औरंगज़ेब भी अपनी सेना लिये आ पहुंचा। जसवन्तसिंहने विलम्ब करनेमें बड़ा प्रमाद किया। मुराद कुछ सेना सहित औरंगज़ेबसे आ मिला, उधर औरंगज़ेबने सारी मुसलमान सेनाको अपनी ओर कर लिया। युद्धके समय निश्चित मुसलमान सेना औरंगज़ेबसे जा मिली। जसवन्तसिंहके पास केवल तीस सहस्र राजपूत रह गये। राजपूत बड़ी वीरतासे लड़े और पन्द्रह सहस्र रणक्षेत्रमें काम आये।

जोधपुरके राजा जसवन्तसिंह

जसवन्तसिंह जब लौटकर जोधपुर पहुंचे तो रानीने द्वार बन्द कर दिये क्योंकि वे रणभूमिसे भाग कर गये थे। औरंगज़ेबने जसवन्तसिंहको कहला भेजा कि आपका दोष क्षमा किया गया, अब आप शुजाके विरुद्ध मेरे साथ मिल जायं। जसवन्तसिंहने यह बात शुजाको बतला दी और दाराशिकोहकी सम्मतिसे अपने राजपूत लेकर औरंगज़ेबकी ओर पहुंचे। इधर दाराशिकोह विलम्ब करता रहा। औरंगज़ेब इतनेमें शुजाको पराजित कर दाराशिकोहकी ओर बढ़ा। उसने जसवन्तसिंहको क्षमाका पत्र लिखकर सर्वथा पृथक् रखना चाहा। यदि दाराशिकोहमें बल होता तो वह उस समय औरंगज़ेबको दबा लेता परन्तु दुर्भाग्यवश उसमें यह गुण न थे इसलिये औरंगज़ेबने सिंहासन पर अधिकार कर लिया। उसने जसवन्तसिंहको दक्षिणमें शिवाजीके विरुद्ध भेजा। जसवन्तसिंहने शिवाजीसे मिलकर शाइस्तखांका वध करवाया। औरंगज़ेबने उन्हें बुलाकर राजा जयसिंह जयपुराधीशको उधर भेजा।

जयसिंह शिवाजीसे मित्रता करके उन्हें दिल्ली ले आये, परन्तु जब औरंगज़ेब ने अतिथिके विपरीत करना चाहा तो जयसिंहने शिवाजीको निकल भागनेमें सहायता दी। जयसिंह बड़े गर्वसे कहते थे 'मेरे दोनों हाथोंमें दो राज हैं, एक हाथमें महाराष्ट्रका राज्य है दूसरा मुगल राज्य, मैं जब चाहूं दोनोंको तोड़ सकता हूं।' औरंगज़ेबने इन बातोंसे रुष्ट कर इन्हें विष दिलवा कर मरवा डाला।

जयपुरके राजा जयसिंह

इधर जसवन्तसिंह पर और किसी प्रकार वश न देखकर बादशाहने उन्हें अफगानोंके विरुद्ध काबुल भेजा। जसवन्त सिंह सिंधके मार्गमें आये, रानी और बड़े पुत्र पृथ्वीसिंहको दिल्ली दरबारमें छोड़ कर अपने राजपूतोंको साथ ले काबुल पहुंचे। एक दिन औरंगजेबने पृथ्वी सिंहके दोनों हाथ पकड़ कर कहा, "राठौर! तुम अपने पिताके सपूत हो सुनते आते हो, कहो अब क्या कर सकते हो!" पृथ्वीसिंहने उत्तर दिया "यदि बादशाह किसी मनुष्य पर अपना हाथ रखें तो उसकी सब आशायें पूर्ण हो जाती हैं। मेरे दोनों हाथ आपने पकड़ लिये हैं, मैं ऐसा समझता हूं कि मैं संसारको जीत लूंगा।" औरंगजेब अति प्रसन्न हुआ और उसने पारितोषिकमें एक वस्त्र दिया। भीतरसे जाना कि यह तो एक और जसवन्तसिंह है। वस्त्र धारण करते ही पृथ्वीसिंह ज्वरसे पीड़ित हुआ और बड़ी पीड़ा एवं कष्टसे उसने प्राण त्याग दिये। यह दुःखदायी समाचार सुननेके उपरान्त जसवन्तसिंहके दो और पुत्र मृत्युको प्राप्त हुए। इस दुर्घटनासे संवत् १७३७ में जसवन्त सिंह स्वयं इस संसारसे प्रस्थान कर गये।

जब तक यह राजपूत जीवित रहा औरंगजेबको कभी भी सुखकी निद्रा प्राप्त नहीं हुई। इस प्रकारकी क्रियाओं तथा कुचेष्टाओंसे औरंगजेब अपने शत्रुओंसे मुक्ति प्राप्त किया करता था।

जसवन्तसिंहकी मृत्युके पश्चात् उनका पुत्र अजितसिंह उत्पन्न हुआ। अब रानी अपने राजपूतों सहित गृह जानेको उद्यत हुई। जब दिल्ली पहुंची तो औरंगजेबने कहा बालकको दरबारमें छोड़ जाओ और राजपूतोंसे कहा कि यदि तुम ऐसा करोगे तो मारवाड़ तुम्हें बांट दिया जायेगा। वे नेत्र लाल करके दरबारसे निकल आये। उनके वासस्थानके इर्द गिर्द राजरक्षक खड़े हो गये। एक मिठाईके टोकरेमें उन्होंने अजितसिंहको वहांसे निकलवा दिया और स्वयं मरने मारने पर कटिबद्ध हो गये।

उन राजपूतोंमें एक दुर्गादास राठौर था। वीर पुरुषोंका यह समूह तीरकमान लेकर मुगलसेनापर टूट पड़ा। समस्त स्त्रियोंने मकानके अन्दर बारूद भर कर अग्नि लगा दी और मनुष्योंने दिल्लीके बाजारोंको मुगलोंके रक्तपातसे लोहित वर्ण कर दिया। मास श्रावण संवत् १७३६ इस वीरताके लिये राजपूत इतिहासमें सदा स्मरण रहेगा। बालक अजितको एक मुसलमान बचा कर बाहर ले आया जहां दुर्गादास और कतिपय सरदार जो बच गये थे उसे आ मिले। उन्होंने आबूकी शरण ली। यद्यपि जोधपुरमें कई झगड़े हुए परन्तु अजितके नाम पर सब राठौर एकत्र हो गये और वह गद्दीपर बिठा दिया गया।

दुर्गादास राठौर

इसपर औरंगजेबने सेना लेकर मारवाड़पर आक्रमण किया। राजधानीको लूटा, मन्दिरोंको तोड़ा, उनके स्थान मसजिदें बनवायी गयीं। दुर्गादासने अजितसिंहको राणा राजसिंहकी रक्षामें भेज दिया। मेवाड़ और मारवाड़ अपने शत्रुसे प्रतियुद्ध करनेके लिये मिल गये। राणा राजसिंहसे औरंगजेब बहुत जला हुआ था। औरंगजेबने रूप नगरकी राजपुत्री चन्चलकुमारीको विवाहमें लेनेके लिये कुछ सेना

भेजी । इस राजपूत देवीने राणा राजसिंहको एक ब्राह्मण द्वारा पत्र भेजा कि क्या राजहंसिनी एक गिद्धके साथ विवाही जायगी ? यदि आप मेरी रक्षा न करेंगे तो मैं आत्महत्या कर लूंगी। इस पर राणा सेना लेकर पहुंच गये। उन्होंने राजसेनाको घेर कर उसका वध कर डाला और फिर राजकन्याको निकाल कर बाहर ले आये। जब औरंगजेबने आर्योंपर कर लगाया तो राणाराजसिंहने उसे निम्नलिखित पत्र लिखा—

राणा राजसिंहका पत्र

"यह बात सर्वथा स्पष्ट है कि मैं शासक तथा निर्धन प्रजाका हितैषी हूं। इसी हार्दिक परोपकारिताके विश्वासपर ही प्रार्थना करता हूं कि आप मेरे इस लेख को दत्तचित्त होकर पढ़ेंगे, और जिन बातोंकी ओर आपका ध्यान आकर्षित किया गया है उनका पूरा विचार रखेंगे, क्योंकि यह मानव-जातिके हितके लिये है। मुझे विदित हुआ है कि मुझ जैसे हितैषीके शासनको नष्ट करनेके लिये आपने अगाध रुपया नष्ट किया है और इस बहानेसे आपने रुपया एकत्र करनेका एक नया साधन निकाला है और आर्योंपर कर लगाया है। यह ऐसा मार्ग है जिसपर चलने वालेके लिये केवल नाशविनाश है। आपके पूर्वजोंने इस मार्गको भयानक समझ कर इसको सर्वथा त्याग दिया था। कठोर नीतिसे कदापि उन्होंने यह सफलता प्राप्त नहीं की। साधुशीलता तथा सहयोगने उनके लिये वे बातें भी सम्भव कर दीं जो आज तक असम्भव समझी जाती थीं। उन्होंने आर्यावर्तके उन दुर्जेय दुर्गोंपर विजय प्राप्त की जिनको विजित करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था।

महाराज ! आपके शासनकालमें आपका अधिकार बहुतसे स्थानोंसे उठ गया है, और क्योंकि अभी क्रूरता तथा दुष्टता जारी ही है अतएव निःसन्देह और स्थान भी हाथसे निकल जावेंगे, आपकी प्रजा नाशको प्राप्त हो रही है, निर्धनताने वास कर लिया है, देश निर्जन होता जा रहा है, दुर्भिक्षोंसे लोग पीड़ित हैं, जब बादशाहों को ही धनका दुःख हो तो प्रजाका क्या कहना है ? आपके राज्यमें आर्यों, मुसलमानों तथा सैनिकोंकी भी बड़ी दुर्दशा हो रही है और वे अत्यन्त व्याकुल हैं। आर्योंको तो भोजनका भी कष्ट है और वे उपवास करते हैं। अपनी दुर्दशापर रक्तरान कर दोनों हाथोंसे सिर पीटते हैं।

जो बादशाह ऐसी दुरवस्थाग्रस्त प्रजापर एक और भारी कर लगा दे उस-राज्यको स्थान कहां ? पूर्वसे पश्चिमतक आपकी दुष्टता और पापकी कथायें सुनायी देती हैं। प्रत्येक मनुष्य यही कहता है बादशाहने द्वेषसे ब्राह्मणों, संन्यासियों और योगियों पर बलात् कर लगाया है, जो अत्यन्त कठोरतासे वसूल किया जाता है। क्या आप तैमूरवंशके मानको अपनी राजशक्तिके घमण्डमें अवमर्दित करनेके लिये उद्यत हैं ? यदि पवित्र कुरानपर आपका विश्वास है तो वहां भी एक दृष्टि डाल लें। उसमें परमात्माने अपने आपको *रब्ब-उल-मुसलमीन नहीं बल्कि †रब्ब-उल-आलमीन कहा है। उसके समीप आर्य तथा मुसलमान दोनों तुल्य हैं। रंग

* मुसलमानोंका परमात्मा। † संसारका परमात्मा।

तथा स्वरका अन्तर केवल प्रकृतिके गुण हैं इनमें अधिक कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं। परमात्मा सबका एक है। मसजिदोंमें जिसके नाम बलिदान दिया जाता है, मन्दिरोंमें उसीके नामपर घण्टे तथा घड़ियाल बजते हैं। दूसरे धर्मोंमें हस्तक्षेप करना ईश्वरेच्छाके सर्वथा विरुद्ध है। जो व्यक्ति ऐसा करता है वह दूसरे शब्दोंमें ईश्वरेच्छाके प्रतिकूल कार्य करता है। अन्तमें मैं आपको बता देना चाहता हूं कि आपका आर्योंपर कर लगाना अत्यन्त दुष्ट, मनुष्यत्वसे विपरीत तथा बुद्धिशून्य बात है।

यदि आपका ध्यान दूसरोंके धर्मनियमोंको पादाक्रान्त करनेका ही विचार है और आप राज्य तथा देशके पक्षमें कोई विचार सुननेके लिये भी उद्यत नहीं तो मनुष्यत्व यह है कि पहिले रामसिंहसे कर प्राप्त करें जिसे आर्य अपना पेशवा समझते हैं। तत्पश्चात् अपने माधीन सेवक पत्र-लेखकसे प्राप्त करें। हम सर्वकाल सेवा करनेके लिये उद्यत हैं। मक्खियों तथा चींटियोंके समान छोटासा जीवन व्यतीत करनेवाले निर्धनोंको दुःखित करना कौनसी शूरवीरता है! आश्चर्यकी बात है कि आज तक आपको आपके मन्त्रियों तथा उपदेशकोंने भी कोई बुद्धिमत्ताकी बात नहीं सिखलायी।

आपका सेवक,
राजसिंह।"

मेवाड़ तथा मारवाड़के राजपूत शाहीसेनासे युद्ध करनेके लिये तय्यार हो गये। शाहीसेनाके सेनापति तहव्वरखां और युवराज अकबर थे। मेवाड़की सेना राणाके पुत्र भीम, और मारवाड़की सेना दुर्गादासके अधीन थी।

१४ आषाढ़ संवत् १७३७ को नाडोलके स्थानपर घोर संग्राम हुआ जिसमें भीम मारा गया। दुर्गादासकी वीरता देखकर राजपुत्र अकबर चकित हुआ। उसने अपने सेनापतिसे कहा कि इन लोगोंके विपरीत युद्ध करना जो अपने देश तथा जातिके लिये प्राण त्याग रहे हैं, पाप है। उसने दुर्गादासको दूत भेजा, यद्यपि अनेक ठाकुर विरुद्ध थे परन्तु दुर्गादास राजपुत्रसे जा मिला। परस्पर संधि हो गयी।

[illegible]

युवराज अकबर दिल्ली सिंहासनपर अधिकार प्राप्त करनेके लिये उद्यत हो गया। जब औरंगजेबने यह समाचार अजमेरमें सुना तो वह बहुत व्याकुल हुआ और शोकमें अपनी दाढ़ी उखाड़ने लगा। अन्तको उसे एक उपाय सूझा जिससे उसने सारे खेलको तोड़ डाला। युवराज अकबर तथा विश्वासी राजपूतोंकी सहायतासे अजमेरकी ओर बढ़े। युवराज सब कुछ अपने सेनापतिके अर्पण करके स्वयं विषयासक्त हो गया। औरंगजेबने लोभ देकर तहव्वरखांको अपनी ओर कर लिया। तहव्वरखांने एक पत्र दुर्गादासको लिख दिया कि मैं दोनों समूहोंके मध्यमें पुलके समान था। पिता और पुत्र एक हो गये हैं और पुल नहीं रहा। कुछ कालके बाद औरंगजेबने प्रतिज्ञाओंको भंग करके उसे मरवा डाला। यह समाचार सुनते ही राजपूत लौटे। दूसरे दिन उन्हें सब खबर विदित हो गया। दुर्गादास अपने भाइयोंको साथ लेकर अकबरके पास पहुंचा। उसने वहां वीरतासे स्वयं उसकी रक्षा कर उसे दक्षिण तक पहुंचा दिया। इधर औरंगजेबने दुराचार तथा संग्रामोंके लिये

रखा। दुर्गादासके नामसे वह सदा जलता रहा। शिवाजीकी अपेक्षा वह दुर्गादास-से अधिक घृणा करता था। दुर्गादास उस कालका बड़ा बुद्धिमान् तथा वीर पुरुष था। मारवाड़का राज्य केवल उसके साहस और बुद्धिमत्तासे बचा रहा। दक्षिणसे लौटकर उसने अजमेरके शासक सेफीखांको पराजित किया और निरंतर राजसेनासे युद्ध करता रहा। राजपूत भी प्रतिकार लेनेके लिये मसजिदोंको दूषित करने और कुरानको जलाते रहे।

मराठोंके मध्यमें युवराज अकबरकी विद्यमानता औरंगजेबके लिये बड़े भारी भयका कारण थी। इस लिये उसने राजपूतोंके साथ संवत् १७३८ में संधि कर ली ताकि वह अपनी समूची सेना स्वयं दक्षिणमें ले आवे।

मुगल राज्यका पतन

औरंगजेबके मरते ही राजपूताना स्वतंत्र हो गया। राजपूतोंने औरंगजेबके साथ इतना युद्ध करके मराठोंको दक्षिणमें अपना बल दृढ़ करनेका अवसर दिया। इस कालमें औरंगजेबसे दुःखित होकर जिन आर्योंने चेष्टायें की थीं उनमें आर्यावर्तके क्षत्रियों—जसवन्तसिंह, राजसिंह, दुर्गादास और जयसिंह—ने अपना कर्तव्य पालन किया। औरंगजेबकी मृत्युके उपरान्त जो मुगल बादशाह दिल्लीकी गद्दीपर विराजमान हुए वे नाममात्रके बादशाह थे। औरंगजेबने जितना बड़ा भवन बनाया उसकी नींव उतनी दृढ़ बनानेकी चेष्टा न की, अतः उसके जीवनकालमें ही उसका गिरना आरम्भ हो गया और उसके मरनेपर सर्वथा गिर गया। उसके अयोग्य उत्तराधिकारी उसे किञ्चिन्मात्र भी न सम्भाल सके।

छठवाँ प्रकरण।

मुगल-साम्राज्यकी अवनति।

औरंगज़ेबके अनन्तर बहादुरशाह गद्दीपर बैठा। संवत् १७६७ में वह पंजाबमें सिक्खोंसे लड़ने गया और संवत् १७६९ में लाहौरमें मर गया। उसका पुत्र जहांदार शाह सिंहासनपर बैठा परन्तु उसका अमात्य ज़ुल्फ़िकार कार्य्यों राज्य करता था। उसका भतीजा फ़र्रुख़सियर द्रोही हो गया और जहांदारशाह और मन्त्रीका वध करके गद्दीपर बैठ गया। फ़र्रुख़सियरके सहायक दो सैय्यद भाई हुसैनअली और अब्दुल्ला थे। उसके राज्यकी बड़ी घटना सिक्खोंके विरुद्ध युद्ध और उनका नाश है।

औरंगज़ेबके उत्तर-धिकारी

सैय्यदोंने संवत् १७७६ में फ़र्रुख़सियरको सिंहासनसे पदच्युत करके मरवा डाला और एक एक करके तीन पुरुषोंको सिंहासनपर बिठाया। ये कुछ मासमें इन्तक़ाल कर गये और अन्तको संवत् १७७७ में मुहम्मदशाह गद्दीपर बैठा। उसके राज्यमें दोनों सैय्यद भाइयोंका वध हुआ।

निज़ामुल्मुल्कने हैदराबादमें और मंत्रीने अवधमें अपने पृथक् पृथक् राज्य स्थापित किये। मराठोंने मालवा और उड़ीसापर अधिकार कर लिया और बंगदेशसे चौथ लेनी आरम्भ की। फाल्गुन १७९५ में नादिरशाहने दिल्ली पर आक्रमण किया और बड़ी लूट-मार की जिसमें वह तख़्त-ताऊस आदि लूट कर साथ ले गया। अहमदशाह अब्दालीने संवत् १८०४ में पहिला आक्रमण किया। सरहिन्दमें उसकी पराजय हुई। अगले वर्ष मुहम्मदशाह मर गया, और उसका पुत्र अहमदशाह राजसिंहासनपर बैठा। उसके राज्यमें दो बार रोहेलोंने आक्रमण किया। दूसरी बार मराठोंकी सहायताने वह आक्रमण रोका गया। संवत् १८११ में अहमदशाह अब्दालीने दूसरा आक्रमण किया और पंजाबको अपने राज्यमें शामिल कर लिया। संवत् १८११ में अहमदशाहको उतार कर आलमगीर सिंहासनपर बैठ गया। इसके दो वर्ष पश्चात् अहमदशाह अब्दालीने तीसरा आक्रमण दिल्ली पर करके वहां बड़ी लूटमार की। तत्पश्चात् मराठोंने उत्तर भारत विजित कर दिल्ली-पर अधिकार कर लिया। संवत् १८१७ में अहमदशाहने चौथा आक्रमण किया और पानीपतकी भूमिमें मराठोंसे बड़ा घोर युद्ध हुआ। वज़ीर ग़ाज़ीउद्दीनने आलमगीरको मरवा कर शाहआलमको गद्दीपर बिठाया। शाहआलम देश निकालेकी दशामें प्रयागमें था कि बक्सरके युद्धके उपरान्त उसने बंगाल, बिहार, उड़ीसाकी दीवानी अंग्रेज़ोंको दी।

नादिरशाहके आक्रमण

संवत् १८२८ में वह मराठोंके हाथमें पड़ गया जिन्होंने उसे दिल्ली बुला लिया। संवत् १८६० तक वह उनके पास बन्दीके समान रहा। इस समय मराठों-

का शासन था। इसके पश्चात् वह तीन वर्ष पर्यन्त अंग्रेज़ोंके हाथमें रहा। इस काल में अंग्रेज़ोंने दिल्लीको जीत लिया।

संवत् १८६३ से १८९४ तक अकबर सानी नाम मात्रका बादशाह रहा और तदनन्तर संवत् १८९४ से १९१४ तक मुहम्मद बहादुरशाह ज़फ़र बादशाह हुआ। ग़दरके उपरान्त यह रंगूनमें निर्वासित कर दिया गया। पाँच वर्ष पश्चात् उसने वहीं प्राण त्याग दिये। उसके दो पुत्र और एक पौत्र गोलीसे उड़ा दिये गये। इस प्रकार बाबरकुलकी समाप्ति हुई।

हम पहिले कह आये हैं कि पृथ्वीराजके कालसे लेकर औरंगज़ेबकी मृत्यु तक आर्य निज स्वतन्त्रताके लिये निरन्तर युद्ध करते रहे। उस समय प्रायः अपनी रक्षाके लिये ही युद्ध होता रहा। आर्य राजाओंमें अभी आक्रमण करनेकी शक्ति न थी। हम आगे चल कर वर्णन करेंगे कि इन आर्योंमें दो शक्तियाँ ऐसी उत्पन्न हुईं जिन्होंने आक्रमण करके देशमें पुनः अपना राज्य स्थापित कर लिया। इसमें सन्देह नहीं कि यदि उस समय एक तीसरी शक्ति भी उत्पन्न न होगयी होती जिसका वर्णन उनके बाद आयगा तो आर्यावर्त्त पुनः आर्योंके अधिकारमें आ गया होता।

राज्यकी निर्बलताका सबसे बड़ा कारण उसका अव्यवस्थित होना है। वह राज्य अत्यन्त बलहीन तथा निरर्थक होता है जिसकी रचना किसी विशेष नियम पर न हो और जहाँ लोकसम्मतिका आदर न हो। राज्यमें इस नियमका भी होना आवश्यक है कि बादशाहकी मृत्युके पश्चात् प्रथम उत्तराधिकारी किसे होना चाहिये। मुग़ल इत्यादि वंशोंका आधिपत्य वास्तवमें राज्य नहीं कहा जा सकता। वह एक प्रकारका निष्ठुर-शासन मात्र था। जब बादशाहकी मृत्यु हो जाती थी तो जिसकी इच्छा होती थी वही उत्तराधिकारी बन बैठता था। हम पढ़ते हैं कि जब कोई एक व्यक्ति राजगद्दीका स्वामी हो जाता था तो प्रायः वह अपने सम्बन्धियोंका वध करा देता था ता कि कोई दूसरा अधिकारी उत्पन्न न हो। इस प्रकारका निष्ठुर शासन कभी स्थायी नहीं हो सकता। मुग़ल साम्राज्यमें यह दोष पाया जाता था। पठानोंके निकृष्ट राज्यमें भी यह दोष था। जब ऐसे निर्बल राज्यके प्रति एक दृढ़ राज्यव्यवस्था वाला राज्य विद्यमान हो तो वह राज्य उसकी छायामें दब जाता है।

यद्यपि यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि औरंगज़ेबने अपना राज्य बहुत बढ़ा लिया था परन्तु वास्तवमें उसके सिंहासनपर पदारूढ़ होते ही मुग़ल-साम्राज्यकी अवनति होने लगी। उसकी नीतिमें ही इसके पतनका बीज विद्यमान था। उसने अपने राज्यको दृढ़ करने तथा उसके विस्तारकी चेष्टामें ही उसकी जड़ खोद डाली। एक ओर तो राज्य दृढ़ करनेके लिये वह उसे प्रबल मुसल्मानी राज्य बनाना चाहता था और दूसरी ओर उसे दक्षिण तक विस्तृत करनेके लिये उसे मुसल्मान रियासतोंका नष्ट करनेकी आवश्यकता पड़ी। दोनोंका परिणाम स्पष्ट विपरीत हुआ। आर्योंके विरुद्ध बल प्रयोग करना इसके लिये आवश्यक

राज्यकी निर्बलताका मूल

था क्योंकि उसने दाराशिकोहके विरुद्ध यह कहा था कि इसके बादशाह बननेमें धर्म-का भय था। राजा जसवन्तसिंह जैसे आर्य राजाओंने दाराकी सहायता की थी, औरंगजेबने अपनी नीतिसे राजाके साथ मित्रता कर ली और उन्हें काबुल भेज कर मरवा डाला। उसने आर्योंपर कर लगाया जिसके कारण "सतनामी" समुदायका अभिद्रोह हुआ। शाहीसेनाको पीछे हटना पड़ा। गुरु तेगबहादुर और सम्भाजीकी बलि होनेपर पंजाबके सिक्खों और महाराष्ट्रके आर्योंमें नया जीवन उत्पन्न हो गया।

दक्षिणके मुसलमान राज्योंका विनाश

औरंगजेबकी दूसरी बड़ी कामना यह थी कि समस्त देशमें मेरा राज्य स्थापित हो। इसके लिये उसने वर्षोंपर्यन्त गोलकुण्डा तथा बीजापुरके मुसलमानी राज्यपर आक्रमण किये। बादशाह स्वयं सेनापति होता था क्योंकि उसे अपने सरदारोंपर विश्वास न था। गोलकुण्डाका शासक अबुलहसन तानाशाह बड़ा भद्र पुरुष था। औरंगजेबने उसे छेड़नेके लिये अपना एक सरदार भेजा ताकि वह उससे धनोपार्जन करे। तानाशाहने बहुत कुछ दे दिया। बिना किसी कारणके शाहीसेनाने वहां घेरा डाल दिया। कोई सरदार बादशाहसे प्रसन्न न था। उन सबपर भीरुता तथा अयोग्यता आदि दोष बादशाहने लगा कर उन्हें पदच्युत कर दिया। कोई सच्चे मनसे लड़ना न चाहता था। वर्षोंपर्यन्त संग्राम होता रहा। बादशाह अखबारनवीसों (समाचार-लेखकों) पर विश्वास करता था। एक रात्रिको राजसेना दुर्गपर चढ़ी, उपरसे आक्रमण हुआ, सारे सैनिक मारे गये। बादशाह विजयका आनन्द मना रहा था कि समाचार मिला कि सब कार्य उलट गया। अखबार-नवीसोंने इस रहस्यका वृत्तान्त बता कर बादशाहको निश्चय करा दिया कि उधर एक कुत्ता जागता था, उसीने दुर्गकी सेनाको जगा दिया।

एक दिन वर्षा बहुत हुई। दुर्गकी सेना बाहर निकली, और औरंगजेबके कई सरदारोंको पकड़ ले गयी। अबुलहसनने उनको दुर्गमें रखा अनाजका ढेर दिखाया और यह कहा कि मैं क्षतिपूर्तिके साथ साथ आप लोगोंको अनाज भी दूंगा, यदि आप लोग मुझे ही यहांका शासक स्वीकार कर वापस लौट जायं। उसने बादशाहको पत्र लिखा मैं सब कुछ करनेको उद्यत हूं, यह उपहार अंगीकार कीजिये। मुझे ही यहांका शासक मानिये। यदि आप स्वीकार न करें तो सुना है कि आपके पास अनाजकी न्यूनता है, यही स्वीकार कर लें। बादशाह चुप हो रहे। लोग कहते थे कि अनाज तो अंगीकार कर लेते ताकि भूखों न मरते।*

इस प्रकार कई चेष्टायें की गयीं कुछ सफलता न हुई। अन्तको औरंगजेबके एक कुटिल उपायसे तानाशाहके सरदार उनके साथ मिल गये और उन्होंने शाहीसेना-का प्रवेश करा दिया। तानाशाह साहस पूर्वक बैठा था, समय हो गया था, उसने आज्ञा दी भोजन लाओ। विजेताओंने प्रश्न किया "क्या यह भोजनका समय है?"

---

* [illegible] औरंगजेबने यह उत्तर दिया "अबुलहसनको हाथ जोड़ [illegible] मेरे सामने [illegible], अन्यथा उसे बंधे हुए आना पड़ेगा। तब मैं देखूंगा कि उसके साथ [illegible] (हिस्टोरी [illegible] इंडिया पृ०३६८)—सम्पादक।

उत्तर मिला, हां, इसी समय भोजन किया करता हूं। फिर प्रश्न किया गया, क्या इस दुःखमें भोजन करनेका विचार है? उसने बड़ी गंभीरतासे उत्तर दिया "यह सब परमात्माका दिया है। यह जीवन तपस्वियोंके सदृश व्यतीत किया, राज्य भी देख लिया, आगे जो परमात्मा दिखायगा, आनन्द पूर्वक देख लूंगा।"

मुगलसेनाकी अधोगति

बाबरकी सेना जिसने दिल्लीका राज्य लिया बड़ी प्रबल थी। उसकी तुलनामें औरंगज़ेबकी सेना कुछ ही युद्धोंमें घोर अधोगतिको प्राप्त हो गयी। छोटेसे छोटे सेनापतिके साथ सेना ऐसी प्रतीत होती थी मानो कोई बारात हो। युवराज तथा बादशाहकी सेनाका तो कहना ही क्या! बेगम और पालकियां साथ रहती थीं। सबसे प्रथम हाथी, उसके पीछे बाजे, नक्कारे आदि—हाथी हीरोंसे सजे रहते, सूण्डोंमें सुवर्ण शृङ्खलायें, मोतीकी झोलें, सुवर्णकी ढालें, रेशमी रस्से बन्धे रहते और ऊपर सजे हुए महावत झूमते झामते चले आते थे। उनके पीछे इसी प्रकारकी सजी हुई सहस्रों पालकियां, उनके पीछे अरबी, रूमी, तातारी, फरंगी घोड़े, फिर जलवाइकोंका समूह रहता था जोकि अरकोंसे छिड़काव करते, एवं भूमिको साफ करते जाते थे। उनके पीछे सिंह तथा चीतोंकी गाड़ियां जिनके साथ सहस्रों आखेटिक सजे हुए आ रहे थे। तत्पश्चात् युवराज तथा सेनापति आदि चलते थे। प्रातः से सांझ तक इस "बारात" की समाप्ति न होती थी। प्रातः से तय्यारी होती थी और दिन भरमें दो चार मील प्रस्थान करना होता था, फिर सब लोग ठहर जाते थे।

यह सेना थी जिसे साथ लेकर औरंगज़ेब बीस वर्ष पर्यन्त मराठोंको अधीन करना चाहता था। मराठा-सैनिक जिस ओरसे आक्रमण करते थे सेनाको उधर चलनेकी आज्ञा होती थी, किन्तु मराठोंका कुछ पता न लगता था। इतनेमें वे सेना-की दूसरी ओरसे आक्रमण करते थे। औरंगज़ेबके निजी सैनिक उपसे उपहास करते थे और मराठोंको देख कर प्रसन्न होते थे। अन्तको औरंगज़ेबने निर्णय किया कि मराठों-के सब दुर्ग नष्ट कर दिये जायं। पांच वर्षपर्यन्त उसने यत्न किया। परिणाम यह हुआ कि मराठासेना दुर्गोंसे निकल निकल कर मैदानोंमें फैल गयी और उसने खान देश, बरार, गुजरातपर अधिकार कर लिया। अपनी मृत्युसे दो वर्ष पूर्व सेनाको अस्तव्यस्त देख कर औरंगज़ेबने मराठोंसे सन्धि करनेका विचार किया। उसने साहूसे मराठोंको पत्र लिखवाया कि वे युद्ध त्याग दें। इस निराशाकी दशामें उसने अहमद-नगरमें प्राण त्याग दिये।

औरंगज़ेबके पुत्र बहादुरशाहने साहूको उसके पितामह शिवाजीकी जागीर दे दी और स्वतन्त्र कर दिया। बहादुरशाह पांच वर्ष अनन्तर लाहौरमें मृत्युको प्राप्त हुआ। फिर फर्रुखसियर सिंहासनपर बैठा। उसके पीछे तीन लड़के एक एक करके गद्दीपर बैठे। वे सब शीघ्र ही कालकवलित हुए, अन्तको मुहम्मदशाह राजगद्दीपर बैठा। उसके राज्य-कालमें नादिरशाहने दिल्लीपर आक्रमण किया और बड़ी लूटमार की। वह शाह-जहांका बनवाया तख्तताऊस अपने साथ ले गया। काबुल, पंजाब आदि मुगल साम्राज्यसे निकाल कर अपने साथ मिला लिये। यही नहीं बल्कि वह कोहनूर हीरा भी जो कि कौरवोंके समयसे हिन्दुस्तानके मुकुटमें लगा चला आता था अपने साथ ले गया। मुगल साम्राज्यका दीपक बुझके समान शान्त हो गया।

समय तीन बड़े आविष्कारोंने जो कि हरिवर्षके पादरी चीनसे ले गये उनकी बड़ी सहायता की। एक तो कुतुबनुमा (कम्पास) था जिसने समुद्रमें चलना अत्यन्त सरल कर दिया, दूसरा बारूद जिससे युद्धके अत्युत्तम अस्त्र बनाये गये, तीसरा मुद्रणकला जिसने पुस्तकोंको सुलभ बना दिया।

कालीकटमें भी पुर्तगीज व्यापारी मुसलमानोंसे सर्वदा युद्ध करते रहते थे। कालीकटके निर्बल राजाको उनका सम्भालना बड़ा कठिन था। वे अपने बलके विश्वासपर व्यापारको बढ़ाते गये। स्पेन और पुर्तगाल संसारमें सबसे अधिक फैल गये। यह आश्चर्यकी बात है कि जो जाति शताब्दियोंके उपरान्त दासावस्थासे जागी उसके अंदर इतना उत्साह उत्पन्न हो गया कि वह प्रत्येक बातमें अन्य जातियोंसे बढ़ गयी। उस कालमें हालैण्ड तथा इङ्गलैण्ड स्पेनके दास देश थे। उन दोनोंने स्पेनके व्यापारको बलात् लेनेके लिये बाहर देशोंमें जाकर उसका व्यापार हरण करना चाहा। स्पेनके पोतोंको लूटनेसे आङ्गल व्यापारियोंको भारतके धनका ज्ञान हुआ। अब आङ्गलस्थानके व्यापारियोंने कम्पनियां बनाकर भारतका मार्ग ढूंढना आरम्भ किया। अनेक पोत डूब गये किन्तु उन्होंने अपना संकल्प न त्यागा। कम्पनीके पश्चात् कम्पनी बनती गयी। जहांगीरके राज्यकालमें आङ्गल-व्यापारी भी भारतमें आ पहुंचे। इसके उपरान्त फ्रांसने भी अपने पोत भेजे और दोनों जातियोंने उत्तर भारतके तटपर अपने कारखाने स्थापित किये। एक आङ्गल वैद्य हैमिल्टनने शाहजहांकी पुत्रीकी चिकित्सा करके अपनी कम्पनीके लिये विशेष अधिकार प्राप्त किये। पश्चात् वैद्य बाटनने फररुखसैरकी चिकित्सा की और आत्मलाभ की कुछ भी चिन्ता न करके बंगालमें अपने व्यापारियोंका कर क्षमा करा लिया।

हरिवर्षका अन्य जातियां

कहा जाता है कि आङ्गल कम्पनीका भारतपर राजनीतिक अधिकार प्राप्त करनेका विचार न था। वे अपने व्यापारके मार्गसे जा रहे थे और उन्हें थोंही मार्गमें पड़ा हुआ शिकार मिल गया। यह कथन सर्वथा असत्य है। यह असम्भव था कि जो आङ्गल पुरुष या स्त्री अपने अपने देशोंमें थोड़ी थोड़ी सी भूमिके लिये इतने संग्राम कर चुके थे, वे एक रक्षाहीन, शासकोंसे शून्य, देशको देखकर उसपर दांत न गड़ाते, विशेषकर जब उन्होंने अपने नेत्रोंसे यह निरूपण कर लिया कि किस प्रकार साधारण पुरुष भी थोड़ेसे मनुष्य एकत्र कर राजा बन बैठते थे। अभी औरङ्गजेब जैसा बलवान् राजा दिल्लीमें राज्य करता था परन्तु उसे दक्षिणमें कार्यव्यग्र देखकर आङ्गल-व्यापारियोंको यह इच्छा हुई कि हम थोड़ीसी सेना भराकर बङ्गदेशपर अधिकार प्राप्त कर लें। इस प्रकार आङ्गल-स्थानसे पोत भेजे गये जिनमेंसे कई मार्गमें डूब गये, जो पहुंचे उन्हें कुछ सफलता न हुई। औरङ्गजेबने उन्हें बङ्गदेशसे निकल जानेकी आज्ञा दी। अन्तको सूरतके अंग्रेजोंने बादशाहसे विनयपूर्वक प्रार्थना की और उनका दोष क्षमा करवाया। यह कैसे सम्भव था कि वह कम्पनी पुनः अपने शुभ अवसरकी प्रतीक्षा न करती?

तृतीय खण्ड

न्याय सम्बन्ध

पहिला प्रकरण ।

मराठोंकी जागृति ।

मुगल-साम्राज्यके स्थानपर भारतवर्षमें कई राज्य स्थापित हो गये। दाक्षिणात्य मराठा और पंजाबमें सिक्ख—दो बड़ी शक्तियां थीं। इनके अतिरिक्त हैदराबादमें निज़ाम, अवधमें नवाब वज़ीर, बंगदेशमें सूबेदार बड़े शक्तिशाली दो शक्तियोंका उदय थे। इनमें इनमेंसे केवल दो साम्राज्योंका इतिहास लिखना क्यों उचित समझा? इसका कारण केवल यह है कि मराठा साम्राज्य और सिक्खराज्य हिन्दू जातिकी विशेष जागृतिके फल थे और निज़ाम, अवध और बंगदेशके राज्य केवल मुगल-साम्राज्यके पतनसे उद्भूत हुए थे। पहिली दो शक्तियोंने परिश्रम तथा त्यागसे मुगल-शासनको निर्बल किया था; दूसरोंने केवल उसे बलहीन पाकर लाभ उठा लिया। इनके अतिरिक्त मैसूरमें हैदरअलीने अपनी कार्य-चतुरतासे अपने आपको स्वयं राजाके स्थानपर स्थित कर लिया। यद्यपि हैदरअलीकी उन्नतिका संक्षिप्त वृत्तान्त लिखना अत्यन्त मनोरञ्जक तथा शिक्षाप्रद है तो भी भारतके इतिहास-से इसका अधिक सम्बंध नहीं क्योंकि उसकी उन्नतिके साथ यहांके देशी जीवनका कुछ भी सम्बंध न था। हैदरअलीने मैसूर-राज्यको हस्तगतकर भारतके इतिहासमें बहुत कुछ भाग लिया, इसका संक्षिप्त वर्णन यथास्थान आयगा। आंग्लजाति उन्नति करते करते जब एक राजनीतिक शक्तिके रूपमें परिणत हो गयी तो उसे भारतमें अपना राज्य स्थापित करनेके लिये केवल इन्हीं दो बड़ी शक्तियोंके साथ संग्राम करना पड़ा। बंगालपर अधिकार प्राप्त कर लेनेके अनन्तर ४० वर्ष पर्यन्त तो मराठोंके साथ उनका युद्ध चला। तत्पश्चात् उत्तर भारतपर अधिकार प्राप्त करनेके लिये सिक्खोंसे युद्ध करना पड़ा। इसलिये इस बातको स्पष्ट करनेकी कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती कि अंग्रेजोंके राजनीतिक क्षेत्रमें पद रखनेसे पूर्व देशका बड़ा भाग राष्ट्रके शासनमें आ चुका था और सौ वर्ष पर्यन्त जो युद्ध होते रहे वे केवल इस कारण कि यह आंग्लजाति भारतवर्षका राज्य प्राप्त करना चाहती थी, इसलिये नहीं, जैसा प्रायः कहा जाता है, कि भारतमें सदैव अव्यवस्था, त्रुटि तथा विद्रोह रहा है। इस समय भी राजपूताना और नेपालको कतिपय राजपूत रियासतोंको छोड़ कर जिन्होंने मुगल कालके बाद भारतके इतिहासमें बहुत कम भाग लिया है, बड़ी बड़ी रियासतें, यथा ग्वालियर, इन्दौर, बड़ोदा, कोल्हापुर, धार, देवास, पटियाला, नाभा, झीन्द और कपूरथला, मराठा तथा सिक्खराज्यकी सत्ताकी द्योतक हैं। एक निज़ामकी रियासत ऐसी है जो अंग्रेजोंके साथ मित्रता रखनेके कारण स्थिर बनी आती है, और दूसरी मैसूरकी रियासत है जिसे अंग्रेजोंने टीपूकी मृत्युके उपरान्त प्राचीन आर्य राजाके कुल-को अर्पित कर दिया।

इस दृष्टिसे भी केवल मराठा साम्राज्य तथा सिक्ख साम्राज्यके इतिहासमें ही जातिका वास्तविक इतिहास विद्यमान है। हम इन्हीं दोनोंका वृत्तान्त यहां-पर लिखेंगे।

जब मुसल्मान आक्रामक आर्यावर्तकी भिन्न भिन्न दिशाओंमें आक्रमण कर रहे थे उस समय समस्त देशमें धार्मिक जीवन उत्पन्न हो रहा था। वही धार्मिक तरंग महाराष्ट्रपर अपना प्रभाव डाल रही थी। मराठा साम्राज्य उसी धार्मिक तरंगसे उत्पन्न हुआ। यह बात शिवाजीके गुरु महात्मा रामदासके जीवनसे स्पष्ट हो जाती है।

रामदास सितारा जिलेके जम्बनामक एक ग्राममें संवत् १६६३में किसी ब्राह्मणके घर उत्पन्न हुए। १२ वर्षकी उम्रमें उनका विवाह निश्चित हुआ, उन्होंने गृहका त्याग ही कर दिया। उन्होंने १२ वर्ष पर्यन्त तप किया और शास्त्रोंका अध्ययन किया। २४ वर्षकी उम्रमें तीर्थयात्रा आरम्भ की। द्वारका, पुरी, रामेश्वर तक भ्रमण कर एक बार घर आकर माताके दर्शन किये और फिर प्रस्थान कर दिया। इस यात्रामें उन्होंने

शिवाजीके गुरु स्वामी रामदास

आर्योंकी करुणाजनक दशा देखी और उसके सुधारका भार अपने ऊपर लिया। उन्होंने यह अनुभव किया कि परमात्माकी यही इच्छा है कि मैं अपना जीवन देशको अर्पण करूं। उन्होंने लोगोंको इस विषयकी शिक्षा देनी प्रारम्भ की कि भारतका गतकाल कितना गौरवयुक्त था और आज वह किस अवस्थाको पहुंच गया है। उनके बहुत शिष्य हो गये। उनको उन्होंने महाराष्ट्र तथा अन्य स्थानोंमें भेज दिया। यात्रासे लौटकर वे शिवाजीसे मिले और उनपर उन्होंने प्रभाव डालना प्रारम्भ किया। शिवाजीके कथनानुसार उन्होंने उनके पास रहना भी स्वीकार कर लिया। वे बीस वर्ष पर्यन्त शिवाजीको शिक्षा देते रहे। वे जनतामें केवल राजनीतिक भावों-होको नहीं प्रत्युत उनके सामाजिक तथा धार्मिक भावोंको भी जगाते रहे।

यदि यह काम न किया जाता तो शिवाजी अकेले कुछ न कर सकते। शिवाजीको अपने काममें दूसरोंसे सहायताकी आवश्यकता थी। यदि वे तैयार न होते तो शिवाजीका काम अधूरा रह जाता।

स्वामी रामदासने महाराष्ट्रमें वह जातीय तरंग चलायी जिसने लोगोंमें आत्म-सम्मान तथा आत्मरक्षाके भावोंको जागृत किया। उनकी सफलताका अनुमान इसीसे हो सकता है कि जब मुग़ल सेनाओंने मैदानों और दुर्गोंपर अधिकार कर लिया और सम्भाजी और उसका पुत्र दिल्लीमें कैद थे उस समय एक भी मराठा ऐसा नहीं निकला जो अपने देशका द्रोही सिद्ध हुआ हो या शत्रुके साथ मिल गया हो। देशका प्रबन्ध ऐसा चलता रहा जैसे कोई असाधारण बात हुई ही नहीं।

"जो मराठे हैं उन सबोंको मिला दो, महाराष्ट्रीय धर्मकी नींव डालो। इस धर्मके लिये मरनेपर तत्पर रहो। धर्मके शत्रुओंको मारते जाओ। मरना तो है ही और मर भी रहे हो, इस प्रकार मरते मारते अपना देश शत्रुसे पुनः ले लो"। ये ही स्वामी रामदासके मुख्य उपदेश थे।

शिवाजीपर उनकी माता तथा रक्षक दादूजीको छोड़ कर रामदासका प्रभाव

सबसे अधिक पड़ा। उनमें मन्त्री लेनेके लिये शिवाजीके प्रायः आग्रहसे यह प्रमाणित होता है कि उन्होंने जो कार्य आरम्भ किया वह आत्मलाभके लिये न था परन्तु देश तथा समाज-सेवाके लिये था। शिवाजीका झण्डा रामदासकी सम्मतिके अनुसार गेरूये रंगका था और अभिवादन करनेकी विधि "जोहार" के स्थान "राम, राम" कहने की चलायी गयी। बड़े बड़े अधिकारोंके नाम संस्कृतमें कर दिये गये। शिवाजीने एक समय अपना समग्र राज्य रामदासको अर्पण कर दिया। रामदासने उसे लौटा दिया और आज्ञा दी कि सर्वसाधारणके लाभके लिये राज्यका प्रयोग करो। जब शिवाजीने मन्दिरके लिये कुछ भूमि देनी चाही तो रामदासने कहा "यदि मुझे कुछ भूमि देते हो तो उतनेमें दो जो अभी तक तुर्कोंके अधिकारमें है" अर्थात् उन्हें यह बताया कि अभी स्वतन्त्रताका काम बहुत शेष है।

शाहजी

अहमदनगर रियासतमें सबसे बड़ा मराठा सरदार जादूराव था जो देवगढ़के राजाकी संतानमें था। दौलताबादके पटेल प्रसिद्ध भोंसले कुलके थे। शाहजी मालोजी भोंसलेका बड़ा पुत्र था। होलीके समय जब इन दोनों कुलोंके अतिरिक्त और बहुतसे दूसरे लोग एकत्र थे जादूरावकी कन्या और शाहजी परस्पर रंग खेल रहे थे। जादूरावने हंसीमें कन्यासे कहा, "पुत्री! तुम्हारा विवाह इस बालकसे कर दें!" फिर अन्य लोगोंने कहा, क्या उत्तम जोड़ी है। मालोजीने इसे एक प्रकारका विवाहका निश्चय समझ लिया और उसके पूर्ण किये जानेपर बल दिया। अन्तको पांच वर्ष बाद संवत् १६६१ में जीजीबाई और शाहजीका विवाह हो गया।

शाहजी अपनेको उदयपुरके वंशमें बतलाते थे। जब मलिक अम्बर अहमदनगरमें मुगलोंके विरुद्ध लड़ रहा था तो शाहजी और लखोजी जादूराव अहमदनगरके बादशाहके सहायक थे। संवत् १६७७ के युद्धमें उन्होंने बड़ी वीरता दिखलायी। संवत् १६८१ में खानजहाँ लोदीको पराजित करके शाहजी शाहजहाँकी ओर चले गये और बादशाहने उन्हें पांच सहस्र सेनाका मनसबदार बनाया परन्तु संवत् १६८८में फिर अहमदनगर लौट आये। वहां उस समय बड़ी हलचल मची हुई थी। उन्होंने अपनी इच्छानुसार एक व्यक्तिको सिंहासनपर बैठाया और स्वतन्त्र होकर कोंकन और उसके समीपवर्ती प्रान्तपर अपना अधिकार कर लिया। मुगल बादशाहने ४८ सहस्र सेना शाहजीके विरुद्ध भेजी। चार वर्षके उपरान्त शाहजीको अधीन होना पड़ा, उन्होंने संवत् १६९४ में शाहजहांकी सम्मतिसे बीजापुरके राजाका आश्रय लिया। वहांसे वे करनाटक भेजे गये जहांपर उन्होंने एक राज्यकी नींव डाली, जिसका शासक उनका पुत्र व्यंकोजी हुआ।

इन्होंने निर्णय कर देनेके लिये प्रार्थना की पर शिवाजीने उनसे संधि करके पुरन्धरके दुर्गपर भी अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् उन्होंने मावली लोगोंकी सेना बनानी आरम्भ कर दी और अपना अभिप्राय प्रकट करनेके लिए कई ब्राह्मण कोंकन भेजे। शिवाजीको जब यह सूचना मिली कि कल्याणके शासकने बड़ा धनकोष बीजापुरको भेजा है तो इन्होंने अपने सैनिक ले जाकर उसे लूट लिया और कोष साथियोंमें बांट दिया। इसके अनंतर सात दुर्ग और ले लिये। उनके एक साथी आबाजी सुवन्दुने कल्याणके शासकको कैद करके तीन और दुर्गोंपर अधिकार कर लिया। शिवाजीने आबाजीको वहांका शासक बना दिया।

जब इन घटनाओंकी सूचना बीजापुर दरबारमें पहुंची तो मुहम्मद आदिलशाहने बाजी घोरपड़े द्वारा शाहजीको करनाटकसे बुलवाया और एक तंग कोठरीमें कैद कर दिया। उसमें केवल एक छिद्र इस शर्तपर रखा कि सब दुर्ग वापिस करा दो अन्यथा यह छिद्र भी बन्द कर दिया जायगा। शिवाजी तो पिताकी मृत्युके भयसे यह सब माननेको उद्यत हो गये किन्तु उनकी धर्मपत्नी सूयाबाईने उन्हें एक उपाय बताया जिसने उन्हें इस अपमानसे बचा लिया। उपाय यह था कि शाहजहांसे पत्रव्यवहार किया जाय। इस प्रकार शिवाजीने अपने पिताको मृत्युसे बचा लिया परन्तु फिर भी शाहजीको चार वर्ष पर्यन्त बीजापुरमें ही नज़रबन्द रहना पड़ा। इस कालमें, सन् १६५० तक शिवाजी चुपचाप ही रहे।

शाहजी कैद

छोड़े गये

शाहजी शिवाजीके कार्योंमें प्रायः भाग न लेते थे। परन्तु जब उन्हें मुक्ति मिली तो उन्होंने शिवाजीको लिखा "यदि मेरे पुत्र हो तो बाजी घोरपड़ेसे प्रतिकार लो।" शिवाजीने इस आज्ञाका भलीभांति पालन किया।

अपने पिताके मुक्त होनेपर शिवाजीने कोंकनमें अपना राज्य विस्तृत करना आरम्भ किया। इन्होंने जावलीके आर्य राजाको भी पराजित किया।

इस समयमें गोलकुंडामें औरंगज़ेबकी सत्ता हो गयी। गोलकुंडाका मन्त्री मीरजुमला असन्तुष्ट होकर औरंगज़ेबसे आ मिला। इन्हीं दिनों बीजापुरका बादशाह मुहम्मद आदिलशाह मर गया और औरंगज़ेबने बीजापुरपर बिना किसी कारणके आक्रमण कर दिया। परन्तु शाहजहांकी बीमारीकी खबर सुन कर औरंगज़ेबका ध्यान उधर खिंच गया। जब औरंगज़ेब, मुराद और दाराशिकोह परस्पर युद्ध कर रहे थे, शिवाजीने मुगल राज्यके जुनिरनगर और अहमदनगरपर आक्रमण करके उन्हें लूट लिया। औरंगज़ेबके सफल हो जानेपर शिवाजीने अपराध क्षमा करानेके लिए उसे पत्र लिखा और प्रार्थना की कि मुझे कोंकन दे दिया जाय। औरंगज़ेबने बीजापुरको दबावमें रखनेके लिये शिवाजीको आशाजनक उत्तर दिया। शिवाजीने पांच सौ पठानोंको जिनको बीजापुरने दरबारसे हटा दिया था अपने यहां भरती कर लिया और कोंकनपर विजय प्राप्त करनेकी तैयारी कर दी। बीजापुरने बहुत तंग आ कर शिवाजीको दबाना आवश्यक समझा और एक बड़ी सेना सहित अफज़लखांको इस कार्यके लिये भेजा।

उस समय शिवाजी प्रतापगढ़में थे। सेनाके पहुंचनेपर उन्होंने अफ़ज़लखांको प्रशंसापत्र भेजने आरम्भ किये जिनमें अपने पिछले कामोंपर उन्होंने पश्चात्ताप भी प्रकट किया। अफ़ज़ल खांने भी संधि करना अंगीकार कर लिया और एक ब्राह्मण दूत पन्तुजी गोपीनाथको शिवाजीके पास भेजा। दिन भर इधर उधरकी बातें करके शिवाजीने रातको उसे रख लिया। आधीरातको शिवाजी इसके पास गये और कहा जो कुछ मैंने किया है अपने लिये नहीं प्रत्युत आर्यजाति और धर्मकी रक्षाके लिये किया है क्योंकि देवी भवानीने मुझे धर्मके शत्रुओंका नाश करनेके लिए आज्ञा दी है। आप ब्राह्मण हैं, आपका कर्तव्य है कि आप मेरी सहायता करें। साथ ही उसे जागीर देनेकी भी उनने प्रतिज्ञा की। गोपीनाथने भवानीकी शपथ खाकर कहा कि मैं सब प्रकारसे आपकी सहायता करूंगा। अन्तमें शिवाजीके साथ अफ़ज़लखांको एकाकी मिलानेकी राय हुई। गोपीनाथने लौट कर अफ़ज़लखांको इस बातपर राजीकर लिया। अफ़ज़लखां अपनी सेना भी साथ लाया। गोपीनाथने इस विचारसे कि शिवाजी भयभीत न हो जायँ सेनाको पीछे खड़ा करा दिया। शिवाजीने इसे धर्मका काम समझ कर उसके लिये तैयारी की। हाथ मुख धोकर उन्होंने अपनी माताके चरणों पर गिर कर आशीर्वाद लिया। कवच धारण कर विछू और बाघनख हाथोंमें ले लिये और तैयार हो दुर्गसे उतरे। अफ़ज़लखां और शिवाजी दोनों एकाकी मिले। शिवाजीने उस-पर छुरिकाका वार किया। अफ़ज़लखांने भी अपनी तलवार चलायी किन्तु शिवाजीके कवचपर उसका कुछ प्रभाव न हुआ। शिवाजीके साथी छुपे हुए थे; झट आ पहुंचे और अफ़ज़लखांका सिर काट कर दुर्गमें ले गये और उन्होंने सेनाको पीछे हटा दिया।

अफ़ज़लखांका वध

ऊपरका कथन एक ओरका है। मराठा ऐतिहासिकोंने इसके विपरीत यह सिद्ध किया है कि अफ़ज़लखांका निश्चय अकेले मिलकर शिवाजीको कैद कर लेनेका था, इसीलिये वह मिलनेपर राजी हुआ था। मिलनेके समय अफ़ज़ल खांने जब यह चेष्टा की तो शिवाजीने जो सदा अपने पास छुरी रखा करते थे उसकी समाप्ति कर दी। अब शिवाजीका बल तथा प्रसिद्धि बहुत बढ़ गयी। तोप, हाथी और घोड़े भी उनके हाथ आये। बीजापुरमें जब यह सूचना पहुंची तो दुगुनी सेना भेजनेका निश्चय किया गया। शिवाजीके सैनिक रसद रसानीका सामान लूट लेते थे और मार्गमें आग लगाकर सब कुछ नष्ट कर देते थे अथवा जब शत्रु सुखसे सोते तो उनपर आ पड़ते थे।

मराठा ऐतिहासिकोंका मत

अन्तमें बीजापुरकी सेनाने पनाला दुर्गपर घेरा डाल दिया और चार मास तक पड़ी रही। शिवाजीको दुर्गमें बन्द हो जानेका बड़ा दुःख था। अन्तको उन्होंने चतुरतासे काम लिया। एक दिन शरणमें आना स्वीकार कर लिया। जब सीदीजोहर और फाज़िल मुहम्मदखां (अफ़ज़लखांका पुत्र) रात्रिको सो रहे थे शिवाजी अपने चुने हुए मवाली लेकर निकल गये और देशपाण्डेको कुछ मवाली देकर मार्गमें खड़ा कर दिया जिसमें वह शत्रुओंको तब तक रोक रखे जब तक पांच तोपोंका शब्द न सुनायी दे। यही

पनाला दुर्गका घेरा

शिवाजीके पहुंचनेका चिह्न था। फाज़िलखाँ जाननेपर पीछा करनेके लिये गया किन्तु देशपाण्डे और मावलियोंने अपने कर्तव्यपर अपने प्राण न्योछावर कर दिये। जबतक तोपोंका शब्द न सुनायी दिया, इन्होंने शत्रुको मार्गमें रोक रखा। आधेसे कुछ अधिक आदमी यहां काम आये। देशपाण्डे स्वयं मारा गया किन्तु इसने मरते समय तोपोंका शब्द सुन लिया था जिससे इसने शान्तिपूर्वक प्राण दिये।

यह घटना संवत् १७१० में हुई। शिवाजीने आर्योंको प्रसन्न करनेके लिये प्रतापगढ़में देवीका मन्दिर बनवाया, साथ ही शत्रुसेनासे भी युद्ध करते रहे। बादशाहने सीदी जौहरको बुला लिया। इस समय देशमुख तथा बाजी घोरपड़े दोनों बादशाहकी सहायता करनेको तैयार हो गये।

जब शिवाजीको यह विदित हुआ तो वे मधोलपर अकस्मात् आ पहुंचे और घोरपड़ेको जो इनके पिताका वैरी था परिवार सहित मारकर लौट आये। इसपर शाहजी करनाटकसे शिवाजीसे मिलने आये। शिवाजीने बड़ी प्रतिष्ठासे अपने पिताका स्वागत किया और जब शाहजी पुनः बीजापुर गये तो बीजापुरसे शिवाजीकी संधि हो गयी।

इधरसे हटकर शिवाजीने मुगलराज्यकी ओर ध्यान दिया। इनका एक सेनापति नेताजी औरङ्गाबाद तक लूटमार कर वापिस चला गया। औरङ्गजेबने दक्षिणके शासक शाइस्ताखाँको शिवाजीपर आक्रमण करनेकी शाइस्ताखाँको पसन्द आज्ञा दी। शाइस्ताखाँने सेना लेकर प्रस्थान किया। चाकन नामक दुर्ग लेनेमें इसके एक सहस्र मनुष्य काम आये। वहांसे यह पूना पहुंचा और दादाजीके मकानमें जाकर ठहरा। इसने आज्ञा दी कि कोई सशस्त्र मराठा पूनामें प्रवेश न करे। शिवाजीने अपने एक मराठे मित्रसे शाइस्ताखाँकी नौकरी कबूल करायी। इसने विवाहके बहानेसे नगरमें ढोल बजाने तथा बरातियोंको साथ ले जानेकी आज्ञा प्राप्त की। जब पूनामें यह बरात आ रही थी तो शिवाजी अपने कुछ चुने हुए मवालियों सहित नगरमें प्रविष्ट हो गये। रातको एकाएक दादाजीके मकानपर जाकर आक्रमण कर दिया। शाइस्ताखाँका पुत्र मारा गया। शाइस्ताखाँकी आंख खुली तो यह एक खिड़कीसे कूदकर भागा पर तलवारसे इसकी एक उंगली कट गयी। शिवाजी अपने साथियों सहित सिंहगढ़ पहुंच गये। दूसरे दिन मुगलसेना सिंहगढ़की ओर बढ़ी। मार्गमें नेताजी अकस्मात् इनपर आपड़ा और सब अश्वारोही भाग गये। यह पहला ही अवसर था कि मुगलसैनिक मराठोंके आगे भाग खड़े हुए। इसके बाद शाइस्ताखाँ बङ्ग देशका शासक बना दिया गया।

फिर शिवाजीने सूरतके धनाढ्य नगरको लूटा और बहुत माल लेकर दुर्गमें प्रवेश किया। साथ ही शिवाजीकी जलशक्ति भी अधिक बलवती होती गयी। इन्होंने मक्काकी ओर जानेवाले एक पोतको जा पकड़ा और बहुत धन लेकर छोड़ दिया। संवत् १७२१ में शिवाजीने रायगढ़में राजाका पद ग्रहण किया और अपने नामकी मुद्रा प्रचलित की।

संवत् १७२७ में शिवाजी फिर संग्रामके लिये तैयार हो गये। उनके वीर सेनापति तानाजीने सिंहगढ़के दुर्गको जीत लिया। तानाजी उसमें मारा गया। इसपर शिवाजीने शोकातुर होकर कहा, "सिंहगढ़ तो लिया

फिर संग्रामकी तैयारी

लेकिन सिंह मारा गया।" उनका भाई शिवाजी वहांका दुर्गपाल बनाया गया। थोड़े ही दिनोंमें कल्याणका प्रदेश भी हाथ आ गया। उधर १८० जहाज़ोंका बेड़ा समुद्रमें फिरता था। वर्षाऋतु समाप्त होनेपर शिवाजीने सूरतको पुनः लूटा। उनके सेनापति प्रतापरावने खानदेशपर आक्रमण किया और बड़े बड़े नगरोंसे चौथ प्राप्त की। जसवन्तसिंह हृदयसे शिवाजीकी उन्नतिपर प्रसन्न थे। अन्तको औरङ्गज़ेबने महाबतखांको दक्षिण भेजा। चाकनके समीप शिवाजीकी सेनाने मुग़लसेनापर बड़ी भारी विजय प्राप्त की और कई अफसर कैद कर लिये। उधर पुर्तगीज़ोंसे चौथ प्राप्त करनेके लिये सेना भेजी। औरंगजेबने अब खानजहांको दक्षिण भेजा और महाबतखांको वापस बुला लिया।

उस समय बीजापुरका शासक मर गया और वहांके राज्यमें अराजकतासी फैल गयी। शिवाजीने इससे लाभ उठाकर होबली नगरको लूटा। बहुत धन हाथ लगा। फिर उन्होंने सतारेके दुर्गपर अधिकार कर लिया। पनाला भी फिर हाथमें आ गया। शिवाजीका सेनापति प्रतापराव वीरतासे लड़ता हुआ रणक्षेत्रमें काम आया।

शिवाजीका सिंहासनारोहण

१३ ज्येष्ठ संवत् १७३१ को शिवाजीने राजगद्दीपर बैठनेका उत्सव मनाया। उस समय आठों मन्त्रियोंके नाम संस्कृतमें रखे गये। शिवाजीने अपने आपको सुवर्णसे तोलकर उस सुवर्णको ब्राह्मणोंको दे दिया।

इसके अनन्तर मुग़लसेनासे प्रायः युद्ध होता ही रहा। इधर बीजापुर और गोलकुण्डाके साथ मुग़लोंका युद्ध चल रहा था। शिवाजी सेना लेकर हैदराबाद गये और वहां उन्होंने कुतबशाहके साथ मित्रता की। वहांसे दक्षिणमें आकर उन्होंने जिन्जीके दुर्गपर अधिकार कर लिया। उसी समय उनके एक ब्राह्मण अफसरने वेलोर दुर्ग अधिगत कर लिया। शिवाजीने लौटते समय बिलारीके दुर्गपर भी अपना झंडा उड़ा दिया। दिलेरखां बीजापुरके साथ युद्ध कर रहा था। बीजापुरके बादशाहने शिवाजीसे सहायता मांगी। शिवाजीने मुग़लोंपर आक्रमण किया और आसपासके सभी ग्राम निर्जन कर दिये। अपने पुत्र सम्भाजीको एक ब्राह्मण कन्याके साथ अनुचित व्यवहार करनेपर शिवाजीने क़ैद कर दिया था। जब उसे कारावाससे मुक्त किया तो वह दिलेरखांके साथ जा मिला। दिलेरखां उसे पिताके विरुद्ध लड़नेके लिये सहायता देना चाहता था किन्तु औरङ्गज़ेबकी इच्छा उसे क़ैद करनेकी थी, इस लिये दिलेरखांने उसे लौट जानेकी आज्ञा दे दी। अन्तको पिता पुत्रमें सन्धि हो गयी। तत्पश्चात् शीघ्र ही चैत्र संवत् १७३१ में शिवाजी इस लोकसे प्रस्थान कर गये। महाराष्ट्रमें शिवाजी अवतार समझे जाते हैं।

शिवाजी पण्डितोंकी बड़ी प्रतिष्ठा करते थे। वे बालकोंको अपने खरचसे पढ़ाते थे और पाठकों तथा पाठशालाओंका समस्त व्यय राज्यकी ओरसे मिलता था। उन्होंने संस्कृत विद्याकी बड़ी उन्नति की। स्थान स्थानपर रामायण तथा महाभारतकी कथा सुनायी जाती थी और लोगोंके अन्दर जातीय भाव फूंका जाता था। मराठा-राज्यकी उन्नतिके कारण शिवाजीके कार्य थे। उनसे राष्ट्रीय भावोंका प्रादुर्भाव हुआ।

मिलकर प्रह्लादको प्रतिनिधिका पद दिया। यह पद-विशेष इसीके लिये निर्मित हुआ और राजाराम नियमपूर्वक राजगद्दीपर बैठाया गया। उसके नामसे प्रसिद्ध आर्यों-को उन प्रान्तोंकी जागीरें दी गयीं जो कि उस समय मुग़लोंके अधिकारमें थे। औरङ्गज़ेबने यह समाचार सुनते ही ज़ुल्फ़िक़ारको उधर भेजा। इधर प्रह्लादने सन्ताजी सेनापति और धनाजी जादूको महाराष्ट्रमें मुग़लोंके विरुद्ध भेजा। ज़ुल्फ़ि-क़ार आक्रमणके लिये और सेना मांगता था परन्तु औरङ्गज़ेब अधिक सेना न भेज सकता था क्योंकि महाराष्ट्रमें भी मराठा सरदार सन्ताजीसे मिल रहे थे। रामचन्द्र-पन्त महाराष्ट्रमें प्रतिनिधिका काम करता था। उसकी राजधानी सितारा थी। उसने चौथ तथा सरदेशमुखीके अतिरिक्त सेनाके लिये घास दानाके लिये कर प्राप्त करना आरम्भ कर दिया और एक अच्छी सेना एकत्र कर ली। यह मराठा सेना डोंगर लोगोंकी थी। उनके सेनापतियोंको रामचन्द्रने नये नये पद दिये। सन्ताजी धनाजी और परशुरामने राजगढ़, पनाला और चुर्न आदि दुर्ग पुनः ले लिये और गोदावरी ज़िलेमें मुग़लसेनापर धावा किया। आखिर औरङ्गज़ेबने जिञ्जीको लेनेका निश्चय किया। यह स्वयं सेना लेकर पश्चिमकी ओर चला और उसने युवराज काम-बख़्शको आगे भेजा। ज़ुल्फ़िक़ारख़ां पदसे हटाये जानेपर बहुत क्रुद्ध हुआ। मराठोंने इस अवसरको शुभ जान उसे अपनी ओर कर लिया, यह प्रत्येक समय युवराजके उपायोंको व्यर्थ करनेमें लगा रहा। औरङ्गज़ेबने भीमा नदीपर ब्रह्मपुरीमें अपनी छावनी रक्खी, और कई वर्षों तक यह उसे सांग्रामिक राजधानी बनाये रहा। यहां ही पुर्तगीज़ों और अंग्रेज़ोंने औरङ्गज़ेबसे क्षमा मांगकर अपना पीछा छुड़ाया था।

जिञ्जीपर आक्रमण करनेमें चिरकाल लग गया। ऊपरसे सन्ताजी बीस सहस्र सेना लेकर आ पहुंचा। उसने आते ही काञ्जीपाकके क्षेत्रमें अलीमर्दान सेनापतिको पराजित-कैद कर लिया, और मुग़लोंके भोजन आदि प्रबन्धके सम्बन्धको तोड़कर मुग़लसेना-[illegible]को घेर लिया। इधर बादशाहकी बीमारीका समाचार प्रसिद्ध करके उसने युवराज कामबख़्शको भी अपनी ओर कर लिया। अन्तको मुग़लोंकी ओरसे सन्धिके लिये प्रार्थना हुई। उसे स्वीकारकर मराठोंने सेनाको वापस आने दिया। औरङ्गज़ेबने फेर ज़ुल्फ़िक़ारख़ांको सेना देकर जिञ्जीपर आक्रमण करनेकी आज्ञा दी। इधर मुग़लसेना सन्ताजीके विरुद्ध चल पड़ी। सन्ताजी पर्वतोंकी ओर भाग गया। जब मुग़लसेना विश्राम करने लगी तो उसने पुनः आकर सेनाको काट डाला। यह आक्रमण बहुत दिनों तक रहा, आखिर संवत् १७५१ में ज़ुल्फ़िक़ारख़ांको मालूम हुआ कि बादशाह मेरा अपमान करनेको उद्यत है। उसने राजारामसे सलाह की, राजाराम अपने साथियों सहित निकलकर वेलोर जा पहुंचा और ज़ुल्फ़िक़ारख़ां जिञ्जीमें प्रविष्ट हो गया। प्रह्लाद इससे थोड़े दिन पहिले मर गया था। अब सन्ताजी और धनाजीकी परस्पर लड़ाई हो गयी। प्रह्लाद सदैव पारस्परिक द्वेषको मिटाये रखता था। अब उसके स्थानपर कोई बुद्धिमान् पुरुष न था। आधी मराठा सेना सन्ता-जीके साथ कर्नाटक चली गयी और आधी सताराम राजारामके पास रही। अब सतारा राजधानी हो गयी। सन्ताजीको नर्मदाके तटपर एकाकी पाकर उसके किसी

बालाजी विश्वनाथ अपनी सेनाके साथ दिल्लीमें रहा। सैय्यद भाइयोंने दो युवराजोंको सिंहासनपर बिठाकर हटा दिया और फिर मुहम्मदशाहको राजगद्दीपर बैठाया। आखिर सैय्यदोंने यह सन्धिपत्र स्वीकार करा लिया। साहूकी माता तथा सारे परिवारको छोड़ दिया और उनका वेतन और समस्त व्यय पूरा पूरा दे दिया। इस प्रकार संवत् १७७६ में बालाजी विश्वनाथ मुगल दरबारसे महाराष्ट्रान्तर्गत स्वराज्य तथा शेष समस्त दक्षिणकी चौथ वा सरदेशमुखीका अधिकार स्वीकार करवा कर बड़ी सफलता पूर्वक सतारा लौट आया। मराठोंका कथन है कि उस समय उन्होंने बरारको विजित कर लिया और मालवा तथा गुजरातमें भी चौथका अधिकार प्राप्त कर लिया।

पाँचवाँ प्रकरण ।

बाजीराव द्वितीय पेशवा ।

दिल्लीसे वापस आनेपर बालाजी विश्वनाथ थोड़े दिन जीवित रहकर मर गया । उसके पदपर उसका बड़ा पुत्र बाजीराव पेशवा नियत किया गया ।

दिल्लीमें झगड़े बढ़ते गये । सैय्यद भाइयोंके विरुद्ध एक दल उत्पन्न हुआ । निज़ामुल्मुल्कने मालवाके शासनसे दक्षिणपर अधिकार प्राप्त करना चाहा । हुसेनअली अपने भतीजे आलमअलीखांको शंकराजी मल्हार

बालापुरका संग्राम

के सुपुर्द कर गया था । आलमअलीखां और मराठोंने निज़ामुल्मुल्कने युद्ध किया । बालापुरमें घोर संग्राम हुआ जिसमें मराठे बड़ी वीरतासे लड़े और शंकराजी क़ैद किया गया । निज़ामुल्मुल्कने दक्षिण-पर अधिकार कर लिया । इस संग्राममें पिलाजी गायकवाड़ और उसके पुत्रोंने बड़ी वीरता दिखलायी । बड़ोदाके वर्तमान गायकवाड़ पिलाजीके ही वंशज हैं । दिल्लीसे हुसेनअली बड़ी सेना लेकर निज़ामुल्मुल्ककी ओर आया परन्तु तीन तूरानी मुग़लोंने हुसेनअलीको मारनेका षड्यंत्र किया । एकने हुसेनअलीका वध कर दिया और स्वयं भी मारा गया । शेष दोने बादशाहको सैय्यदोंसे विमुक्त किया और वे दिल्लीकी ओर चल पड़े । उधरसे अब्दुल्ला अपने भाईका बदला लेनेके लिये निकला । युद्धमें अब्दुल्ला पकड़ा गया । बादशाहकी मुक्तिपर दिल्लीमें कई दिनों तक आनन्द तथा उत्सव मनाया गया । उन दो तूरानियोंमेंसे एक सआदत-खां था । वह अवधका सूबेदार बनाया गया, और उसकी सन्तान बहुत दिनों तक वहां शासन करती रही । निज़ामुल्मुल्क दक्षिणका वाइसराय और मंत्री बनाया गया । वह दिल्लीमें कुछ काल तक रहा । परन्तु उसका स्वभाव बड़ा कठोर था, इससे उसके बहुत शत्रु हो गये और वह संवत् १७८० में दक्षिणके शासनके निमित्त लौट आया । मराठोंके साथ उसका सम्बन्ध दृढ़ हो गया । वह आयु पर्यन्त दक्षिणमें शासन करता रहा । यहां उसका सबसे बड़ा सहायक बाजीराव पेशवा था ।

बाजीरावने पेशवा होते ही मराठा राज्यको बढ़ानेका यत्न किया । उसने तत्काल मालवाकी ओर अपना ध्यान फेरा । जब दिल्लीमें झगड़े हो रहे थे, उसने कई बार सेना भेजी । अन्तको संवत् १७८१ में वह स्वयं नर्मदा

सिन्धिया और होल्कर

नदीको पार कर मालवामें प्रविष्ट हुआ और उसने बुरहानपुरके सूबेदारको पराजित किया । इस संग्राममें दो अफ़सरोंने बड़ी वीरता दिखलायी । एक मल्हारजी होल्कर जो मराठा सरदार था और होलल ग्रामका निवासी था, दूसरा राणोजी सिन्धिया था । सिन्धिया ब्राह्मणी वंशके

कालसे प्रसिद्ध सरदार चले आते हैं और अपने आपको राजपूत कहते हैं। औरङ्गज़ेबने साहूका विवाह एक सिन्धिया सरदारकी कन्यासे कराया था। किन्तु यह स्त्री शीघ्र ही मर गयी। राणोजी सतारासे १५ मीलकी दूरीपर एक ग्रामका रहनेवाला था और निर्धन होनेके कारण साधारण भार-वाहकके तौरपर भरती हुआ था। वह पहिले बालाजी और फिर बाजीरावके साथ भी रहा। बाजीरावने उसकी योग्यता देखकर उसे एक पद दे दिया। इनके अतिरिक्त विश्वासराव नामक एक और वीर व्यक्ति था जिसने मालवामें लूटमार करके धारपर अधिकार कर लिया, किन्तु गिरिधर वीरके आनेपर उसे दुर्गसे निकलना पड़ा। शूरवीर राजा गिरिधरने जो कि बादशाहकी ओरसे मालवाका सूबेदार था दस वर्ष तक मालवापर मराठोंका अधिकार न होने दिया।

मराठा नेताओंमें बाजीराव मानसिक योग्यता तथा वीरतामें सबसे बढ़कर था। उसके सम्मुख पहिली कठिनाई यह आयी कि श्रीपतराव प्रतिनिधि उससे द्वेष करता था और राज्य बढ़ानेके उपायोंका घोर विरोध करता था। उसकी यह सम्मति थी कि पहिले करनाटकको अधीन किया जाय। निज़ामुल्मुल्क उनमें परस्पर वैर उत्पन्न करनेका यत्न करता रहता था किन्तु बाजीराव बड़ा दूरदर्शी था। उसने देख लिया कि मराठोंको विजयके लिये बाहर ले जानेसे महाराष्ट्रमें शान्ति रहेगी और वे एक व्यक्तिके प्रभावमें आकर मराठा-राज्य बढ़ानेमें विशेष सहायक होंगे। यह बात हृदयमें गुप्त रख उसने राजाके सामने उनके पूर्वजोंके उदाहरण उपस्थित किये और बताया कि इस समय मुग़लोंकी अत्यन्त निर्बल अवस्था है। आलस्य तथा झगड़ोंसे इनका राज्य अधोगतिको प्राप्त हो रहा है। मराठोंके अन्दर पर्याप्त बल तथा उत्साह विद्यमान है। इस प्रकार राजाके सामने उसने प्रभावशाली व्याख्यान देते हुए उसे इस प्रकार समाप्त किया "अब हमारे लिये यह शुभ अवसर है कि हम इन विदेशियोंको अपने देशसे निकाल कर मान तथा प्रतिष्ठा प्राप्त करें। आपके उत्साह तथा सौभाग्यसे मराठोंका झण्डा कृष्णासे अटक तक लहरायगा।" साहूपर इस व्याख्यान का बड़ा प्रभाव हुआ और वह बोल उठा "निःसन्देह तुम इसे हिमालयपर जा गाड़ोगे। तुम योग्य पिताके योग्य पुत्र हो।" बाजीरावने मुग़ल-साम्राज्यकी ओर निर्देश करके कहा "हमें इस समय सूखे वृक्षके तनेको काटना चाहिये, शाखाएं स्वयं गिर जायगी।"

पेशवा तथा प्रतिनिधिका विरोध

जब निज़ामुल्मुल्क दिल्लीसे दक्षिण चला तो बादशाह बड़ा रुष्ट हुआ। उसने हैदराबादके सूबेदार मुबारज़खांको निज़ामुल्मुल्कको दक्षिणसे निकाल देनेकी आज्ञा दी। लड़ाईमें मुबारज़खां मारा गया। निज़ामुल्मुल्कने उसका सिर काटकर दिल्ली भेज दिया और साथमें मुबारकबादी का एक पत्र भी भेजा। निज़ामुल्मुल्कने हैदराबादपर भी अधिकार कर लिया। बादशाहने निज़ामुल्मुल्कका मान रखा और गुजरातका शासन कार्य एक स्थानीय राजा गिरिधरराय और दूसरे स्थानपर सरबुलन्दखांको सुपुर्द

मुबा.ख़ां. वध

नियत कर दिया। निज़ामुल्मुल्कके नायिब हमीदखांने विना युद्धके गुजरात मु कर देना अनुचित समझा, इस लिये उसने राजा साहूके एक अफ़सर कुन्ताजी सहायताके लिये बुला भेजा। कुन्ताजी चौथकी प्रतिज्ञा कराके तत्काल पहुंच गय उसकी सहायतासे हमीदखांने सरबलन्दके नायिब शुजाइतखांको पराजित दि परन्तु शुजाइतखांका भाई रुस्तमअली, पेलाजी गायकवाड़की सहायता लेकर आ था। पेलाजी चौथका वचन लेकर हमीदखांसे मिल गया और संग्राममें रुस्त अलीकी पराजय हुई। उसने अपने हाथों खन्जरसे अपनी हत्या कर डाल

अब पेलाजी और कुन्ताजीके मध्यमें चौथके विषयमें युद्ध हुआ कि वर्षाकाल आनेपर वे पृथक् हो गये। तत्पश्चात् सरबलन्दखां स्वयं सेना ले गुजरातकी ओर बढ़ा। हमीदखांने मराठोंकी सहायतासे एकब

मालवामें चौथ

उसे पराजित किया परन्तु फिर युद्ध करनेका साहस न कर मर ठोंके साथ मिल गया। जब कुन्ताजी और पेलाजी गुजरातमें चौ प्राप्त कर रहे थे बाजीराव सेना लेकर मालवामें राजा गिरिधरके विरोध करनेपर भी चौ प्राप्त करनेमें सफल हो गया, और उसने पवार, होलकर और सिन्धियाको चौथ त सरदेशमुखी प्राप्त करनेके पत्र दे दिये, जिसमेंसे आधा भाग उनको अपनी सेनाव वेतन देनेके लिये दिया जाता था। संवत् १७८३ में बाजीराव फ़तहसिंह भोंसलेके साथ लेकर करनाटक गया और उसने वहांसे चौथ ली। इससे निज़ामुल्मुल्कको दिल्ली राज्यके सम्बन्धमें मराठोंसे बड़ा भय उत्पन्न हुआ। उसने मराठा दरबारमें विभेदक नीतिसे काम लेना चाहा, और प्रतिनिधि भेजकर साहूसे हैदराबादके ऊपर चौथ आदि हटवा ली। इसके उपकारमें प्रतिनिधिको बरारमें एक जागीर दे दी। जब बाजीराव करनाटकसे लौटा तो उसे यह अच्छा न लगा। उसके और प्रतिनिधियोंके मध्यमें बड़ा झगड़ा उत्पन्न हो गया। निज़ामुल्मुल्कने कोल्हापुरके राजा सम्भाजीको उत्तेजित कर साहूके राज्यको निर्बल करना चाहा। राजा साहू उससे सर्वथा घृणा करने लग गया और प्रतिनिधिको छोड़कर पूर्णतया बाजीरावको ही अपना सबसे बड़ा सहायक समझने लगा। उसने बाजीरावको निज़ामपर आक्रमण

निज़ामपर आक्रमण

करनेकी आज्ञा दे दी। बाजीराव बुरहानपुर लेनेके लिये बढ़ा। जब निज़ामुल्मुल्क सेना लेकर उधर आया तो बाजीरावने पहिलेहीसे गुजरातमें पहुंच कर सरबलन्दखांसे चौथ मांगी। निज़ाम अपने भ्रमको जानकर पूनाकी ओर चला। बाजीरावने उसे एक स्थानमें घेर कर सारी घास इत्यादिमें अग्नि लगा दी और सामान रसद इत्यादि रोक दी। निज़ामको वहांसे निकलनेमें बड़ा कष्ट हुआ और उसे कोल्हापुरकी ओरसे कोई सहायता न मिली, इसलिये विवश होकर उसे पेशवासे सन्धि करनी पड़ी। निज़ामने चौथका शेष और कई दुर्ग देनेकी प्रतिज्ञा की, परन्तु सम्भाजीको साहूको देनेसे अस्वीकार कर दिया। इसके पश्चात् बाजीराव और निज़ाम प्रथमवार मिले। बाजीरावका भ्राता चिमनाजी गुजरातमें विद्यमान था।

सरबलन्दखांने गुजरातको मराठोंकी लूट मारसे बचानेका बड़ा यत्न किया

किन्तु वह कृतकार्य न हो सका। इसलिये उसने चौथ और सरदेशमुखीका देना स्वीकार कर लिया ताकि देशमें शान्ति रहे।

सम्भाजीने लौटकर कुछ लूट मार करनी आरम्भ की। इसपर प्रतिनिधिने राजाको प्रसन्न करनेके लिये उसे पराजय दी और उसकी माता ताराबाई आदिको कैद कर लिया। इसके उपरान्त दोनों पक्षोंमें सन्धिपत्र लिखे गये।

निज़ामको अब भी सन्तोष न हुआ। उसने सेनापति त्र्यम्बकदबारेको बाजीरावके विरुद्ध कर लिया। सेनापतिने गुजरातमें सेना एकत्र करनी आरम्भ की। बाजीराव भी युद्ध करनेको उद्यत हो गया। यद्यपि उसकी सेना थोड़ी थी किन्तु उसने निज़ामकी सेनाको सेनापतिसे मिलनेका अवसर न देकर पहिले ही आक्रमण कर दिया। बड़ोदाके पास इस युद्धमें सेनापति मारा गया और बाजीरावको पूर्ण विजय प्राप्त हुई।

बाजीराव और निज़ाम

बाजीराव अब निज़ामसे बदला लेनेके लिये तैयार हुआ परन्तु निज़ामने चतुरतासे उसका मुख मुगलराज्यकी ओर फेर दिया, और उसके साथ सन्धि करके दिल्ली दरबारके विरुद्ध सहायता देनेको उद्यत हो गया।

मालवामें संग्राम करनेके बाद राजा गिरिधर मारा गया और चिमनाजीने देशपर अधिकार कर लिया। अब बाजीरावने स्वयं सेना लेकर मालवामें प्रवेश किया और चिमनाजीको सतारा दरबारमें रहनेके लिये भेज दिया।

गुजरातमें सरबलन्दखांके स्थानमें जोधपुरके राजाका शासन स्थापित हुआ। पेलाजी गायकवाड़ बराबर युद्ध करता रहा, अन्तको राजाने परस्पर विचार करनेके छलसे उसे बुला भेजा और वध करवा दिया। पेलाजी बड़ा सर्वप्रिय था। उसके वधपर भील और कोल लोग सबके सब उठ खड़े हुए। इतनेमें उसका भाई महादजी गायकवाड़ आ पहुंचा और उसने इन लोगोंकी सहायतासे बड़ोदापर अधिकार कर लिया। संवत् १७९० से गायकवाड़का शासन गुजरातमें स्थापित हो गया। पेलाजीके बड़े पुत्र दामाजीने जोधपुरपर आक्रमण कर दिया और अभयसिंहको गुजरात छोड़कर अपने देशकी रक्षाके लिये जाना पड़ा।

गायकवाड़

मालवामें मुहम्मदखां शासक नियुक्त होकर आया था। उसने आते ही बुन्देलखण्डमें प्रवेश किया। राजा छत्रसालने बाजीरावसे सहायता मांगी। बाजीरावने मुहम्मदखांको एक कोटमें घेर लिया जहांसे उसने बड़ी कठिनतासे प्राणोंकी रक्षा की। छत्रसाल इतना प्रसन्न हुआ कि उसने झांसीका दुर्ग तथा प्रान्त पेशवाको दे दिया। मुहम्मदखांके स्थान राजा जयसिंहके कहनेपर बादशाहने मालवाकी चौथ एवं सरदेशमुखी बाजीरावको दे दी।

राजा छत्रसाल

संवत् १७९२ में बाजीराव होलकर और सिन्धियाको मालवामें छोड़कर सतारा लौटा। सताराका राज्य पीछे कोंकणमें अंग्रिया और सैय्यदोंके साथ झगड़ोंमें लगा रहा और बाजीरावकी अनुपस्थितिमें ही राघोजी भोंसलेने कुछ प्रतिज्ञाएं स्वीकार करके बरारका राज्य राजा साहूसे प्राप्त कर लिया। राजा साहू राघोजीसे अत्यन्त प्रसन्न था। उसने उसका विवाह अपनी एक सालीसे कराया था।

राघोजी भोंसले

संवत् १८०३ में दो बड़ी घटनाएं हुईं। भारतवर्षपर अहमदशाह अबदालीने पहिला आक्रमण किया और दक्षिणमें निज़ामुलमुल्ककी मृत्यु हुई।

निज़ामकी मृत्यु

निज़ामकी मृत्युके उपरान्त उसके पुत्रोंमें झगड़ा होनेसे दो पक्ष बन गये। उन लोगोंने दक्षिणीय व्यापारियोंको अपने झगड़ेमें मिला लिया। एक वर्ष पश्चात् राजा शाहू मर गया। उसने शिवाजीतानीके पुत्रको अपना दत्तकपुत्र बना लिया। पेशवाने राजारामको गद्दीपर बिठा दिया। पेशवा सब बातोंका निर्णय करनेके लिये पूना आ गया। इस समयसे मराठा राज्यकी राजधानी पूना समझनी चाहिये। आठ मन्त्री निश्चित किये गये। रघोजी भोंसलेको बरारकी सनद दी गयी। मालवाका प्रान्त सिन्धिया और होलकरमें विभक्त किया गया और पवारको धारका प्रान्त दिया गया।

राजा शाहूकी मृत्यु

हैदराबादके युद्धमें पेशवाने निज़ामके बड़े पुत्र गाज़ीउद्दीनका साथ दिया और सेना लेकर उसकी सहायतामें पहुंचा। उसकी अनुपस्थितिमें राजारामकी बुढ़ा माता ताराबाईने पूनाकी गायकवाड़के साथ विद्रोह किया ताकि पेशवाके हाथसे शक्ति छीन लें। इधर पेशवाको इसके निर्णयके लिये लौट आना पड़ा। उधर दक्षिण पहुंचनेपर सलाबतजंगकी सेनासे युद्ध हुआ। फ्रेंच अफ़सर बूसीने मराठा सैनिकोंपर जब वे चन्द्रग्रहणके समय पूजामें विलग्न थे आक्रमण कर दिया अतः उन्हें भागना पड़ा, परन्तु बहुत हानि न हुई। जब यह संग्राम हो रहा था तो रघोजीने गवालगढ़, नरनाला आदि अनेक दुर्गोंपर अधिकार कर लिया, और गोदावरी और पैनगंगाके बीच मुग़लोंको निकालकर अपने थाने स्थापित कर दिये। इसी समय रोहिले दिल्ली दरबारसे राजविद्रोही हो गये। यह भी पठानोंकी जातिसे थे। अलीमुहम्मद अहीरको एक अफ़ग़ानने दत्तकपुत्र बनाकर रोहिला नाम दिया था। इसने मुरादाबादमें शासन प्राप्त करके धीरे धीरे एक स्वतन्त्र रियासत बना ली। उनके ऊपर वज़ीर सफ़दरजंगने सिन्धिया तथा भरतपुरके राजा सूरजमलको पर्याप्त पारितोषिक देनेकी प्रतिज्ञा करके सहायताके लिये बुलाया। उनकी सहायतासे रोहिले दबा दिये गये। जब होल्कर और सिन्धिया इधर व्यस्त थे पेशवाने उन्हें सलाबतजंगके विरुद्ध बुला भेजा कि आप दिल्लीसे गाज़ीउद्दीनको लेकर दक्षिण आवें। गाज़ीउद्दीन अमीरुल्उमरा दिल्लीमें था। मराठोंने रोहिलोंसे ५० लाख रुपयोंका ऋणपत्र लिखवाकर उनके देशको खाली कर दिया। वज़ीर सफ़दरजंगको अहमदशाह अबदालीके आक्रमणके कारण पुनः दिल्ली जाना पड़ा। गाज़ीउद्दीन औरंगाबाद आ पहुंचा। पेशवाको उससे बड़े लाभकी आशा थी किन्तु वह विष देकर मारा गया। सलाबतजंगने बरारके पश्चिमी ज़िलोंको मराठोंको अर्पित करके संधि कर ली। मराठा सेनायें अपने स्थानोंको लौट गयीं। दूसरे वर्ष संवत् १८११ में बाजीराव सेना लेकर कर्नाटक गया। समस्त ग्रामों तथा नगरोंसे अपना कर प्राप्त किया, और बहुत सा धन एकत्र करके लौट आया। फिर

मराठोंका परस्पर विरोध

रोहिलोंका विद्रोह

वह संवत् १८१२ में गुजरात गया और अहमदाबाद मराठोंके हस्तगत हुआ। तत्पश्चात् पेशवा और धुमाजीमें गुजरातकी आधी आधी आयका निर्णय किया गया। रघुनाथराव राजपूत रियासतोंसे कर प्राप्त करता था।

दिल्लीमें गाज़ीउद्दीनका पुत्र मीरशहाबुद्दीन बलवान् हो गया यहांतक कि वज़ीर सफ़दरखांको लखनऊ जाना पड़ा। इन विवादोंमें सिन्धिया और होल्कर मीरशहाबुद्दीनके सहायक थे। ये दिल्लीके कार्योंमें अधिक भाग लेते रहे।

संवत् १८१३ में रघुनाथरावने सेना लेकर दिल्लीकी ओर और सदाशिवराव भाऊने दक्षिणकी ओर प्रस्थान किया। मैसूरके राजाने २६ लाख रुपयेकी प्रतिज्ञा की जिसमेंसे पांच लाख दिया गया। नन्जीराजका अफसर हैदरअली बड़ा चतुर था। उसके कथनपर शेष रुपया बन्द कर दिया गया। इधर पेशवा बम्बईके अंग्रेज़ोंके साथ अनेक बातोंके निर्णयमें लगा रहा। रघुनाथराव लौटते समय कुछ रुपया न लाया जिसपर सदाशिवराव भाऊने उससे कारण पूछा। रघुनाथरावने उत्तर दिया—"आगे जब कोई काम आ पड़ेगा तो तुम स्वयं जाना।" इस प्रकार परस्पर विवाद आरम्भ हो गया जिससे सर्वसाधारणमें बड़ी अपकीर्ति हुई।

अगले वर्ष देशका प्रबन्ध रघुनाथरावके अर्पण करके वह स्वयं क्षेत्रमें निकला। उसके एक ब्राह्मण प्रतिनिधिने अहमदनगरके मुसलमान दुर्गाध्यक्षको कुछ रिश्वत दे कर दुर्ग ले लिया, जिसपर सलावत जंग और उसके भाई निज़ाम अलीकी सेनायें मराठोंसे लड़नेके लिये निकलीं। इधर सदाशिवराव और पेशवा सेना लेकर आये। उदगीरके स्थानपर

उदगीरका युद्ध

घोर संग्राम हुआ जिसमें मुग़लसेनाकी बहुत हानि हुई। निज़ाम अली सन्धि करना चाहता था परन्तु सदाशिवने उसे आत्मसमर्पण करनेपर ज़ोर दिया। अन्तको निज़ाम अलीने अपनी मोहर उसके पास भेज दी, यह दर्शानेके लिये, कि वह जो चाहे उससे लिखवा ले। सन्धिपत्रसे दौलताबाद, असीरगढ़ तथा बीजापुरके कोट मराठोंको मिल गये और अहमदनगरपर उनका अधिकार स्वीकार किया गया। इन प्रान्तोंसे ६२ लाखकी वार्षिक आय थी। इससे निज़ामका राज्य अत्यन्त परिमित हो गया, और मराठोंने दक्षिणके अधिकांश भागपर अधिकार कर लिया। मराठोंके लिये यह बड़े आनन्दका समय था परन्तु एक घटनासे ही उनका निखिल आनन्द शोकसागरमें परिवर्तित हो गया।

संवत् १८६१ में मीर शहाबुद्दीनने मुहम्मदशाहके स्थान आलमगीरको सिंहासनपर बिठाया, और युवराजको साथ लेकर मुलतान और लवपुर (लाहौर) वापिस लेनेके लिये चला, जिसे अहमदशाह अब्दाली जीतकर अपने राज्यके अन्तर्गत कर गया था।

अहमदशाह अब्दाली मीरमनुको सूबेदार बना गया था। वह शीघ्र ही मर गया परन्तु उसकी विधवा स्त्री शासन करती रही। मीर शहाबुद्दीनने उसकी कन्याके साथ विवाह करके विधवाको दिल्ली भेज दिया, और अदीनाबेगको सूबेदार नियत कर दिया।

अहमदशाहका ५वाँ आक्रमण

अहमदशाहने दिल्लीपर पुनः आक्रमण किया। मीर शहाबुद्दीनने उसकी याचना की और मरे उसका प्रताप भी गया। अहमदशाह दिल्ली और मथुराको लूट कर अपने पुत्र तैमूरशाहको पंजाबका शासक और दिल्लीमें नजीबुद्दौला रोहिल्लाको मीरबख्शी नियुक्त कर गया। मीर शहाबुद्दीनने नजीब रोहिल्लाको उस पदसे हटाना चाहा, क्योंकि वह शाह उनकी ओर था इसलिये मीर शहाबुद्दीनने रघुनाथरावकी सहायतासे दिल्लीपर अधिकार कर लिया। नजीब रोहिल्ला होल्करकी कृपासे भागकर रोहिलखण्डकी रियासतमें चला गया। रघुनाथराव कुछ समयतक दिल्लीमें रहा फिर [illegible] उसे पंजाब लेनेके लिये पुनः भेजा।

रघुनाथराव प्रथमवार पंजाब गया। उसने सरहिन्दमें अब्दालीके शासकको पराजित किया। सन् १७५८ में उसने लवपुर (लाहोर)में प्रवेश किया। अदीनाबेगको वहांका शासक बनाकर और मराठोंको उसका उत्तरदाता बनाकर पेशावर लौट गया। यह एक विशाल कार्य था, इसमें रघुनाथरावने कुछ धन प्राप्त करनेके बदले बहुत ऋण ले लिया था। इसके अनन्तर सिंधिया और होल्कर बुन्देला राजाओंसे, नवाब-वाले शुजाउद्दौला, वजीर अवध और रोहिल्लोंके साथ युद्ध करते रहे। इन्हें सूचना मिली कि अहमदशाह अब्दाली क्रोधसे भरा हुआ पंजाब लेनेके लिये आ रहा है। यद्यपि रोहिल्लोंने मराठोंके साथ मित्रताका सन्धिपत्र लिख दिया था किन्तु वे और अवध वजीर अहमदशाहके साथ गुप्त पत्र-व्यवहार करते रहे। मीर शहाबुद्दीनने अब्दालीके आनेका समाचार सुनकर आलमगीरका वध करा दिया और उसके स्थानपर शाहजहां-को राजसिंहासनपर बिठाया। आलमगीरका पुत्र शाहआलम दौड़कर शुजाउद्दौलाके पास जा पहुंचा। शहाबुद्दीनने स्वयं भरतपुरके जाट राजाका आश्रय लिया।

लाहौरके मराठा शासकको अब्दालीने सिन्धिया और होल्करकी सहायता पहुंचनेसे पूर्व ही पराजित कर लिया। अब्दाली यमुना पार कर इधर आया। सिन्धिया और होल्कर पीछे हट गये। सिन्धियाकी पराजय हुई

पानीपतका तृतीय संग्राम

जिसमें उसकी एक तिहाई सेना काम आयी। पेशवाको यह समाचार इस समय विदित हुआ जब निजाम अलीके साथ सन्धिपत्र लिखा जा चुका था। सदाशिवराव और पेशवाका पुत्र विश्वास राव तीन सहस्र घुड़सवार, इब्राहिम गार्दीका तोपखाना, जो कि दक्षिणमें बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ था, लेकर दिल्लीकी ओर चले। सारे मराठा सरदारोंको महाराष्ट्रकी राष्ट्रीय ध्वजाके नीचे एकत्र होनेकी आज्ञा दी। होल्कर, सिन्धिया, गायकवाड़, इनके अतिरिक्त राजपूत रियासतोंने भी सेनायें भेजीं। राजा सूरजमल भी मिल गया। एक बार पुनः पानीपतकी भूमिपर आर्य मुसल-मानोंसे युद्ध करनेके लिये एकत्र हुए। सदाशिवराव भाऊकी [illegible] और निरंकुश उत्साहने सब काम बिगाड़ दिया। सूरजमल तथा होल्करकी सम्मति थी कि असबाब, बालक तथा अनुपयोगी तोपखाना इत्यादि सब झांसी या भरतपुरके दुर्गमें छोड़ दिये जायें। मराठों और जाटोंकी सेना मिल कर अब्दालीकी सब सामग्री रसद आदि नष्ट

[illegible]

प्रतिज्ञा की, परन्तु संधि हो जानेपर केवल टालटाल ही किया। राघोबाने

[illegible]

और भोसलेके साथ [illegible]

निज़ामकी सेनापर आक्रमण किया और बड़ी वीरतासे युद्ध किया। माधवरावने इस अवसरपर बड़ी वीरता दिखलायी। निज़ामके दस सहस्र मनुष्य मारे गये। मराठोंकी भी बहुत हानि हुई। इसके पश्चात् निज़ामके साथ नया सन्धिपत्र लिखकर सन्धि हो गयी। युद्धके उपरान्त माधवरावने जानोजी भोंसलेको उसके कपटपूर्ण व्यवहारके लिये बड़े अपशब्द प्रयुक्त किये।

निज़ामसे सन्धि

इस समय अर्थात् सवत् १८२० में पेशवाके फड़नवीसका पद बालाजी जनार्दनको दिया गया जो कि इतिहासमें नाना फड़नवीसके नामसे सुप्रसिद्ध चला आता है। इस समय मराठा राज्यका ध्यान करनाटककी ओर था। उधर मैसूरमें हैदरअली अपना बल बढ़ा रहा था।

नाना फड़नवीस

हैदरअली अत्यन्त निर्धन माता पिताका पुत्र था। इसका पितामह बड़ा दरिद्र था। इसका पिता एक साधारण सैनिक था। हैदरअली अपनी योग्यतासे कृष्णराज मैसूरके दीवानका बड़ा अफ़सर बन गया। उसने छलसे अपने स्वामीका स्थान स्वयं ले लिया। मराठोंकी अनुपस्थितिसे लाभ उठाकर उसने करनाटकमें विजय प्राप्त करना आरम्भ कर दिया। माधवराव पेशवा स्वयं सेना लेकर उसके विरुद्ध गया और उसने बड़ी वीरतासे हैदरअलीको नीचा दिखाया। धारवारका दुर्ग भी जीत लिया। इससे वर्धाके उत्तरमें सारा देश उसके अधिकारमें आ गया। इस विजयके उपरान्त पेशवा लौट आया और उसने सेनाकी बाग राघोबाको सौंप दी। राघोबाके पहुंचनेपर हैदरअलीने सन्धिके लिये प्रार्थना की और मुरारराव घोरपड़ेका समस्त देश लौटा दिया। हैदरअलीने ३२ लाख रुपया पेशवाको देनेकी प्रतिज्ञा की।

हैदरअली

माधवराव सदा अपने चाचाका आदर तथा सम्मान करता था, यद्यपि उसकी माता उसे कहती थी कि राघोबाको कारागारमें रखो। इधर राघोबाकी धर्मपत्नी अपने पतिसे सदा माधवरावके विरुद्ध बातें कहती रहती थी। माधवराव अपनी निर्बलताको भलीभांति समझता था। राघोबा निज़ाम और जानोजी दोनोंसे अपना

भयानक शत्रु हो सकता था। इसलिये एक शत्रुको निर्बल करनेके लिये पहिले माधव-रावने निज़ामसे मित्रता करके जानोजी भोंसलेसे अपना देश वापिस लेना चाहा। जब निज़ाम और मराठा सेनाने बराबर आक्रमण किया तो जानोजीने सब ज़िले लौटा दिये। उनका कुछ भाग निज़ामको दिया गया ताकि मित्रता स्थिर रहे। निज़ाम मराठोंको हैदरअलीके विरुद्ध करके उसे दबाना चाहता था।

हैदरअलीके अतिरिक्त इस समय अंग्रेज़ भी अपना बल बढ़ानेकी चिन्तामें थे। उन्होंने मुग़ल बादशाहसे कुछ उत्तरीय भाग दानमें ले लिया और मद्रास कौंसिलने सरकारोंपर अधिकार कर लिया। निज़ामने उन्हें अंग्रेज़-निज़ाम-सन्धि धमकाया कि मैं स्वयं तुम्हें नष्ट कर डालूँगा, और मराठों तथा हैदरअलीको तुमपर आक्रमण करनेके लिये उत्तेजित करूँगा। मद्रास कौंसिलने भयभीत होकर हैदरअलीसे सहयोग करना चाहा किन्तु उसने स्पष्ट अस्वीकृति दे दी। फिर उन्होंने निज़ामसे मित्रता करने-की चेष्टा की और कहा कि हम हैदरअलीको दबाने तथा मराठोंका बल रोकनेमें तुम्हारी सहायता करेंगे। निज़ाम प्रसन्न हो गया, और सात लाख रुपया वार्षिक और कुछ सामरिक सहायताके लिये उसने चार ज़िले अंग्रेज़ोंको दे दिये। जब माधवरावको यह सूचना मिली तो उसने बिना निज़ामकी मर्ज़ीके कृष्णानदी पार करके कोरा, [illegible] तथा मुद्गलगिरिपर अधिकार कर लिया और हैदरअलीसे ३० लाख रुपया नक़द करके लौट गया। इन युद्धोंका नतीजा वर्णन एक [illegible] में होता। रघोबा सेना लेकर उत्तरकी ओर गया परन्तु मल्हाररावकी मृत्युने उसके सारे निश्चयोंपर पानी फेर दिया।

मल्हारराव पुत्र खण्डेराव पहिले मर चुका था। उसका पौत्र सिंहासनपर बैठा किन्तु वह भी शीघ्र ही मर गया। इस बालककी माता अहिल्या [illegible] बाईने मन्त्रिवर लोगोंकी इच्छाके विरुद्ध राज्यकी बाग अपने हाथमें ली, और एक बड़े योग्य मराठा तुकाजी होलकरको अपना दाहिना बनाकर सेनापति बना दिया। जब तक वह जीवित रही उसने योग्यतासे बहुत शासन किया। अहिल्याबाईका शासनकाल भारतमें बहुत विख्यात है।

रघोबाने गोहदके राजाको अधीन करना चाहा परन्तु फिर तीन लाख रुपया लेकर उसे छोड़ दिया।

रघोबा अपनी ओरसे चढ़ाई करके महाराष्ट्रका राज्य दो भागोंमें विभक्त करना चाहता था। माधवरावने अपने चाचाको सम्मानसे अलग कैद करनेका निश्चय किया। उसने स्वयं मिलकर उसे समझाया कि मैं आपको [illegible] राज्यमें पूर्ण भाग देनेके लिये तैयार हूँ, और यदि आपको अच्छा [illegible] न लगे तो देशमें जहाँ चाहें जागीर ले कर लें और सुखसे जीवन व्यतीत करें। रघोबाने उत्तर दिया, नहीं नहीं मैं काशी जाकर रहूँगा और राज्यसे कोई सम्बन्ध न रखूँगा। माधवरावने कहा यह सर्वोत्तम उपाय है। रघोबाने अहमदनगर इत्यादि अपने दुर्ग माधवरावके अधीन कर दिये, और कहा

कि मैं केवल अपने सैनिकोंके वेतनका तथा अपने कुटुम्बका उचित प्रबन्ध करना चाहता हूं। माधवरावने पचीस लाख रुपया तीन मासके भीतर देनेकी प्रतिज्ञा की और गोदावरीके तटपर एक जागीर उसके कुटुम्बके लिये निश्चित कर दी जिससे १३ लाख रुपयेकी वार्षिक आय थी। यद्यपि इस समय राघोबाने यह सब मान लिया परन्तु वह किसी अवसरकी प्रतीक्षामें था।

उस समय माधवरावकी सहायताके लिये अंग्रेज़ और मुहम्मद अली एक ओर और निज़ाम तथा हैदरअली दूसरी ओरसे इच्छुक थे। बम्बई कौंसिलने मास्टनको इस मतलबसे पूना भेजा कि वह मराठा दरबारमें अपना सम्बन्ध उत्पन्न करके मराठोंको निज़ाम आदिके साथ मिलनेसे रोक रखे।

उस समय राघोबाने जानोजी भुसाजी गायकवाड़ और होलकरके दीवान गंगाधरकी सहायतासे सेना एकत्र करके विद्रोह किया। माधवराव सेना लेकर पहुंचा और राघोबाको कैद करके पूना ले आया और वहां महलोंमें रक्षकोंके अधीन रखा। अब उसे जानोजीको सम्भालनेका विचार आया, इस लिये उसने निज़ाम और हैदरअलीके साथ सहयोग करना चाहा ताकि वगदेशके अंग्रेज़ भयसे जानोजीके साथ न मिलें। निज़ाम और माधवरावकी सेनायें बरारकी ओर चलीं। जानोजीने पुरातन मराठा विधिपर युद्ध आरम्भ किया। माधवराव नागपुर पहुंचा। जानोजी इधर उधर होकर पूना आ पहुंचा और लूटना प्रारम्भ किया। आखिर जानोजीका भाई मोदाजी उसके विरुद्ध विद्रोह करने लगा। उससे भयभीत होकर जानोजीने पेशवासे सन्धि कर ली, और वे ज़िले पेशवाको लौटा दिये, और प्रतिज्ञा की कि पेशवाकी सहायताके लिये मैं प्रत्येक समय एक सेना उपस्थित रखूंगा।

राघोबाका विद्रोह

पेशवाने विसाजी किशनके साथ रामचन्द्र गणेश, तुकाजी होलकर और महादाजी सिन्धियाको दिल्लीकी ओर भेजा और हैदर अलीकी ओर स्वयं ध्यान दिया। हैदरअलीने कर देनेसे इनकार कर दिया था, इस लिये माधवरावने जाकर कई दुर्ग विजित किये। नन्दीगुलके लेनेमें कुछ मास व्यतीत हुए, और एक आक्रमणमें उसका भाई नारायणराव आहत हुआ। हैदरअली इतना डरता था कि तीन कोस तक माधवरावके समीप न आता था। माधवराव अस्वस्थ हो गया और वह त्र्यम्बकको सेनापति बना कर स्वयं पूना चला गया। हैदर अली सिरिंगपट्टममें अपनी तोपें और सामान छोड़ कर भाग गया। मराठा सेना बंगलोर पहुंची और हैदरअलीने सिरिंगपट्टममें डेरे आ जमाये, सन्धिपत्रके अनुसार अंग्रेज़ोंको बारंबार सहायताके लिये लिखता रहा परन्तु अंग्रेज़ोंकी ओर से उसे कोई सहायता न मिली। अन्तको हैदरअलीने सन्धि करनी चाही और संवत् १८२९ में सन्धिपत्र लिखा गया, जिससे हैदरअलीने ३६ लाख रुपया व्यय और १४ लाख वार्षिक कर देना स्वीकार किया।

हैदरअलीसे युद्ध

इधर अहमदशाह अब्दालीने शाहआलमको सिंहासनका स्वामी स्वीकार किया। शाहआलम उस समय अंग्रेज़ोंके साथ युद्धमें लगा हुआ था। शुजाउद्दौला

उसकी वार्षिक आय दस करोड़ रुपया थी। पापक्रियाओंमें पटेल तथा सूबेदार दण्ड देते थे। दीवानीमें पंचायतों द्वारा निर्णय होता था।

रामशास्त्री

समस्त बातोंमें रामशास्त्री उसकी सहायता करता था। रामशास्त्री महाराष्ट्रमें बड़ा भद्र, शुद्धमति और प्रतिष्ठित व्यक्ति हुआ है। वह न्यायाधीश था और उसके निर्णय अभी तक महाराष्ट्रमें प्रमाण माने जाते हैं। जब माधवरावने अधिकार अपने हाथमें लिये रामशास्त्रीने उसे धर्म तथा न्यायकी शिक्षा देनेमें बड़ा परिश्रम किया। इसके सम्बन्धमें एक बड़ी मनोरञ्जक कथा बतायी जाती है। एक समय कुछ मनुष्योंके संगमें माधव रावको योगाभ्यास करनेकी बड़ी लालसा उत्पन्न हुई। शास्त्रीजीने नवयुवक पेशवाको रोकना उचित न समझा। एक दिन जब वह उसके पास गये तो माधवराव समाधि लगाये बैठा था। शास्त्रीजी लौट गये। दूसरे दिन उन्होंने बनारस जाकर रहनेका विचार प्रकट किया। पेशवाने कारण पूछा और साथ ही कहा मैं योगमें निमग्न था अतएव मिल न सका। योग करना अत्यन्त पवित्र काम है। शास्त्री जीने उत्तर दिया यह सर्वथा सत्य है। योग ब्राह्मणोंका धर्म है परन्तु फिर राज-पाट त्याग देना चाहिये। जब राज्यका कार्य आरम्भ किया है तो प्रजाके सुखका ध्यान प्रथम कर्तव्य है नहीं तो राजगद्दी छोड़ कर उसी ओर लग जाओ। माधवरावने अपना दोष स्वीकार कर लिया और अपना पथ बदल दिया।

राघोबाका पत्र-व्यवहार

माधवरावकी मृत्युपर मराठा-साम्राज्यमें असहयोगका बीज अशान्ति उत्पन्न कर रहा था। माधवराव अभी अस्वस्थ था कि राघोबाने स्वयं पेशवा बननेके लिये हैदरअली तथा निज़ाम अलीके साथ पत्रव्यवहार करना आरम्भ किया। यह पत्रव्यवहार प्रकट हो गया। इसपर कई मनुष्य जो उसमें सम्मिलत थे कैद किये गये। राघोबापर अधिक कठोरता की जाती, परन्तु माधवरावने बुद्धिमत्तासे अथवा मूर्खतासे देख लिया कि राघोबाके बिना पीछे निर्वाह कठिन था। उसने राघोबाको पास बुला कर अपने भाई नारायण रावके साथ सन्धि करायी और एक प्रकारसे दोनोंको समझाया कि मराठा-राज्यकी रक्षा तथा उसके लाभको दृष्टिमें रख कर दोनों परस्पर एकता और प्रेमका बर्ताव करें। उसने राघोबाके मित्र सुखाराम बापूको बुलाकर दीवान बना दिया। राज्यसम्बन्धी बातोंमें नानाफ़ड़नवीस और युद्धसम्बन्धी कार्योंमें मुरारा फड़नवीस उसके मन्त्री निश्चित हुए। अपने भाईका हाथ अपने चाचा राघोबाके हाथमें देकर माधवराव तो इस लोकसे प्रस्थान कर गया किन्तु मराठा-राज्यके भाग्य उसके साथ ही अस्त हो गये।

आठवाँ प्रकरण।
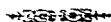
मैसूर राज्यका संक्षिप्त आरम्भिक वृत्तान्त।

संवत् १५८१ में कानराजने जो कि यादव राजपूत जातिसे था और हाथावामें शासन करता था, हाथावासे अपनी राजधानी मैसूरमें परिवर्तित कर ली। विजय नगरके नाश पर मैसूरका बल बढ़ने लगा।

संवत् १६२८ में वहांके राजा हीरा कानराजने सिरिंगपटमको विजित किया। संवत् १६९५ में मैसूरका सबसे प्रसिद्ध राजा कान्तिदेव राजसिंहासनपर बैठा। उसके गुण अभी तक भाट लोग गाते हैं और उसके विषयमें मैसूरमें सर्व साधारण मनुष्योंमें कथायें फैली हुई हैं। उसकी पाषाण-शय्या मैसूरके प्रासादोंमें पायी जाती है।

राजा कान्तिदेव

उसका उत्तराधिकारी दूध देवराज हुआ जिसके समयमें मैसूर एक राज्य बन गया। उसके राज्य-कालमें मैसूरने त्रिचनापल्लीसे कर लेना प्रारम्भ किया। उसने मदूरापर आक्रमण किया और मराठोंको एक बड़े युद्धमें पराजित किया।

उसके पश्चात् चकदेव राजके दूत औरंगजेबके पास संवत् १७५७ में गये। औरंगज़ेबने उनका स्वागत किया, और उनसे मिल कर आनन्द प्रकट किया, और राजाको दंत सिंहासन पर बैठनेका अधिकार दिया। चकदेवकी सन्तान अत्यन्त निर्बल तथा अयोग्य निकली। उसके पौत्र दूधकिशनराजके कालमें मराठोंने संवत् १७८१ में नवाब करनोल और नवाब कदापाके साथ मिलकर मैसूरपर आक्रमण किया, और उसे रुपया देकर उन्हें पीछे हटना पड़ा। दो वर्ष उपरान्त मराठोंने पुनः आक्रमण किया और बहुत सा धन प्राप्त किया। जब राजा दिन प्रतिदिन निर्बल होते गये तो राज्य मंत्रीकुलके हाथ चला गया। मंत्री दलवाई कहलाते थे, और राजकुलकी एक शाखा-से थे। संवत् १७९३ में देवराज मंत्री बड़ा शूरवीर तथा योग्य व्यक्ति था। उसने कर-नाटकके दोस्त अली नवाबको पराजित किया। देवराजने जीवनके अन्तिम दिनोंमें सारे अधिकार अपने भाई ननजोराजके अर्पण कर दिये। जब करनाटकमें अंग्रेजों तथा फ्रान्सीसियोंका युद्ध हो रहा था तो मैसूर सेना भी उसमें भाग ले रही थी। जब नन-जोराज देवनालीपर आक्रमण कर रहा था तो उसकी सेनामें एक सैनिक हैदरअली भरती हुआ और उसने ऐसा उपाय बताया कि जिससे ननजो उस आक्रमणमें सफल हुआ। हैदरअलीसे वह इतना प्रसन्न हुआ कि उसे थोड़ीसी सेनाका स्वामी बना कर एक दुर्गमें अफसर नियत कर दिया।

हैदरअलीका पिता फतह मुहम्मद सीराके नवाबका सेना नायक था। हैदर अली सात वर्षका था कि उसका पिता मर गया। वह लिखना पढ़ना न जानता था।

युवावस्था उसने आखेट आदि करनेमें व्यतीत कर दी। उसके कुछ काल पश्चात् वह सेनामें भरती हुआ।

संवत् १८०८ में हैदरअली फ्रान्सीसियोंकी सहायतामें त्रिचनापल्लीमें अंग्रेज़ोंके विरुद्ध लड़ता रहा। उसके दूसरे वर्ष वह डण्डीगुलका दुर्गाध्यक्ष बनाया गया। उसी समयसे वह अपनी वृद्धिके उपाय सोचने लगा। उसने अपना एक ब्राह्मण प्रतिनिधि खाण्डेराव मैसूर दरबारमें नियुक्त कर दिया जो उसे सब बातोंसे सूचित करता था।

संवत् १८१५ में देवराज मर गया और मैसूरकी सेनाने वेतनके लिये विद्रोह कर दिया। हैदरअली उस समय मैसूर पहुंचा और उसने विद्रोहको शान्त किया। इससे उसका बल और भी बढ़ गया। उसने अपने अधीन एक सेना सिरिंगपट्टममें रख दी, और जब मराठोंने उसपर आक्रमण किया तो उसने उनको पराजित किया। इसकी प्रतिष्ठा अब बहुत अधिक हो गयी। अब यह अपने सहायक नन्दीराजके विरुद्ध हो गया। उसे हटा कर खाण्डेरावको दीवान बना दिया। खाण्डेरावने राजके साथ मिल कर हैदर अलीके विरुद्ध विद्रोह किया। उसमें हैदर अलीने बड़ी निपुणतासे उन्हें पराजित किया और स्वयं मैसूरपर अधिकार कर लिया और राजाको वेतन देकर अध्यक्षतामें रख लिया। वास्तविक शासकको अपने हाथमें कठपुतली बना कर रखनेकी नीति उस समय भारतवर्षमें साधारण हो गयी थी। अंग्रेज़ोंने भी इसी नीतिको अपने लाभके लिये युक्त किया।

चतुर्थ खण्ड।

सिक्ख राज्यकी उन्नति।

पहिला प्रकरण।

सिक्ख सम्प्रदायकी स्थापना।

जब मुग़ल-साम्राज्यकी अवनति आरम्भ हुई तो न केवल मराठा तथा सिक्ख-राज्य खड़े हो गये बल्कि आर्यावर्तके अन्दर और कई राज्य करनेवाले वंश उत्पन्न हो गये। उनमेंसे निज़ाम, वज़ीर अवध और बंगदेशके सूबेदार जो मुग़लोंकी ओरसे शासक थे दिल्लीको अशक्त देखकर स्वतंत्र हो गये। उनके अतिरिक्त इस समय कई ऐसे चतुर शूरवीर निकले जिन्होंने समय पाकर अपना अपना राज्य स्थापित कर लिया। हैदरअली और सूरजमल यह दो बड़े उदाहरण हैं। सूरजमलकी स्थापित की हुई जाट रियासत भरतपुरमें बड़ी शक्तिशाली थी। लेकिन इन वीर-पुरुषोंका उद्देश्य मनुष्यत्वका आनन्द उठानेके सिवाय और कुछ न था। वे देशगत विचारोंके परिचायक न थे।

स्वतंत्र राज्योंका आविर्भाव

केवल मराठा राज्य और सिक्ख राज्य ही लोगोंके मनोगत भावों और विचारों-के परिणाम थे। इन दोनों राज्योंके मूल उस नये धार्मिक जीवनमें पाये जाते हैं जो उस समय भारतवर्षमें स्थल स्थलपर दिखलायी देता है। उन्होंने मुग़लोंकी निर्बलतासे लाभ ही नहीं उठाया किन्तु उनको क्षीण करनेका भार भी अपने ऊपर लिया। इसी कारण हमने मराठा-राज्यकी उन्नतिके उपरान्त सिक्ख-राज्यकी उन्नतिका वृत्तान्त लिखना उचित समझा है। हम सिक्ख-राज्यको आर्यजातिके जीवनका पुनरुत्थान समझते हैं। हमें यह बात एक चमत्कारसे कम नहीं प्रतीत होती कि आक्रमणोंका वह प्रचण्ड प्रवाह जो आठ सौ वर्ष पर्यन्त पश्चिमोत्तरसे भारत-वर्षमें आता रहा सिक्खोंके बलसे न केवल रुक गया किन्तु उल्टी दिशामें बहने लगा। राजा जयपालके असफल आक्रमणके अनन्तर प्रथम बार सिक्ख-सेनाने न केवल पेशावर और सीमान्तको विजित कर पञ्जाबमें मिलाया परन्तु अपने राज्यको काबुल तथा ग़ज़नी तक फैलानेकी चेष्टा की। जिस प्रकार तैमूरलंगका नाम आर्योंके लिये भयानक प्रतीत होता है उसी प्रकार हरिसिंहका नाम ग़ज़नीमें पठान बालकोंको भयभीत करनेके लिये प्रयुक्त होता है।

यह विचार करना भी ठीक नहीं कि सिक्ख-राज्यका शासन केवल एक धार्मिक सम्प्रदायके लोगोंपर था। महाराजा रणजीतसिंहके बड़े बड़े सेनापति तथा मन्त्री भिन्न भिन्न वर्णोंके आर्य थे जिन्होंने बड़े त्याग तथा पराक्रमसे सिक्ख राज्यको सुव्यवस्थित किया।

इस नये प्रश्नसे कि सिक्ख हिन्दू (आर्य) हैं या नहीं हमारा कुछ सम्बन्ध नहीं, परन्तु इतना कह देना आवश्यक है कि यह प्रश्न इस बार [illegible]

वे अपने साथियोंको लेकर जहांगीरके कैम्पके साथ काश्मीर तक गये। गुरु हरगोविन्दके स्वतन्त्र स्वभाव तथा कुछ रुपयेके झगड़ेके कारण जहांगीर असन्तुष्ट होगया और उन्हें ग्वालियरके कोटमें कैदकर दिया। वहांपर गुरु हरगोविन्दने बन्दियोंमें प्रचार करना आरम्भ कर दिया। गुरुके सहस्रों शिष्य ग्वालियर जाते और उन दीवारों-को चूमते थे जिनके अन्दर उनके गुरु बन्द थे। अन्तको बादशाहने उन्हें मुक्त कर दिया। इस परिवर्तित नीतिके सम्बन्धमें एक कथा है। आरम्भसे ही गुरुके सामने गद्दीपर बैठने समय एक सेली और एक तलवार उपस्थितकी जाती थी कि इन दोनोंमें वह जो चाहे चुन ले। पहिले चार गुरुओंने केवल सेलीको हाथमें लिया। गुरु हरगो-विन्दने सेलीके बदले तलवारको ले लिया और तलवारसे काम करना आरम्भ किया। शाहजहांके कालमें गुरु हरगोविन्दने लाहौरके नवाबके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। एक सिक्ख तुर्किस्थानसे कुछ घोड़े ला रहा था। उन्हें लाहौरके नवाबने छीन लिया, और एक घोड़ा काज़ीको उपहार दिया। गुरु हरगोविन्दने वह घोड़ा मोल लेनेके बहानेसे काज़ीसे ले लिया। इसके अतिरिक्त काज़ीकी कन्या गुरुके साथ चली आयी। इसपर सात सहस्र शाहीसेना अमृतसर पहुंची। गुरुने केवल पांच सहस्र सिक्खोंसे युद्ध करके शाहीसेनाको पराजित किया। एक और समयपर एक सिक्ख नवाबके दो घोड़े उड़ा लाया। शाहीसेना भेजी गयी। उसका नेता मारा गया और सैनिक भाग निकले। गुरु हरगोविन्दने छः सात बार शाहीसेनासे युद्ध किया, और कई बार परास्त होकर भी उन्हें इधर उधर निकल जाना पड़ा।

गुरु हरगोविन्द अब भटिण्डाके वनोंमें अपना समय व्यतीत करने लगे। जब लौटे तो नवाबने गुरुके फूका भाई पैन्देखांको बदला लेनेके लिये भेजा। गुरु हर-गोविन्दने अपने हाथसे उसका वध किया। जब एक और मुसलमान तलवार लेकर बढ़ा तो गुरुने अपनी रक्षा करके उसपर वार किया और कहा कि 'इस प्रकार तलवार-का प्रयोग किया जाता है।' वह सैनिक गतप्राण हो गुरु हरगोविन्दके चरणोंमें गिर पड़ा।

गुरु हरगोविन्दने अपने शिष्योंके हृदयोंमें अद्भुत प्रेम तथा त्यागका भाव उत्पन्न कर दिया था। जब संवत् १७०२में गुरु हरगोविन्दका देहान्त हो गया तो एक राजपूत शिष्य जलती चितापर चढ़ गया और अग्निमें भस्मीभूत होता हुआ अपने गुरुके चरणोंमें जा मिला। एक जाटने भी ऐसा ही किया, और कितने शिष्य भस्मीभूत होनेको तैयार थे पर गुरु हररायने उनको रोक लिया।

गुरु हरराय

हरगोविन्दके पुत्रकी मृत्यु हो गयी थी इस लिए उनके पौत्र हरराय गद्दीपर बैठे। गुरु अर्जुनने धन एकत्र करना आरम्भ किया था। गुरु हरगोविन्दने उसमें सांग्रा-मिक-शक्ति उत्पन्न कर दी। इस प्रकार सिक्ख धार्मिक सम्प्रदायसे राजनीतिक-शक्तिमें परिवर्तित हो गये। गुरु हररायने दाराशि-कोहकी उस समय सहायताकी जब वह औरंगज़ेबके साथ युद्धकर रहा था। और कोई बड़ी घटना इनके समयमें नहीं हुई। गुरु हररायने प्रेम और दयालुतासे अपने धर्मको फैलाया। संवत् १७१८ में उनका देहान्त हो गया।

गुरु हररायके दो पुत्र थे—रामराय और हरकिशन। हरकिशनकी अवस्था पांच वर्षकी थी। हररायने हरकिशनको उत्तराधिकारी चुना। परंतु दोनों भाइयोंके लिये दो पक्ष हो गये। औरंगज़ेब न्यायाध्यक्ष बनाया गया। उसने हरकिशनकी योग्यतासे प्रसन्न होकर उन्हें गुरु अंगीकार किया। अभी वे दिल्लीमें ही थे कि शीतलासे पीड़ित होकर संवत् १७२१में मर गये। गुरु हरकिशनने मरते समय कहा कि मेरा उत्तराधिकारी गोइन्दवालके समीप बुकाला ग्राममें रहता है। यहांपर गुरु हरगोविन्दके सुपुत्र तेगबहादुरने पटनेमें चिरकाल रहनेके उपरान्त लौटकर वास किया था।

गुरु हरकिशन

अब गुरु तेगबहादुरने गद्दीको सुशोभित किया। रामरायके विद्रोहसे उन्हें दिल्लीमें उपस्थित होना पड़ा। औरंगज़ेब उन्हें दम्भी समझकर दबाना चाहता था किन्तु जयपुरके राजा जयसिंहने औरंगज़ेबको समझाया कि वे साधुशील व्यक्ति हैं। कुछ समयके लिये तेगबहादुर जयसिंहके साथ बंगदेश तथा आसामको गये। वहां उन्होंने कामरूपके राजाको अपना शिष्य बनाया। पंजाब लौटनेपर वे सिक्खोंकी अवस्थाके अनुसार अपने धर्मप्रचारमें प्रवृत्त हो गये। पर रामराय औरंगज़ेबसे यही कहता रहा कि वे अपने पिता हरगोविन्दका अनुकरण करके राजनीतिक बलकी स्थापना करनेमें लगे हुए हैं। यहां तक तो सच है कि पंजाबमें इस समय गुरुको आपत्तिरक्षक समझते थे। कहा जाता है कि काश्मीरके ब्राह्मण गुरुके पास आये और प्रार्थना की कि आप धर्मकी रक्षा करें। गुरु तेगबहादुर अपने पुत्र गोविन्दको अपना उत्तराधिकारी बनाकर पांच सौ साथियोंके साथ दिल्लीकी ओर चल पड़े। इधर औरंगज़ेबने उनको पकड़नेकी आज्ञा दे दी थी। जब आगराके समीप गुरु तेगबहादुर क़ैद किये गये तो केवल एक शिष्य मतीदास उनके साथ था। औरंगज़ेबने अपने क़ाज़ीको उनके पास भेजकर उनको अपने धर्ममें लानेका यत्न किया परन्तु असफल हुआ। आख़िर संवत् १७३२में मतीदासको आरेसे चिरवा दिया और गुरु तेगबहादुरका वध करा दिया। गुरु तेगबहादुरके दो शिष्य जो पिता पुत्र थे किसी प्रकार दिल्ली कोटसे अपने गुरुका शव निकाल लानेके लिये गये। पिताने अपना शरीर आप काटकर गुरुके शरीरके स्थानपर रख दिया कि शत्रुओंको शीघ्र पता न लग सके, पुत्र अपने गुरुके पवित्र शरीरको बिना भाइयों और मोरचासे निकालकर लाया, यह एक अत्यन्त विलक्षण तथा उत्साह दिलानेवाली कथा है।

गुरु तेगबहादुर

हिन्दुओंका अगर तो भाइ हों, इनके साथ आर्यावर्तका राज्य खालसाके हाथमें होना चाहिये। यह क्रिया जाति या देशके लिये न रही बल्कि यह साम्प्रदायिक हो गयी। इसमें सिक्खोंका दोष न था। उस कालके लोग इतना ही समझते थे। राजपूत राजपूतोंका राज्य चाहते थे, मराठे मराठोंका, सिक्ख सिक्खोंका और मुसलमान मुसलमानोंका।

"पोन्छ" प्रान्तका रहने वाला नारायण दास नामक एक व्यक्ति था। उसे आखेटका बड़ा शौक था इसलिये अनुमानसे कहा जा सकता है कि वह क्षत्रिय रहा होगा।

बन्दा वीर कौन था?

एक दिन आखेट करके वह एक हरिणी लाया। जब उसका उदर फाड़ा तो उसमेंसे एक बच्चा निकला। उसके हृदयमें दयाका सचार हो गया। उसने न केवल आखेट करना छोड़ दिया किन्तु गार्हस्थ्यका त्यागकर वैराग्य धारण कर लिया। उसका नाम लक्ष्मणदास हो गया। लक्ष्मण वैरागी दक्षिणमें जाकर रहने लगा। साधारण पुरुषोंका विचार था कि उसने भूत वशमें कर रखे हैं और वह बड़ी शक्ति वाला सिद्ध है।

गुरु गोविन्दसिंह अपने चारों पुत्रों तथा अपने समस्त सिक्खोंके समाप्त हो जाने पर निराश होकर दक्षिणकी ओर चले गये। वे लक्ष्मण वैरागीसे जाकर मिले।

बन्दाका पराक्रम

वह उनके आनेपर प्रतिष्ठासे हाथ बांधकर खड़ा हो गया और बोला "मैं आपका बन्दा" हूं। इससे "बन्दा" नाम प्रसिद्ध हुआ। गुरु गोविन्दसिंहने उसे धर्म तथा जातिकी रक्षा करनेके लिए पजाब भेजा। सिक्खोंने उसे अपना नेता स्वीकार किया। उसने आते ही सरहिन्दका दुर्ग विजित करके वहांके शासकका वध किया और सम्पूर्ण सेनाको काट डाला। सरहिन्दका वह कोट गिरा दिया जहां गुरुके बालक दबाये गये थे और बहुत सी मसजिदें उठा दीं। उसने सरमोरके एक दुर्गपर अधिकार कर लिया। जब बहादुरशाहको यह सूचना मिली तबतक वह मराठोंके साथ सन्धि कर चुका था। वह सीधा पजाबकी ओर आया। बन्दा वहांसे निकलकर जम्मू जा पहुंचा। उसने पजाबके बड़े बड़े भागोंसे कर प्राप्त करना आरम्भ किया। बहादुरशाह लाहौर पहुंचकर सवत १७६९ में मर गया।

बन्दाकी सफलताका रहस्य यह था कि मुसलमान सेनाओंमें भी यह बात फैल गयी कि बन्दा बड़ा सिद्ध पुरुष है। उसके भूत उसके शत्रुका वध कर देते हैं। जब

बन्दाकी सफलताका रहस्य

एक अफसर जो उसके साथ युद्ध करने गया उसके तीरका निशाना बना तो कोई और अफसर उसके सामने न जाता था। बन्दा अपनी सेना लिये इधर उधर फिरता था और देशपर विजय प्राप्त करता एव मुसलमानोंको लूटता था।

बन्दाने अपनी सफलता देखकर उचित समझा कि अपने कामपर राजनीतिक रग चढ़ावें। उसने साम्प्रदायिक शब्द "वाह गुरुकी फतह" को "जय धर्म" में परिवर्तित कर दिया। इससे तथा एक दो और बातोंसे सिक्ख सेनामें कुछ असन्तोष फैल गया।

बन्दाका अन्त

अपने राज्यमें मिला लिया और मीरमनुको अपनी ओरसे शासक रहने दिया। उस समय खालसाने फिर उठकर अमृतसर और पर्वतोंका मध्यवर्ती प्रान्त अपने अधिकारमें कर लिया। अदीनाबेग उनके विरुद्ध सेना लेकर चला और दिवालीके दिन उन्हें पराजित किया। अदीना बेग उनसे मित्रता रखना चाहता था अतएव उसने नाममात्रका कर लेकर उन्हें छोड़ दिया बल्कि उनके एक नेता जस्सा सिंह तरखानको और सिक्खोंसहित अपनी सेनामें ले लिया।

जब मीर शहाबुद्दीनने मीर मनुकी कन्यासे विवाह करके पंजाब ले लिया तो उसने अदीना बेगको शासक निश्चित किया। सवत् १८१२में अहमदशाहने फिर आक्रमण किया। वह अपने पुत्र तैमूरको शासक बनाकर छोड़ गया। तैमूरने प्रथम कार्य यह किया कि जस्सासिंह कलालके विरुद्ध, जिसने रामरोनी कोटपर पुनः अपना शासन स्थापित कर लिया था, सेना भेजी और सब दुर्ग तथा ग्राम नष्ट कर दिये।

लाहौरपर सिक्खों का अधिकार

इसपर समस्त दिशाओंसे सिक्ख एकत्र हुए। लाहौर उनसे भर गया। तैमूर दुःखित होकर लाहौर छोड़कर चनावकी ओर चला गया। जस्सासिंहने लाहौरपर अधिकार करके अपने नामकी मुद्रा प्रचलित की। मुद्रापर यह वाक्य लिखा गया "खालसाकी कृपासे जस्सासिंह कलालने अहमदका देश जीतकर इसे प्रचलित किया।"

तीन वर्षके पश्चात् जब अदीना बेगने रायोंको अपनी सहायताके लिये बुलाया तो सिक्ख लाहौर छोड़कर भाग गये। अहमदशाह फिर आया और उसने मराठोंको पानीपतके मैदानमें पराजित किया। अहमदशाहके लौट जानेपर सिक्ख नेताओंने भिन्न भिन्न स्थानोंमें दुर्ग बनाना आरम्भ किया। चढ़तसिंहने एक दुर्ग गुजरांवालामें बनाया। जब दुर्रानीका सूबेदार उससे युद्ध करनेको आया तो सिक्ख समस्त दिशाओंसे एकत्र हो गये। उन्होंने उसे भगा दिया। उसका सब सामान लूट लिया। उसी वर्ष सब सिक्ख अमृतसरमें एकत्र हुए। उन्होंने मालेरकोटलाको जीत लिया, और जण्डियाला [illegible] अब्दाली फिर आया [illegible] किया। इस युद्ध [illegible]

कुपिदानाका युद्ध

दशाह आलासिंहकी वीरतापर इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उसे पटियालाका राजा बना दिया। लौटते समय उसने एक आर्य काबलीमलको लाहौरका शासक नियुक्त किया, किन्तु जाते जाते अमृतसरका मन्दिर गिराता गया। तालाबमें गौओंका वध किया। मसजिदोंके भित्तपर सिक्खोंके सिर रक्खे, और उनके रक्तसे मसजिदोंको पवित्र किया।

इस क्रूरतासे सिक्ख लोग अधिक उत्तेजित हुए। समस्त पंजाबमें एक अग्नि प्रज्वलित हो गयी। सिक्खोंकी संख्या दिन प्रतिदिन बढ़नी आरम्भ हो गयी। लोगोंको विश्वास हो गया कि सिक्खजाति धर्मकी रक्षाके लिये उत्पन्न हुई है। प्रायः पंजाबके जाट और राजपूत सिक्खोंमें मिलने लगे। उन्होंने एकत्र होकर पहिले कसूरपर अधिकार किया। मालेर कोटलाके शासक वध किया, और चालीस सहस्र अफ्गानोंने

सिक्खोंके [illegible] का प्रसार

अ र ब
सा ग र
ब गा ल
की
खा ड़ी
सवन १८९३ का भारत
ब्रिटिश शासन के अधीन
ब्रिटिश संरक्षित राज्य

सरहिन्दपर आक्रमण करके वहांके शासकको नीचा दिखाया। इस प्रकार शतद्रु नदी (सतलज) से यमुना तकका समस्त प्रान्त सिक्खोंके अधिकारमें आगया। सिक्ख फिर सहारनपुर होते हुए दिल्लीकी ओर बढ़े। उन्होंने भरतपुरके जाटोंके साथ मिलकर दिल्लीको जा घेरा। अहमदशाहके पुनः आनेपर सिक्ख वहांसे लौट आये। अहमदशाह घरमें विवादके कारण शीघ्र लौट जा रहा था, सिक्खोंने उसका पीछा किया और उसकी संपत्ति लूट ली। काबलीमलको लाहौरसे निकालकर उन्होंने झेलम तकका प्रान्त अपने अधिकारमें कर लिया। मसजिदें गिरा दीं और उनकी नींवोंको अफगानोंके हाथोंसे सुअरके रक्तसे धुलवाया। फिर संवत् १८२१में सिक्खोंका गुरुमता अमृतसरमें हुआ, वहांपर खालसाका राज्य प्रसिद्ध किया गया और नयी मुद्रा प्रचलित की गयी जिसपर 'देग' 'तेग' और 'फतह' ये तीन शब्द थे।

सिक्खराज्यका बारह मिसलें

इसके उपरान्त दो वर्ष सुखसे व्यतीत हुए। इन दो वर्षोंमें सब स्थानोंसे खालसाने अमृतसरमें दीपमालाके समय एकत्र होकर फिर गुरुमता किया। वे दरबार साहबके सम्मुख अपने सब द्वेषों तथा विवादोंको भुला देते थे, और गुरुवाणीको सुनकर सब बातोंका सर्वसम्मतिसे निर्णय करते थे। इस गुरुमतासे समस्त विजित-देशके राज्य-प्रबन्धका निर्णय किया गया। समस्त देश १२ बड़े नेताओंमें विभक्त किया गया। कुछ कालके उपरान्त उन्होंने थोड़ा थोड़ा भाग अपने साथियोंको दिया। ये १२ प्रान्त १२ मिसलें कहलाते थे। इनके नाम तथा विभाग इस प्रकार थे—

(१) मिसल भंगिया (इनके नेता भंग पीते थे।) लाहौर, अमृतसरसे झेलमतकको यह सबसे बड़ी मिसल थी।

(२) निशानी मिसल जो कि निशान उठाकर ले जाते थे।

(३) शहीदी या निहंग मिसल, जोकि शहीदोंकी सन्तान थे। इन दोनों मिसलोंके स्थान करनाल और फिरोजपुरके मध्यमें थे।

(४) रामगढ़िया मिसल (रामरौनी दुर्गसे) अमृतसरके समीपस्थ देश, पर्वत की ओर।

(५) नकिया मिसल, लाहौरके दक्षिणमें रावीके तटपर।

(६) आहलूवालिया, व्यासके दक्षिणोत्तर तटके साथ।

(७) कन्हैया मिसल, अमृतसर तथा पर्वतोंके मध्यका प्रान्त।

(८) सिंहपुरी मिसल, व्यासके पूर्वकी ओर और सतलजके मध्य जहां दोनों नदियां मिलती हैं।

(९) शकर चकिया मिसल। भंगी मिसलके दक्षिणमें, चनाब और रावीके मध्य।

(१०) डेलेवाल मिसल, सतलजके ऊपर दाहिने तटपर।

(११) करोड़ सिंहिया या पञ्ज गढ़िया, जालंधर दोआबमें।

(१२) फुलकिया मिसल, आलासिंहकी मिसल, भटिण्डा और मानसाके मध्य, और सरहिन्द तथा दिल्लीके मध्यमें।

करोड़सिंहिया सरदार बघेलसिंह यमुनापार नजीबुद्दौलाको दबा रहा था कि दिल्लीसे बादशाही सेनाने दोनोंके विरुद्ध प्रस्थान किया और करनाल पुनः ले लिया। जस्सासिंह और बघेलसिंह मुग़लसेनाके साथ संधिकी धुनमें लगे हुए थे। जब लाहौरसे सिक्खसेना उनकी सहायतामें पहुंची तो मुग़लसेना तत्काल दिल्ली लौट गयी।

नजीब रुहेलाका पुत्र ज़ाब्ताख़ां सिक्खोंको बहुत चाहता था, और सिक्खोंकी सहायतासे दिल्लीमें अपना राज्य स्थापित करना चाहता था। यहां तक कहा जाता है कि उसने विधिपूर्वक "पाहुल" (अमृत) लेकर अपना नाम धर्मसिंह रख लिया था।

जस्सासिंह तरखान रामगढ़ियाने पंजाबसे निकल कर हिसारके समीप आ डेरा बनाया और वहांसे कर प्राप्त करता दिल्ली तक चला गया। उसके पश्चात् फुलकियां तथा करोड़सिंहिया सरदार गंगापार होकर रुहेलखण्डसे भी कर प्राप्त करते रहे। महादाजी सिंधियाके साथ जो कि दिल्लीका शासक था इनका यह सन्धिपत्र लिखा गया कि दो तिहाई खिराज सिंधिया और एक तिहाई सिक्खोंको होगी। इसका प्रयोजन स्पष्टतया अवधको विजित करना था।

पंजाबमें इस समय जयसिंह कन्हैया बड़ा बलवान् सरदार था। उसने चढ़त-सिंहके पुत्र महासिंहको अपनी रक्षामें रखा। महासिंह भी बड़ा शूरवीर था।

महासिंह

उसने पहिले रसूलनगर मुसलमानोंसे जीता। अन्तको सम्वत् १८४२ में उसने जयसिंहका ध्यान न करके जम्मूके लूटमें शामिल होकर बहुतसा रुपया प्राप्त किया। जयसिंह इतना अप्रसन्न हुआ कि दोनोंमें युद्ध होने लगा। महासिंहने जस्सासिंह तरखान रामगढ़िया और राजा संसारचन्द (जयसिंहके शत्रु) को अपनी सहायतामें बुलाया। कन्हैया मिसलकी पराजय हुई। संसारचन्दने कांगड़ेके कोटपर अधिकार किया और जस्सासिंहने अपने देशको सम्हाल लिया। महासिंह अब पंजाबमें बड़ा बलवान् प्रसिद्ध हो गया। जयसिंहका पुत्र गुरबख्शसिंह युद्धमें मारा गया। इसकी विधवा स्त्रीने अपनी कन्या महासिंहके पुत्रको विवाहमें देना स्वीकार कर लिया।

चौथा प्रकरण।

महाराज रणजीतसिंह।

संवत् १८४८ में गुजरातका भंगी सरदार गुज्जरसिंह मर गया. वो गुजरातपर आक्रमण कर दिया परन्तु बीमार होकर वह २७ वर्षकी आयुमें मर गया

[illegible]

शाहजमान — भी प्रत्यक्षमें तो गुलाम मुहम्मदके विरुद्ध किन्तु वस्तुतः यह दर्शानेके लिये कि समस्त मुसलमान उसकी सहायताके लिये प्रत्येक समय कटिबद्ध हैं अपने दूत शाहज़मानके पास भेजे। अंग्रेजोंने भी उस समय दिल्लीपर आँखें लगा रखी थीं। उन्हें इतना भय लगा कि उन्होंने फारसमें एक विशेष मिशन भेजा कि वह अफ़ग़ानिस्तानपर आक्रमण करे ताकि शाहज़मान दिल्ली न आ सके। अंग्रेज़ोंके सौभाग्यसे पंजाबमें सिक्खबल ऐसा दृढ़ हो गया कि जिसमें किसी अफ़ग़ानका भारतपर आक्रमण करना असम्भव हो गया। इससे अंग्रेज़ोंको इधरका भय जाता रहा। संवत् १८५५ में शाहज़मान पुनः आया और लाहौरमें बिना किसी विरोधके प्रविष्ट हो गया। सिक्ख लोग चुपचाप अलग रहे, परन्तु उसके भाई महमूदने फारससे सहायता लेकर उसकी अनुपस्थितिमें कुछ ऐसा बखेड़ा खड़ा कर दिया था कि जिसके कारण शाहज़मानको लौटना पड़ा। वह इस बार रणजीतसिंहके व्यवहारसे बहुत प्रसन्न हुआ। लौटते हुए उसकी कुछ तोपें झेलम नदीमें डूब गयीं। उसने रणजीतसिंहसे कहा कि यदि तुम इन्हें निकालकर पहुंचाओगे तो तुम्हें कुछ पारितोषिक मिलेगा। रणजीतसिंह लाहौरपर आंख लगाये हुए थे। उन्होंने तोपें निकलवाकर पहुंचा दीं, और शाहज़मानने उन्हें लाहौर दे दिया। इस कालसे सिक्खोंका इतिहास इस महापुरुषका इतिहास हो जाता है।

रणजीतसिंहका प्रथम कार्य भंगी मिसलसे लाहौरका अधिकार लेना था। यह उन्होंने तत्काल ही कन्हैया मिसलकी सहायतासे प्राप्त कर लिया। यद्यपि कसूर-

महाराज रणजीतसिंहकी उन्नति — का निज़ामुद्दीन पहिले भंगियोंका पक्ष करता था किन्तु अब उसने रणजीतसिंहका-कर दाता होना स्वीकार कर लिया।

अधिकार किया। इस समरमें दिल्लीवाला सरदार तारासिंह मारा गया। रणजीतसिंहने उसका दोआबका प्रान्त ले लेनेका निश्चय किया। तारासिंहकी विधवा स्त्री
राहोंके दुर्गपर
भयभीत होकर
अंग्रेजी गवर्नर
मित्रता करें।
करनेके लिये भेजे। उधरसे सिक्ख रियासतोंका डेपुटेशन अंग्रेजोंसे सन्तोषजनक उत्तर न पाकर लौट आया। कारण यह था कि अंग्रेजी सरकारको उस समय भारतवर्षपर नेपोलियन तथा रूम (टर्की) के आक्रमणका भय था, इसलिये वह रणजीतसिंहसे मित्रता करना चाहती थी। तदनुसार मेटकाफ उक्त प्रयोजनसे भेजा गया।

नेपोलियनके आक्रमणका भय

रणजीतसिंह मेटकाफसे कसूरमें मिले परन्तु उन्हें फ्रांसके विरुद्ध अंग्रेजोंसे मित्रता करनेकी कोई आवश्यकता प्रतीत न हुई। उन्होंने इस बातपर वार्तालाप समाप्त कर दिया, और सतलज पार करके फरीद कोट तथा अम्बाला जीत लिये। इधर मालेर कोटला और थानेसरसे कर लेकर पटियालाके राजासे मित्रता कर ली। मेटकाफ इस कार्यवाहीपर अप्रसन्न हुआ। उसके कहनेपर ओकटरलोनी सेना रणजीतसिंहको रोकनेके लिये भेजी गयी। अकस्मात् इस समय यूरोपसे समाचार आया कि नेपोलियनने भारतवर्षपर आक्रमण करनेका विचार त्याग दिया है। इसलिये अंग्रेजोंको अब रणजीतसिंहकी मित्रताकी कुछ चिन्ता न रही। अब उन्होंने सतलज पार रियासतोंके साथ सन्धि करनी चाही। उस समय रियासतोंके अनुभवी सरदार एकत्र हुए और विचार करने लगे कि हम किसकी ओर हों। उनमेंसे एक बुद्धिमान सरदार बोला कि रणजीतसिंह है हैज़ा, अंग्रेज़ है तपेदिक। यह तो तत्काल भक्षण कर जायगा। अंग्रेजोंके साथ कुछ काल तो जीवित रहेंगे। इसपर निर्णय हुआ कि अंग्रेजोंके साथ मित्रता की जावे। अंग्रेज रणजीतसिंहको सतलजकी ओर रखना चाहते थे। संवत् १८६६में डेविड अक्टर लूनीने प्रसिद्ध किया कि सतलजके उधरकी रियासतें अंग्रेजोंकी रक्षामें हैं, और वे रणजीतसिंहके प्रतिरोधके लिये यदि वे उनपर आक्रमण करें तैयार हैं। रणजीतसिंहने इन शर्तोंको स्वीकार करना ही उचित समझा। अमृतसरमें सन्धिपत्र लिखा गया। उससे सतलजके दक्षिण विजित प्रान्तोंको छोड़कर सतलज नदी सीमा निश्चित हो गयी। यद्यपि उसके पश्चात् चिरकाल पर्यन्त रणजीतसिंह सिन्धिया और होलकरके साथ दूतों द्वारा पत्रव्यवहार करते रहे कि वे सब मिलकर अंग्रेजोंसे युद्ध करें। साथ ही वे एक तरहसे सरहदकी सिक्ख रियासतोंको इस विद्रोहमें मिलानेके लिये भी यत्न करते रहे किन्तु इन यत्नोंका कुछ परिणाम न निकला। अब शनै. शनै. परस्पर मित्रता हो गयी, और अंग्रेज सेनापति रणजीतसिंहके पुत्र खड्गसिंहके विवाहपर अतिथिके समान बुलाया गया।

अमृतसरमें सन्धि

रणजीतसिंहके लिये अपना साम्राज्य बढ़ानेकी अब एक ही दिशा रह गयी,

अन्धा शाहज़मान भी काबुलसे प्रस्थान कर पञ्जाबकी ओर चला आया। अगले वर्ष वज़ीर फ़तहखां काश्मीरके विरुद्ध सेना लेकर आया क्योंकि काश्मीरके राजाने महमूदशाहकी आज्ञाका उल्लंघन किया था। फ़तहखांने रणजीतसिंहकी सहायतासे काश्मीरपर आक्रमण करना चाहा, इसलिये मोहकमचन्द सिक्ख सेना लेकर चला। दोनों पक्ष काश्मीरपर अधिकार जमानेका विचार करते थे, परन्तु फ़तहखांने काश्मीर ले लिया और अपने भाई मुहम्मद अज़ीमको वहांका शासक बना दिया। मोहकमचन्दको केवल इतना लाभ हुआ कि शाहशुजा उसको सौंप दिया गया। अटकके शासकने वज़ीरकी विजयसे भयभीत होकर दुर्ग मोहकमचन्दके समर्पित कर दिया, जिसपर अटकमें फतहखां और उसके भाई दोस्त मुहम्मदखांका सिक्खोंके साथ युद्ध हुआ। मोहकमचन्दने दोनों भाइयोंको पराजित किया। शाहशुजाके पास कोहेनूर हीरा था। रणजीतसिंहको उसको लेनेकी बड़ी इच्छा थी। कई प्रकार यत्न किया गया और मित्रताको स्थिर करनेके बहाने पगड़ियां परिवर्तित की गयीं। यह हीरा शुजाकी पगड़ीमें था। अतः अब यह रणजीतके हाथमें आगया। "कोहेनूर" के सम्बन्धमें यह लोकोक्ति है कि महाराजा रणजीतसिंहसे किसीने पूछा कि इसका मूल्य क्या है? उन्होंने उत्तर दिया "पांच जूते"। आंग्ल सेनाने लाहौरमें प्रवेश किया तो लारेन्सको "कोहेनूर" प्राप्त करनेकी बड़ी चिन्ता थी। जब दो तीन दिन तक न मिला तो वह बड़ा चिन्तित हुआ। नौकरने बताया कि उसने एक पत्थरसा उठाकर एक स्थानपर रख दिया है। वह उसे उठाकर ले आया तब लारेन्सको शांति हुई।

कोहेनूर हीरा

शाहशुजाको रणजीतसिंहपर कुछ सन्देह हो गया और वह भागकर अंग्रेजों के पास लुधियाना चला गया।

सवत् १८७१में रणजीतसिंहने काश्मीरपर आक्रमण किया। मोहकमचन्द इस बार रोगग्रस्त था। वहांके पठान शासकने मुकाबला किया। शरद्-ऋतु आ गयी थी, अतः रणजीतसिंहको लौटना पड़ा। अगले दो तीन वर्ष महाराजको पञ्जाब और काश्मीरके मुसलमान और आर्य सरदारोंको पराधीन करनेमें लगे।

सवत् १८७५ में खड्गसिंह सेना लेकर मुल्तानपर चढ़ा। पांच वर्ष पूर्व खड्गसिंहने जम्मूपर विजय प्राप्त की थी। मुल्तान नगरपर अधिकार हो गया किन्तु दुर्ग बाकी था। साधुसिंह अकाली अपने साथी लेकर दुर्गपर चढ़ गया और उसपर अधिकार कर लिया। मुज़फ़्फ़रखां शासक और उसके पुत्र मारे गये। उसी समय फतहखां काबुलमें मारा गया, और उसका भाई मुहम्मद अज़ीमखां अपने भाईका स्थान लेनेके लिये काश्मीरसे चला गया। रणजीतसिंहको यह शुभ अवसर प्रतीत हुआ। दीवानचन्द मिश्रके अधीन सेनाने काश्मीरकी ओर प्रस्थान किया। दीवानचन्दकी वीरतासे मुल्तान विजित हुआ था, अब उसीकी शूरवीरता तथा पराक्रमसे काश्मीर भी बिना किसी रक्तपातके ले लिया गया।

[illegible] विजय

इससे थोड़े दिन पहले आंग्ल स्थानके बादशाहकी ओरसे घोड़े उपहार देनेके लिये मिस्टर बर्न्स सिन्ध तथा रावी नदीके मार्ग महाराजकी सेवामें उपस्थित हुआ । इनका प्रयोजन यह देखना भी था कि इन मार्गद्वारा पंजाबसे व्यापार हो सकता है या नहीं । अंग्रेज़ी सरकारने सिन्धके अमीरोंसे सिन्ध नदी द्वारा व्यापार करनेकी आज्ञा चाही । उधर कप्तान वेड महाराजके पास इसी प्रयोजनके लिये भेजा गया ।

ब्रिटिश दूत मिस्टर बर्न्स

रणजीतसिंह स्वयं सिन्धपर हाथ मारना चाहते थे । उन्होंने इच्छा प्रकट की कि हम अंग्रेज़ोंके साथ मिलकर सिन्धपर आक्रमण करनेके लिये तैयार हैं । अन्तको उन्होंने व्यापार खोलना स्वीकार कर लिया किन्तु साथ ही कह दिया कि इससे हमारे राज्यविस्तारके क्रममें बहुत विघ्न पड़ेगा ।

सिन्धके अमीर अंग्रेज़ोंके इन आनेपर व्याकुल हुए । उन्होंने शाहशुजासे सम्बन्ध करना चाहा । शुजाने रणजीतसिंहसे कहा यदि आप मेरी सहायता करें तो मैं फिर बादशाह हो सकता हूं । महाराजने बड़ी कड़ी शर्तें पेश कीं । उनमेंसे दो यह थीं—

(१) समस्त अफ़ग़ानिस्तानके अन्दर गोवध बन्द कर दिया जावे ।

(२) सोमनाथके मन्दिरके द्वार ग़ज़नीसे वापिस लाकर वहां लगा दिये जावें । अन्तको यह शर्त रह गयी ।

शाहशुजा पुनः काबुल लेनेकी चिन्तामें था । इसीलिये महाराजको पेशावर-पर अधिकार दृढ़ करनेकी चिन्ता हुई । सम्वत् १८९१ में हरिसिंह नलवा और युवराज नौनिहालसिंह सेना लेकर पेशावर पहुंचे । उन्होंने सुलतान मुहम्मदको हटाकर शासन अपने हाथमें ले लिया । हरिसिंह इसके उपरान्त सीमाप्रान्तके पठानोंको वशमें करनेपर कटिबद्ध हो गया । इसने बन्नू, टांक, हज़ारापर कई बार आक्रमण किया ।

रणजीतसिंहकी दृष्टि सिन्धपर लगी थी । शिकारपुर लेनेके लिये उन्होंने अनेक उपाय किये । उन्होंने सब प्रकार यत्न किया कि अंग्रेज़ हमारे काममें दख़ल न दें । परन्तु यह कैसे हो सकता था ? अंग्रेज़ोंने कप्तान बर्न्सको अमीरोंकी ओर व्यापार खोलनेके बहानेसे भेजा, परन्तु उनका विचार उनके साथ दृढ़ सम्बन्ध उत्पन्न करनेका था । उधर महाराजसे कह दिया कि यदि आप शिकारपुरपर आक्रमण करें तो हमारे व्यापारमें विघ्न पड़ जायगा । इस लिये हम आपका विरोध करेंगे । रणजीतसिंहके सरदार कहते थे कि आप अंग्रेज़ोंकी चिन्ता न करें । परन्तु उन्होंने उत्तर दिया "मराठोंके दो लाख भाले बिखर गये ।" फिर भी थोड़े कालमें रहजानके दुर्गपर उन्होंने अपना अधिकार जमा लिया ।

सम्वत् १८९२ में दोस्तमुहम्मदखां शाहशुजाको पराजित करके बहुत निर्भय हो गया और उसने सिक्खोंसे पेशावर लेनेका विचार किया । उसने अंग्रेज़ोंसे सहायताके लिये प्रार्थना की । परन्तु अंग्रेज़ी सरकारने इतनी दूरकी मित्रता उचित न समझी । ख़ैबर दर्रेके पास दोस्त मुहम्मद-खांकी सेनाको रणजीतसिंहके सिक्खोंने घेर लिया । दूसरे दिन दो तोपें वहां छोड़कर दोस्तमुहम्मद पीछे हट गया । इससे दोस्तमुहम्मदका अतिशय अपमान हुआ । उसने दूसरी बार अंग्रेज़ोंसे सहायता

दोस्त मुहम्मदका पराजय

मांगी। रणजीतसिंहने इस चेष्टासे भयभीत होकर दोस्तमुहम्मदसे सन्धि करनी चाही, किन्तु वह अपने कलंकका टीका धोना चाहता था।

जमरूदका युद्ध

हरिसिंह जमरूदमें सेना लिये विद्यमान था। वैशाख संवत् १८९३ में जमरूदका युद्ध हुआ। अफ़ग़ान उसमें फलीभूत न हो सके। इस युद्धमें हरिसिंह ज़ख़्मी होकर मर गया। पठान सिक्खोंका आगमन देख काबुल लौट गये। महाराज अपने सेनापति हरिसिंह नलवाकी मृत्युका कुसमाचार सुनकर रो पड़े, किन्तु युद्धके लिये तत्काल तैयार हो गये। रामनगरसे केवल छः दिनमें तोपें जमरूद पहुंचायी गयीं। ध्यानसिंह वहां पहुंचा और उसने अपने हाथोंसे दुर्गकी नींव रखनेमें कुलीके सदृश काम किया। अब अंग्रेज़ोंने अपने आपको बीचमें डालकर सन्धि करानी चाही। इस परकार्य-चर्चाका परिणाम सर्वथा विभिन्न हुआ। अंग्रेज़ोंको रूस तथा फ़ारससे भय हो गया। इसलिये उन्होंने निश्चय किया कि काबुलके सिंहासनपर अपने दोस्त शाहशुजाको बिठावें। इस आक्रमणका बड़ा भयानक परिणाम हुआ। संवत् १८९४ में नौनिहालसिंहका विवाह शामसिंह अटारीवालाकी कन्याके साथ बड़ा धूमधामसे हुआ।

जब अंग्रेज़ोंने शाहशुजाको सिंहासन पर बिठानेका दृढ़ निश्चय कर लिया तो रणजीतसिंहको बड़ा क्रोध हुआ। उनका स्वास्थ्य उस समय बिगड़ रहा था, अतः वे कुछ कर न सकते थे। अंग्रेज़ी सेनाने कन्दहारको जीत लिया। रणजीतसिंहके चित्तमें बहुत सी उत्कंठायें थीं किन्तु इसी समय उन्हें मृत्युने आ दबाया, और संवत् १८९६ में यह "पञ्जाब-केसरी" इस लोकसे प्रस्थान कर गया।

शिवाजी तथा रणजीतसिंहके काममें समानता

इसमें कोई अत्युक्ति नहीं कि १९ वीं शताब्दी विक्रमीमें रणजीतसिंह भारतवर्षके एक बड़े व्यक्ति थे। उनका वही स्थान था जो १८ वीं शताब्दीके आरम्भमें [illegible] दोनोंने बलके बिखरे हुए टुकड़ोंको एकत्र करके साम्राज्यकी नींव डाली, रणजीतसिंहको भी वैसी ही सफलता प्राप्त हुई। रणजीतसिंहके आदमी धार्मिक उत्साहसे भरे हुए थे। उनका शाहशुजासे प्रतिज्ञापत्र, जो रक्षाकी चेष्टा सोमनाथ मन्दिर और कोहेनूर हीराको लौटा लेना उपरोक्त कथनकी पुष्टि करता है।

पाश्चात्य ढंगपर सेनाका संगठन

आंग्ल सेनाको अत्यन्त नियम-बद्ध देखकर रणजीत सिंहको बड़ी लालसा हुई कि हमारे सिक्खोंमें भी वही संगठन आ जावे। इस प्रयोजनके लिये उन्होंने एलार्ड, वैन्टोरा, कोर्ट, आविटेबला, इन चार फ्रैन्च अफसरोंको नौकर रखा। उन्हें अपने प्रयोजनमें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। वे अपने तोपचियोंको लुधियानेमें तोप चलाना सिखलाना चाहते थे। उनका अंग्रेज़ी बन्दूकें और गोले बनाना सीखनेका स्वयं बड़ा विचार था। वे पश्चिमीय युद्ध-विधिका अनुकरण करना चाहते थे। उन्होंने
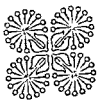
पञ्चम खण्ड (प्रथम भाग)

अंग्रेजोंकी बल-वृद्धि

पहिला प्रकरण ।

दक्षिणमें फ्रांसीसी और अंग्रेज़ ।

डूप्ले ही प्रथम व्यक्ति था जिसे भारतमें राजनीतिक दल स्थापित करनेका विचार सूझा। इसके पूर्व अंग्रेज़ लोग यत्न करके पचास वर्षके लिये चुपचाप हो गये थे और अपने व्यापारमें लग गये थे। अब उन्हें दूसरा
फ्रांसीसी गवर्नर डूप्ले अवसर दक्षिणमें मिला जब कि डूप्ले फ्रांसीसी गवर्नर था।
उसने दक्षिणमें फ्रांसीसी राज्य स्थापित करनेका उपाय सोच लिया।

संवत् १८०० में हरिवर्षीय जातियोंमेंसे केवल अंग्रेज़ और फ्रांसीसी ही उज्वल भविष्यकी आशामें बैठे हुए थे। उनके पारस्परिक संग्रामसे भारतवर्षके इतिहासमें एक नया क्रम आरम्भ होता है। उनका संग्राम आरम्भ होनेके समय दक्षिणमें निज़ामने
हैदराबादका स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया था, करनाटकपर
इतिहासका नया क्रम निज़ामका एक नायब शासन करता था जो अरकाटका नवाब
कहलाता था। त्रिचनापलीमें एक आर्य राजा था। तञ्जोरमें
शिवाजीकी सन्तान राज्य करती थी। और मैसूरमें आर्य जातिकी रियासत थी। इनके अतिरिक्त छोटे छोटे क़िलोंपर विजयनगरके विनाशके पश्चात् नायक लोगोंने अपना अधिकार जमा लिया था।

हरिवर्षीय व्यापारी इस समय तक अपने आपको प्रजाके सदृश समझते थे। जब संवत् १८०० में हरिवर्षमें आंग्लस्थान तथा फ्रांसमें युद्ध प्रारम्भ हुआ, और मद्रासके अंग्रेज़ गवर्नरने पाण्डिचेरीकी फ्रांसीसी बस्तीपर आक्रमण करनेकी तैयारी की तब वहांके गवर्नर डूप्लेने करनाटकके नवाबसे प्रार्थना की कि अंग्रेज़ोंको इस प्रकार झगड़ा करनेसे रोक दें। अंग्रेज़ गवर्नरने बिना किसी प्रकारकी आपत्तिके नवाबकी आज्ञा मान ली और जहाजोंके कप्तानको आक्रमण करनेसे रोक दिया। संवत् १८०२ तक यह दशा रही कि कारोमण्डल तटपरके समस्त मनुष्योंपर, चाहे वे किसी देशके हों, बादशाहका ही शासन था। परन्तु उस वर्ष फ्रांसीसियोंने अपनी सामुद्रिक शक्ति तथा सैनिक शक्ति अंग्रेज़ोंसे अधिक देखकर मद्रासपर आक्रमण करनेकी तैयारी कर दी। मद्रासके गवर्नरने अपना दूत नवाबके पास इसलिये भेजा कि अब वह फ्रांसीसियोंको इस विचारसे रोके। गवर्नरने वह दूत बिना किसी उपहारके भेजा था जिससे नवाब कुपित हो गया। उधर डूप्लेके मनुष्य उपहार लिये हुए नवाबकी सेवामें उपस्थित हुए। उस समय नवाबने मूर्खता यह हुई कि उसने उपहारोंके लोभमें आकर फ्रांसीसियोंको न रोका। यह भूल उसके लिये

असाध्य सिद्ध हुआ। जब फ्रांसीसी सेना मद्रासमें थी और मद्रासकी अभी विजय नहीं हुई थी कि नवाबके दूत पहुंचे। उन्होंने डूप्लेसे बिना आज्ञाके युद्ध करनेका कारण पूछा और कहा कि यदि तुम युद्ध बन्द नहीं करोगे तो नवाबी सेना तत्काल पहुंचेगी। डूप्ले बड़ा बुद्धिमान् पुरुष था। वह ऐसे कार्योंको सम्भालना अच्छी तरह जानता था। उसने नवाबको उत्तर दिया कि यह आक्रमण आपके ही लाभके उद्देश्यसे किया गया है। मद्रास लेकर मैं आपको अर्पण कर दूंगा, और उसे पुनः लेनेके लिये अंग्रेज बहुतसा धन आपको भेंट करेंगे।

डूप्लेकी कार्यचतुरता

नवाबके कुछ निश्चय करनेके पूर्व ही मद्रास फ्रांसीसियोंके हाथ आ गया। इस समाचारको सुनकर उसने अपने पुत्र महफूज़खांको दस सहस्र सेना सहित मद्रास खाली कराने और उसपर अधिकार करनेके लिये भेजा। वह सेना लेकर कई सप्ताह तक पड़ा रहा किन्तु डूप्लेने उसे मद्रास अर्पण करनेसे इन्कार कर दिया। अन्तको नवाबने मद्रासपर आक्रमण कर फ्रांसीसियोंको निकाल देनेकी आज्ञा भेजी। महफूज़खांने आक्रमण करके जल मार्गको सर्वथा काट देना चाहा।

फ्रांसीसी अफसरके सामने अब दो ही बातें उपस्थित थीं, या तो वह सामना करता या मद्रासको दे देता। दूसरे दिन उसने अपने मनुष्योंको तोपें सामने करनेकी आज्ञा दी। भारतवासियोंको इस समय तक इरिवर्पीय तोपोंका कुछ भी ज्ञान न था। भारतीय सैनिक पन्द्रह पन्द्रह मिनटके पश्चात् तोप दागते, फिर शत्रुके वारकी प्रतीक्षा करते थे। इरिवर्पमें तोप चलानेकी विद्या उन्नति कर चुकी थी। वे मिनटमें पांच छः बार तोप दाग देते थे। जब नवाबकी सेनापर निरन्तर गोले पड़ने लगे तो वह व्याकुल हो गयी और कुछ ही मिनटोंके भीतर भाग खड़ी हुई। थोड़ी दूरीपर जाकर महफूज़खांने अपनी सेनाको ठहराया और ओयार नदीके तटपर मोर्चा बांधा। उसके विचारमें यह दौड़धूप केवल व्याकुलताके कारण हुई थी। डूप्लेने सौ फ्रांसीसी और सात सौ भारतीय सैनिकोंको सामना करनेके लिये भेजा। जब नवाबकी सेनाकी ओरसे तोप चली तो फ्रांसीसियोंकी पल्टनने धावा करके नवाबकी सेनाको पराजित कर दिया। इस युद्धसे भारतवर्षके इतिहासमें एक नये युगका आरम्भ हुआ। इरिवर्पीय जातियां जो कि अब तक केवल व्यापारकी ही धुनमें लगी हुई थीं, राजनीतिक कार्योंमें भी भाग लेनेके लिये उद्यत हो गयीं, और भारतवर्षके नवाब और राजा भी उनकी सहायताके इच्छुक होने लगे।

नवाबी सेनासे युद्ध

सब अंग्रेज़ोंने फोर्ट डैविडमें जाकर आश्रय लिया। क्लाईव नामक एक किरानी भी उनके साथ था। दो वर्ष पश्चात् इङ्गलैंड और फ्रांसमें सन्धि हो जानेपर मद्रास अंग्रेज़ोंको वापस मिल गया परन्तु दक्षिण भारतमें फ्रांसीसी जातिका सिक्का जम गया, और करनाटकमें तो प्रत्येक कार्यमें उनकी चर्चा होने लगी। डूप्लेने अपना राजनीतिक बलबढ़ानेका ढंग भी सोच लिया, और यह उसकी नीति थी जिसको अंग्रेज़ोंने उससे सीख कर उसीपर प्रयुक्त करना आरम्भ किया।

संवत् १८०५ में निज़ामुल्मुल्कका प्राणान्त हो गया। उसके छः पुत्र थे। सिंहासनके लिये उनमें परस्पर विवाद होना अनिवार्य था। एक ओरसे तो मराठे सबसे ज्येष्ठ पुत्र ग़ाज़ीउद्दीनको ओर होकर अपने बलकी वृद्धि चाहते थे। दूसरी ओर डूप्ले अपनी नीतिके अनुसार फ्रांसीसी बल बढ़ानेकी चिन्तामें था। निज़ामुल्मुल्कके अनन्तर उसका पुत्र नासिरजंग सिंहासनपर बैठ गया। डूप्लेने उसके भतीजे मुज़फ्फ़रजंगकी ओर होकर, रामदास नामक एक ब्राह्मणको हैदराबादमें अपना प्रतिनिधि बनाया। उसने नासिरजङ्गकी सेनामें अविश्वास फैलाकर उसका वध करवा डाला। डूप्लेकी चाल काम कर गयी और मुज़फ्फ़रजङ्गने सिंहासनपर अधिकार कर लिया। इसके द्वारा करनाटकका नवाब भी डूप्लेका मित्र बन गया। कुछ कालके अनन्तर मुज़फ्फ़रजंग एक युद्धमें मारा गया और उसके स्थानपर संवत् १८०८ में सलाबतजङ्ग राजगद्दीपर बैठाया गया। फ्रांसीसी अफ़सर बूसी उसके साथ रहने लगा और मराठोंके विरुद्ध लड़ता रहा। डूप्लेका प्रयत्न सफल हुआ। अंग्रेज़ोंको भी डूप्लेकी नीति देखकर चिन्ता बनी हुई थी, क्योंकि वह अपने सहायकोंको ही हैदराबाद तथा करनाटकका शासक बनाना चाहता था।

निज़ामका उत्तराधिकार

गद्दीके लिये झगड़ा

अंग्रेज़ोंने भी फ्रांसीसियोंके शत्रुओंके साथ होकर सहायता करनी आरम्भ कर दी। डूप्लेने चांदा साहबको करनाटकका नवाब बनाया था। अंग्रेज़ मुहम्मदअलीके समर्थक थे। मुहम्मदअलीने अपने आपको नवाब प्रसिद्धकर त्रिचनापल्लीपर अधिकार कर लिया। इसके विरुद्ध एक फ्रांसीसी सेनाने जाकर त्रिचनापल्लीको घेर लिया।

क्लाइव नामक एक नवयुवक अंग्रेज़ने जो घरसे भागकर भारतमें आया था और मद्रासमें क्लार्कीका काम करता था कुछ सेना लेकर अरकाटमें देशी सेनाको जो फ्रांसीसियोंकी अध्यक्षतामें थी, पराजित करके अरकाटपर अधिकार कर लिया। इसपर मुरारी घोरपड़ेने कहा कि क्लाइवने यह सिद्ध कर दिखाया है कि अंग्रेज़ भी युद्ध करना जानते हैं। उसके उपरान्त क्लाइव फोर्ट डेविड पहुंचकर त्रिचनापल्लीके लिये सेना एकत्र करने लगा। परन्तु इतने कालमें नवाबके पुत्र आलमख़ां साहबने मद्रास तकके ग्राम जला दिये जिससे अंग्रेज़ अपनी रक्षाके लिये चिन्तित हो गये और त्रिचनापल्ली न जा सके। इतनेमें बङ्गालसे भी अंग्रेज सिपाही पहुंच गये और क्लाइव चार सौ अंग्रेज़ो और तेरह सौ देशी सिपाही लेकर चल पड़ा। कावेरीपाकपर आलमख़ां-साहब और फ्रांसीसी सेना युद्धके लिये तैयार थी। जब क्लाइवकी सेना पहुंची तो फ्रांसीसी सेनाकी ओरसे गोलाबारी आरम्भ हुई। क्लाइव बड़े कष्टमें था। शत्रुकी मोर्चेबन्दी सुदृढ़ थी। इसी युद्धपर दोनोंके भाग्यका निर्णय अवलम्बित था। क्लाइवने संकटके समयमें बड़ी वीरता दिखायी और कावेरीपाकके क्षेत्रको जीता। इस विजयसे क्लाइवने अंग्रेज़ोंकी भी वीरताका महत्त्व दक्षिणमें स्थापित कर दिया। इसके उपरान्त करनाटकमें अंग्रेज़ोंकी शक्ति बढ़ गयी। उनका सहायक मुहम्मद-अली करनाटकका नवाब बनाया गया।

रार्बट क्लाइव

दूसरा प्रकरण।

बंगालमें अंग्रेज।

कावेरीपाकके युद्धके बाद बंगालमें अंग्रेजोंको डूप्लेकी नीति काममें लानेका अवसर मिला। जिस व्यक्तिने दक्षिणमें अंग्रेजोंका प्रभुत्व जमाया था उसीने बंगालमें भी अंग्रेजोंको एक राजनीतिक शक्ति बना दिया। वहां भी एक ही युद्धने अंग्रेजोंके भविष्यका निर्णय कर दिया। आश्चर्यकी बात है कि भारतवर्षमें किस प्रकार एक युद्धपर ही सारा भविष्य अवलम्बित रहा है।

बंगालमें वह अवसर किस प्रकार आया—यह समझनेके लिये बंगदेशका थोड़ा वृत्तान्त जानना आवश्यक है। औरंगज़ेबकी मृत्युके समय मुर्शिदकुलीखां बंगदेशका शासक था। यह जन्मसे तो ब्राह्मण था किन्तु दासकी दशामें फारसमें पला था। इसने बड़ी योग्यतासे अपने प्रान्तका प्रबन्ध किया और ढाकाकी जगह मुर्शिदाबादमें अपनी राजधानी बनायी। मुर्शिदाबाद क़ासिमबज़ारके समीप है। यहां डच, अंग्रेज़ तथा फ्रांसीसियोंकी कोठियां थीं। अंग्रेज़ोंने फोर्टविलियम बनानेकी आज्ञा ले ली थी और तीन ग्राम भी खरीद लिये थे। अब उन्होंने अपने दुर्गको दृढ़ करनेकी ओर ध्यान दिया। मुग़ल अफ़सर अधिकसे अधिक कर उनसे प्राप्त करते रहे। औरंगज़ेबके अनन्तर मुग़लसाम्राज्यका पतन हो गया। मुग़लशासकोंको यह ध्यान ही न रहा कि कहां क्या हो रहा है। इसलिये अंग्रेज़ोंको दुर्ग बढ़ाने, वहां शस्त्र एकत्र करने तथा सैनिक रखनेमें किसी प्रकारकी बाधा न हुई।

मुर्शिद कुलीखाँ

संवत् १७७०में कलकत्तेकी कौंसिलने अपने दूत मुग़ल दरबारमें भेजे। उनमें एक डाक्टर विलियम हैमिल्टन था। फ़र्रुख़सियर बादशाह किसी ऐसे रोगसे पीड़ित था, जिसकी चिकित्सा देशी वैद्य करनेमें असमर्थ थे। इस रोगके कारण एक राजपूत कन्यासे विवाह करनेमें बाधा पड़ती थी। हैमिल्टनने उसकी चिकित्सा करके उसे नीरोग कर दिया। जब उसे पारितोषिक मांगनेके लिये कहा गया तो उसने स्वकीय लाभका विचार न कर अंग्रेज़ोंके लिये बंगदेशमें अधिकार मांगे। बादशाहने आज्ञा दे दी और उनको सब पुरातन अधिकार पुनः दे दिये गये। कौंसिलके प्रधानको आज्ञा मिल गयी कि जिस माल पर वह चाहे उसपर कर न लगाया जाय बल्कि उसकी जांच ही न की जाय। कलकत्तेके समीप उनको ३८ ग्राम जमामालका कर देनेपर दे दिये गये और मुर्शिदाबादकी टकसाल उनके सुपुर्द कर दी गयी।

अंग्रेजोंको विशेष अधिकार मिले

इसके दस वर्ष उपरान्त कलकत्ता अत्यन्त सुन्दर तथा समृद्धिशाली नगर बन गया। व्यापार बहुत बढ़ गया। बंगदेशके धनी यहां आकर भवन बनाकर निवास

नामका एक लेखक भी था। इसने उस समयको वहांके सरदारोंसे मिलने तथा नवाबके विरुद्ध भड़कानेमें लगाया। उसे सब आन्तरिक झगड़ोंका भी ज्ञान था। उसने सब बातोंसे क्लाइवको सावधान कर दिया। क्लाइव उसी

षड्यन्त्रका गुप्त प्रबन्ध

समयसे चुपके चुपके सब बड़े बड़े दरबारियोंको अपनी ओर लानेके प्रयत्नमें लग गया, और जब युद्धका समय आया तो मुर्शिदाबादमें कोई भी ऐसा धनाढ्य तथा गण्य पुरुष न था जो नवाबके विरुद्ध न हो, और जिसने क्लाइवको सहायता देनेकी प्रतिज्ञा न की हो। तीन मासके भीतर ही भीतर वज़ीर, राजा दौलतराम, सेनापति मीर जाफ़र जिसने सिराजुद्दौलाकी फूफूसे विवाह किया था, और सेठकुल सब क्लाइवके साथ एक प्रतिज्ञापत्रमें सम्मिलित हो गये। यह प्रतिज्ञा-पत्र अमीचन्द नामक व्यक्ति द्वारा तैयार किया गया। इसमें अमीचन्दको दो लाख रुपये देनेका वचन दिया गया था परन्तु क्लाइवने दो

अमीचन्दका प्रतिज्ञापत्र

पत्रोंपर प्रतिज्ञा लिखवायी। एक पत्रमें दो लाख रुपयेकी बात न थी। इस प्रतिज्ञापत्रके अनुसार मीरजाफ़रको सिंहासनपर बैठानेका निर्णय हुआ था। जब सब कार्य निश्चित हो चुका और कौंसिलने प्रतिज्ञापत्रको स्वीकार कर लिया तो क्लाइवने नवाबको लिख भेजा कि मैं सेना लेकर मुर्शिदाबादकी ओर आ रहा हूं, नवाबने घबराकर अपनी सेनाको पलासीके विस्तृत क्षेत्रमें एकत्र होनेकी आज्ञा दी।

सेनाके अफ़सर तो अंग्रेज़ोंसे मिले हुए थे। सिपाहियोंने जानेसे इनकार कर दिया। नवाबने उनको बहुत सा धन देकर किसी प्रकार युद्ध क्षेत्रमें भेजा।

जब क्लाइव कतवा पहुंचा उस समय तक उसे मीरजाफ़रकी ओरसे कोई चिह्न दृष्टिगोचर न हुआ। वह अब घबराया कि कहीं मैं धोखेमें न आ जाऊं। अकेला मुकाबला करना सम्भव न था। उस समय उसने गोष्ठी (कौंसिल) करके इस बातका निर्णय करना चाहा। लगभग सबकी सम्मति यही थी कि इस समय आगे बढ़कर लड़ना उपयुक्त नहीं केवल आयरकूट इस सम्मतिके विपरीत था। अन्तमें क्लाइव भी इसी परिणामपर पहुंचा कि लौट जानेसे भविष्यमें बल बढ़ानेका कोई अवसर न रहेगा और अपयश भी बहुत होगा। यह सोचकर उसने तत्काल युद्ध करनेका विचार कर लिया और तैयारीकी आज्ञा दे दी। परन्तु साथ ही उसने मीरजाफ़रको कहला भेजा कि यदि तुम न मिलोगे तो नवाबसे सन्धि कर ली जावेगी।

दोनों ओरकी सेनायें आ डटीं। पचास सहस्र सेना तो राजा दौलतराम, यार लुत्फ़ खां और मीर जाफ़रके अधीन थी जो क्लाइवके साथ मिले हुए थे। नवाबके

पलासीका युद्ध

साथ केवल पांच सहस्र अश्वारोही और सात सहस्र प्यादे थे जिनके अफ़सर मीर मदनखां और मोहनलाल थे। इसमें मीर मदन अकेला विश्वासपात्र था। इनके अतिरिक्त चन्द्रनगरसे भागे हुए फ्रांसीसी सिपाही कप्तान सिनफ्रे के अधीन नवाबके लिए लड़ने और मरनेके लिए कटिबद्ध थे। फ्रांसीसी सैनिकोंने गोलाबारीसे युद्ध आरम्भ किया, परन्तु थोड़ी देर बाद युद्ध रुक गया, क्योंकि वर्षा होनेसे भी गोलाबारी बन्द कर दी, किन्तु मीर मदन

उनकी ओर बढ़ा, परन्तु बागोंसे गोलियोंकी बौछार हुई और वह जख्मी होकर गिर पड़ा। अब सिराजुद्दौलाने मीरजाफरको बुलाकर उनसे विनयपूर्वक प्रार्थना की कि आप सुहृद्भावसे लड़ें, बल्कि उसने अपनी पगड़ी उतार कर उसके चरणोंपर डाल दी। उसने कहा "जाफर मेरी लाज तेरे हाथमें है।" इधर तो जाफरने अपनी छातीपर हाथ रख कर सिरको झुका दिया। मैं आज्ञाका और कहा कि पालन करूंगा, परन्तु तत्काल उधर क्लाइवको कहला भेजा कि अब समय आ गया है। फिर नवाबने राजा दौलतरामको बुलाया।

मीरजाफरका स्वामिद्रोह

उसने नवाबको उपदेश दिया कि इस समय आपको आत्म-रक्षा करनी आवश्यक है। इसलिये आपको चाहिये कि सेनाको सेनापतियोंपर छोड़कर स्वयं पीछे हट जायं। नवाबने यह उपदेश मान लिया और दो सहस्र सवारके साथ ऊंटपर बैठकर मुर्शिदाबाद चला गया। फिर क्या था! कुछ फ्रांसीसी सिपाहियोंने नाममात्रको सामना किया। पलासीका युद्ध क्लाइवने जीता। इसमें केवल छः अंग्रेज और १६ सिपाही काम आये। नवाब नावपर सवार होकर भागलपुरमें फ्रांसीसियोंके पास जा रहा था। मार्गमें राजमहल जाते जाते नाविक थक गये और नवाब एक उद्यानमें विश्राम करता हुआ पकड़ा गया। जब हथकड़ी लगाये मीरजाफरके सामने लाया गया तो सिराजुद्दौलाने रोते और कांपते कांपते चरणोंसे प्राण-रक्षाके लिये प्रार्थना की। यह दृश्य बड़ा ही हृदयद्रावी था। मीरजाफरकी आज्ञासे उसके पुत्र मीरनने रात्रिको बंगदेशके अन्तिम नवाब सिराजुद्दौलाका खंजरसे अन्त कर दिया। इस सारे खेलमें केवल नवाब ही एक पुरुष था जिसने किसीको धोखा नहीं दिया और सच्चे हृदयसे अपने देशको बचानेका यत्न किया।

सिराजुद्दौलाका वध

मीर जाफर सिंहासनपर बैठा। इसे इतना समझनेकी बुद्धि न थी कि सिंहासनका वास्तविक स्वामी कौन है! नवाब होते ही उसे एक करोड़ रुपया कम्पनीको, पचास लाख कलकत्तेके अंग्रेजोंको, बीस लाख देशी और दस लाख आरमीनियोंके लिये देने पड़े। कौंसिलके मेम्बरोंने मिस्टर ड्रेक (गवर्नर) को दो लाख अस्सी हजार, क्लाइवको दो लाख और विशेष सोलह लाख भेंट, मिस्टर बेचर, मिस्टर वाइस, मेजर किलपैट्रिक प्रत्येकको दो लाख चालीस हजार, मिस्टर वाइसको विशेष भेंट आठ लाख, सेनाके लिये कोई दो करोड़से ऊपर रुपया दिया गया। इसके अतिरिक्त चौबीस परगनाकी जमींदारीके अधिकार अंग्रेजोंको दिये गये। अमीचन्दको दूसरा प्रतिज्ञापत्र दिया गया। वह रुपया न मिलनेसे पागल हो गया।

अब हमें फिर थोड़े समयके लिये दक्षिणमें आना पड़ता है। जब इंग्लैण्ड और फ्रांसका युद्ध आरम्भ हुआ तो फ्रांससे सन् १८१५ में दक्षिण भारतसे अंग्रेजोंको निकाल देनेके लिये काउंट लैली सेना देकर भेजा गया। वह अत्यन्त ही तीक्ष्ण स्वभावका पुरुष था। वह दूसरोंकी सम्मतिपर किञ्चित मात्र ध्यान नहीं देता था। उसने आकर फोर्ट डेविड ले लिया। हम कह चुके हैं कि हैदराबादमें बुसीकी बड़ी धाक

अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियोंका युद्ध

थी। उसने कई वर्षों तक हैदराबादके नवाबको अपने हाथोंमें रखा। उसके समयमें उत्तरी सरकार नामक इलाकेके फ्रांसीसी अफसरने अत्युत्तम प्रबंध किया था। कौंट लैलीने आते ही बूसीको हैदराबादसे वापस बुला लिया, और उत्तरी सरकारका प्रबन्ध एक और अनुभवहीन फ्रांसीसी अफसरके हाथोंमें दे दिया। उसकी मूर्खताका पहिला परिणाम यह हुआ कि वहांका देशी शासक राजा आनन्दराज विद्रोही हो गया और उसने वेज़ापटमपर अधिकार कर लिया। उसने कलकत्तेके अंग्रेज़ोंसे इसलिए पत्रव्यवहार शुरू किया कि वे उत्तरी सरकारपर अधिकार कर लें। इसपर कलकत्तेसे मेजर फोर्ड सेना सहित भेजा गया। राजा आनन्दराजकी सहायतासे उसने कान्दोरमें फ्रांसीसियोंको परास्त किया। वहांसे फ्रांसीसी सेना मछलीपटम गयी। कुछ वर्ष पूर्व मछलीपटम फ्रांसीसियोंके अधिकारमें आ गया था और अंग्रेज वहांसे निकाल दिये गये थे। फोर्डने मछलीपटमपर आक्रमण किया। उस समय फ्रांसीसी जेनरल "कान्फ्लां" को बहुत सुविधायें प्राप्त थीं। यदि उसके स्थानपर फोर्ड जैसा कोई योग्य पुरुष होता तो सब अंग्रेज़ी सेना नष्ट हो जाती। परन्तु "कान्फ्लां" अपने मकानमें बैठकर मैदानमें आज्ञायें भेजता रहा। वह न तो शूरवीर था और न उसे बुद्धि थी। फोर्डने इङ्गलैण्डके लिये "शुमाली सरकार" के जिले प्राप्त किये। युद्धका दूसरा परिणाम यह हुआ कि सलाबतजङ्गने अंग्रेज़ोंके साथ सन्धि कर ली, जिससे न केवल उसने फ्रांसीसियोंको अपने दरबारसे निकाल दिया बल्कि यह आज्ञा दी कि मेरे राज्यमें कोई फ्रांसीसी बस्ती न बसायी जाय। यह निश्चय करके फोर्ड बङ्गालको लौट गया। परन्तु अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियोंके मध्य युद्ध होता ही रहा। आयरकूटने कौंट लैलीको वन्देवाश युद्ध क्षेत्रमें पराजित करके पाण्डिचेरीको घेर लिया। सम्वत् १८०८ में इङ्गलैण्ड और फ्रांसकी परस्पर सन्धि हो जानेपर भारतमें भी दोनों जातियोंमें सन्धि हो गयी और पाण्डिचेरी फ्रांसीसियोंको दे दिया गया।

वन्देवाशमें कौंट लैलीका पराजय

फोर्डके कलकत्ता पहुंचनेपर वहां एक और झगड़ा तैयार था। मीरजाफरके सिंहासनपर बैठनेके कुछ काल अनन्तर यह विदित हो गया कि इसने यह धोखेबाजी करके अपने लिये दासत्व खरीद लिया है। विशेषकर उसका पुत्र मीरन अंग्रेज़ोंके उन्नत बलसे बहुत जलता था। पलासी युद्धके पश्चात् सब व्यापार अंग्रेज़ोंके हाथ आ गया। डच व्यापारियोंकी बड़ी हानि हुई। इन लोगोंने दुःखित होकर नवाबके साथ साज़बाज़की कि यदि नवाब अंग्रेज़ोंको निकालनेपर उद्यत हो तो हम अपनी सेना सहित उसकी सहायता करेंगे। यह निश्चय करके डच लोगोंने अपनी सेना पूर्वीय द्वीपोंसे मंगायी। उधर क्लाइव सब बातें ताड़ गया। उसके पास कुछ सेना न थी क्योंकि सारी सेना मद्रास चली गयी थी किन्तु फिर भी वह तैयारी करने लगा। इतनेमें फोर्ड अपनी सेना ले कर लौट आया। चुंचुरापर संग्राम करके उसने डच [illegible] किया। डच वालोंको युद्धका सब व्यय देना पड़ा।

अंग्रेज़ोंके विरुद्ध विद्रोह

इसके बाद क्लाइव इङ्गलैण्ड चला गया। उसके जानेपर शाह आलमने जो
पिताके मारे जानेपर दिल्लीका बादशाह बन गया था बंगालपर आक्रमणकर
दिया। पुर्निया और तिरहुतके मुसलमान नवाब जो अंग्रेजी
राज्यसे दुःखित हुए थे उनके साथ मिल गये। इनके
अतिरिक्त मराठा सेना भी शाह आलमके साथ थी। बंगालपर
आक्रमण करके अपने राज्यको बढ़ाना ही उनका वास्तविक उद्देश्य
। पलासीके युद्धके पूर्व भी मराठे बंगालको जीतनेका विचार कर रहे थे। इसके
र सम्बन्धमें बरारके राजाने क्लाइवको एक पत्र भी लिखा था।

शाह आलमके विरुद्ध मीरन सेना लेकर चला, परन्तु वह (मीरन) उससे
द्ध करनेको तैयार न था। उसने बादशाहसे पत्रव्यवहार करना आरम्भ कर दिया
र लगभग यह निश्चय हो गया था कि दोनों सेनायें मिलकर अंग्रेजोंके विरुद्ध
ाम करें कि अकस्मात् रात्रिको बिजली गिरनेसे मीरन मारा गया।

तीसरा प्रकरण।

मीर क़ासिम।

मीरनकी मृत्युसे एक और नयी समस्या उपस्थित हो गयी। मीरजाफ़रके दूसरे पुत्र बहुत छोटे थे परन्तु उसका जामाता मीरक़ासिम बड़ा चतुर तथा दूरदर्शी पुरुष था। उसे अब आत्मोन्नतिका अच्छा अवसर मिला। उसके हृदयमें और भी बड़ी बड़ी महत्वाकांक्षाएं थीं। सम्पूर्ण राज्य अंग्रेज़ी कम्पनीके हाथमें जाते देख उसने प्रतिज्ञा कर ली कि जिस प्रकार हो एक बार राज्य हाथमें लेकर मैं बंगालको अंग्रेजोंके शासनसे मुक्त करूंगा। मीरक़ासिम मीरजाफ़रकी ओरसे नये गवर्नरको बधाई देनेके लिये चला। कलकत्ता कौंसिल मीरजाफ़रके उपरान्त उसके उत्तराधिकारीके विषय-पर विचार कर रही थी। मीरक़ासिमको अपने प्रयत्नमें सफल होनेका समय मिल गया। उसने बातोंही बातोंमें जान लिया कि कौंसिलके सभी सभासद रुपया लेकर मेरी सहायता करनेपर उद्यत हैं।

मीर कासिमकी प्रतिज्ञा

अन्तमें यह निश्चय हुआ कि मीर जाफ़रको हटाकर उसके स्थानमें मीर क़ासिम सिंहासनपर बैठाया जाय। इसके बदलेमें बर्दवान, मेदनीपुर तथा चटगांवके ज़िले कम्पनीको मिलें और कौंसिलके सभासदोंको निम्नलिखित रकमें दी जायें—गवर्नर वैनस्टार्टको ५० लाख, हाल्विलको दो लाख ७० हजार, मिस्टर समर और मेकग्वायर-प्रत्येकको २½ लाख; केलाड दो लाख, कलिंग, स्मिथ तथा यार्क प्रत्येकको एक लाख तीस हजार। गवर्नर यह निर्णय सुनानेके लिये मीरजाफ़रके पास पहुंचा। मीरजाफ़र इसकी अपेक्षा और भी अधिक रुपया देनेपर तैयार था परन्तु यह प्रतिज्ञापत्र लिखा जा चुका था इसलिये विवश हो मीरजाफ़रको सिंहासन-परसे उतरना पड़ा। उसका मकान सिपाहियोंने घेर लिया। उसने अन्तमें यह कहा कि मैं मीरक़ासिमके सुपुर्द न किया जाऊं बल्कि मुझे कलकत्तेमें रहनेके लिये मकान दिया जावे। यह स्वीकार किया गया और मीरजाफ़र तीन वर्ष उपरान्त कलकत्तेमें आकर रहने लगा। तत्पश्चात् मीर क़ासिमने शाहआलमसे सन्धि करके सवत् १८०८ में उसे लौटा दिया। मीरक़ासिम दृढ़विचारका मनुष्य था और वह विशेष प्रयोजनके लिये ही सिंहासनपर बैठा था। अंग्रेज़ सर्वदा रुपयोंके लिये तंग करते रहते थे। थोड़े दिनोंमें वह उनसे बड़ी घृणा करने लगा। जिन मेम्बरोंने रिश्वत ली थी वे वापिस चले गये थे और उनके स्थान जो नये मेम्बर आये थे, वे भी इसी प्रकार नवाबका रुपया लूटना चाहते थे। इसे कौंसिलपर कुछ विश्वास न रहा था।

मीर जाफ़रका पद-च्युति

मीरक़ासिमने सब बातोंको देख लिया था और वह भी अपनी ओरसे युद्धकी धुनमें लगा हुआ था। प्रथम तो उसने अपनी राजधानी मुंगेरमें हटा ली। वहां एक बड़ा भारी कोट विद्यमान था। जाते ही उसने दुर्गको अधिक दृढ़ करना आरम्भ कर दिया, और शीघ्रही अंग्रेज़ोंको उनका रुपया देकर उसने अपना प्रबन्ध ऐसी उत्तम रीतिसे किया कि उसको अच्छी आय होने लगी। इसके अतिरिक्त उसने जब देखा कि आंग्लसेनाका बल उसके संगठनपर निर्भर है तो झट उसने अपने यहां फ्रांसीसी अफ़सर नियत कर दिये। अंग्रेज़ी ढंगकी तोपें ढालनेके लिये एक कारखाना खोला गया।

इधर कौंसिलके सभासदोंने रुपया प्राप्त करनेकी एक विचित्र विधि निकाली। देशके व्यापार तथा व्यवसायोंकी रक्षक सरकारही होती है। परन्तु यदि स्वयं सरकार लूटनेपर तैयार हो जाय तो व्यापार तथा व्यवसायका

कौंसिलका व्यापारिक अन्धेर

फूलना-फलना सम्भव नहीं। कौंसिलने एक ऐक्ट पास किया कि जिस मालपर अंग्रेज़ी पास हो उसपर नदीमें कोई कर न लिया जाय, और बिना पासके मालपर भारी कर लगाया जाय। जिस नावपर अंग्रेज़ी झण्डा होता था या वर्दी धारण किये सिपाही विद्यमान होते थे उस नावकी जांच नहीं हो सकती थी। इससे कम्पनीके नौकरोंने लाखों तथा करोड़ों रुपये कमाये। उन्होंने झण्डा तथा पास देनेका अधिकार दूसरोंके हाथ बेचना शुरू किया। देशमें नाश तथा अशान्ति फैल गयी। जहां कहीं नवाबके मालके अफ़सर कर लेनेका यत्न करते थे अंग्रेज़ प्रतिनिधि उनको पकड़ कर क़ैद कर देते थे जिससे सारा देशी व्यापार नष्ट हो गया। बहुतसे ज़िले विनष्ट हो गये, नवाबकी आय कुछ न रही।

मीरक़ासिम इसके विरुद्ध शिकायतें भेजता था किन्तु वहां कौन सुनता था। यद्यपि गवर्नर वैनसिटार्ट अपनी ओरसे बुराई कम करनेका यत्न करता था परन्तु सर्वसम्मतिके आगे उसका कुछ वश नहीं चल सकता था। अन्तमें

मीर क़ासिमका विरोध

वह नवाबसे मुंगेरमें आकर मिला और बहुत वादविवादके उपरान्त यह निश्चय हुआ कि अंग्रेज़ केवल नौ प्रतिशत कर दें और देशी व्यापारी पचीस प्रतिशत, पासपर अंग्रेज़ प्रतिनिधि तथा नवाबके अफ़सरके हस्ताक्षर होने चाहिये। नवाब इसके सर्वथा विरुद्ध था परन्तु विवश हो उसे मानना ही पड़ा। जब यह प्रतिज्ञापत्र कौंसिलमें पहुंचा तो सभी सदस्यों ने इसको माननेसे इन्कार कर दिया, और इसपर झगड़ते रहे कि अंग्रेज़ी व्यापार बिना करके होना चाहिये। मीरक़ासिमने यह देखकर कि इससे मेरी प्रजा सर्वथा नष्ट हो जायगी कर लेना ही बन्द कर दिया और व्यापारका द्वार सबके लिए उन्मुक्त कर दिया।

इसपर कौंसिलने मीरक़ासिमके साथ युद्ध किया। कौंसिलका एक सभासद मिस्टर ऐलिस उस समय पटनेका प्रतिनिधि नियत होकर गया था। उसने कुछ आंग्लसेना मंगाकर प्रातःकालही पटना नगरपर अधिकार कर लिया।

मीर जाफरसे पुनः बात चीत

नवाबने यह समाचार सुनकर सेना भेजी। संवत् १८२० में एक युद्ध हुआ। इसमें तीन सौ अंग्रेज़ तथा दो सहस्र देशी सिपाही मारे गये और शेषने अपने शस्त्र नवाबकी सेनाके सुपुर्द कर दिये।

नवाबने इस घटनाकी सूचना कलकत्ते भेजी। कलकत्ता कौंसिलने अब मीर-

की सेना बहुत बलवती थी, उसके कोषमें रुपया भी था। परन्तु आंग्लसेनाका सेना-पति बड़ा योग्य था। युद्धका निर्णय केवल नेतापर ही अवलम्बित रहता है। आर्यावर्तके देशीनेता अंग्रेज़ोंके समान योग्य न थे। मीरक़ासिमके अफ़सर मुहम्मद तक़ीख़ांने कतवा क्षेत्रमें जान ऐडमसके अधीन अंग्रेज़ी सेनाका सामना किया। बड़ा घोर संग्राम हुआ। अंग्रेज़ हारने हीपर थे कि अकस्मात् मुहम्मद तक़ीख़ां गोलीसे मारा गया और अंग्रेज़ोंकी जीत हो गयी। जान ऐडमस मीर जाफ़रको लेकर मुर्शिदा-बादमें प्रविष्ट हुआ।

इसके पश्चात् घरियाके रणस्थलमें दूसरा युद्ध हुआ जिसमें अंग्रेज़ी सेनाको बड़ी हानि हुई। परन्तु जान ऐडमसके धैर्य, बुद्धिमत्ता, कुशलता तथा मीरक़ासिमके सेनापति शेरअलीख़ांकी निर्बलतासे अंग्रेज़ी सेनाकी जीत हुई। मीर क़ासिमकी हार देशीसेना हटकर एक स्थान अम्बुआ-नालापर फिर एकत्र हुई। यहां मीरक़ासिमका सैन्य-सञ्चालन इतना उत्तम था कि किसी ओरसे आक्रमण न हो सकता था। ऐडमस तीन सप्ताह तक प्रतीक्षा करता रहा और शत्रुके वारोंका प्रायः उत्तर भी देता रहा। परन्तु एक सिपाही रात्रिको भागकर ऐडमसके पास जा पहुंचा। उसने नालेकी दलदल पार करनेका मार्ग बता दिया। वह इन्हें एक पर्वतपर ले गया जहांसे आक्रमण हो सकता था। प्रातःकाल होते ही एकाएक बन्दूकें चलनी आरम्भ हुईं। क़ासिमकी सेनामें हलचल पड़ गयी, सिपाहियोंने भागना आरम्भ किया। पीछेकी ओर मीरक़ासिमने सेना खड़ी कर दी कि जो सिपाही भागकर पीछे हटे उसे गोलियोंसे मार दिया जाय। इस प्रकार दोनों ओरसे अग्निकी वर्षा होने लगी। मीरक़ासिमके बहुतसे सिपाही मारे गये, जो बचे उन्होंने शस्त्र डाल दिये। २१ भाद्रपद (६ सितम्बर) को ऐडमसने मुंगेरपर अधिकार कर लिया, और मीरक़ासिम अपने शेष साथियोंको लेकर अवधकी ओर भाग गया।

इसमें कुछ सन्देह नहीं कि बंगालका भाग्य इस युद्धपर निर्भर था। यदि ऐडमस जैसा योग्य अंग्रेज़ सेनापति न होता तो क्लाइवकी की हुई विजय और सभी कार्योंपर पानी फिर जाता और बंगाल फिर पुराने नवाबी शासनमें चला जाता। मीरक़ासिम-की यदि कोई भूल थी तो वह यही थी कि वह स्वयं रणक्षेत्रमें मुक़ाबलेपर न गया। उसकी विद्यमानता सिपाहियोंके हृदयोंपर विशेष प्रभाव डालती और उसके अफ़सरोंमें परस्पर द्वेष न उत्पन्न होने पाता।

संवत् १७७९ में सआदतखाँ नामक एक खुरासानी व्यापारी जो कि दिल्ली दर-बारमें बड़े पदपर पहुंच गया था अवधका नवाब वज़ीर नियत हुआ। जैसे निज़ाम दक्षिणमें और मुर्शिदकुलीखाँ बंगालमें स्वतन्त्र हो गये थे वैसेही सआदतखाँने अवधमें स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। उसके स्थानमें उसका भतीजा सफदरजंग संवत् १७९६ में और उसके १७ वर्ष बाद उसकी मृत्युपर शुजाउद्दौला नवाब हुआ। लगभग उसी समय सिराजु-द्दौला बंगालमें गद्दीपर बैठा था।

अवधका नवाब

आरम्भसे ही बंगालकी घटनाएँ उसे अपनी ओर आकर्षित करती रहीं परन्तु उसे अपने झगड़ोंका निर्णय करना था। जब अंग्रेज तथा मीरक़ासिम लड़ रहे थे तो शुजाउद्दौला अपने लिये अवसर देख रहा था। उसने सेना तैयार करनी आरम्भ कर दी थी। उदयनालाके युद्धके पश्चात् यह प्रकट हो गया कि उसे बंगाल आदिपर अधिकार प्राप्त करनेके लिये अंग्रेजोंके साथ लड़ना पड़ेगा। मीरक़ासिमने अपना कोष मुंगेरसे निकालकर रोहतासगढ़में भेज दिया था। नवाब वज़ीरको यदि किसी और बातके लिये नहीं तो कोषके लिये मीरक़ासिमका सत्कार करना चाहिये था। जब मीरक़ासिम भागकर कर्मनाशा पहुंचा तो उसे शुजाउद्दौलाका पत्र मिला, जिसने उसने सहायता तथा रक्षाके लिये प्रतिज्ञा की थी। इसपर मीरक़ासिम अवध चला। इसी समय शाहआलम दिल्लीसे भागकर लखनऊ पहुंचा और नवाब वज़ीरसे दिल्ली पर अधिकार प्राप्त करनेके लिये सहायता मांगी। शुजाउद्दौलाने शाहआलमका आदर पूर्वक स्वागत किया और उसे जैसे तैसे शाह नवाब वज़ीरके साथ इलाहाबादकी चढ़ाईपर साथ होनेके लिये राज़ी किया। जब नवाब वज़ीर बादशाहको साथ लिये इलाहाबाद पहुंचा तो वहांपर मीरक़ासिम पहले होसे पहुंच चुका था। नवाब वज़ीर दस सहस्र सिपाही लेकर मीरक़ासिमसे उसके डेरेमें मिलने गया। वहां उसने पहले पहल सुन्दर वर्दी धारण किये, [illegible] कवायद सिखायी हुई मीरक़ासिमकी सेना देखी। उसके चित्तपर बड़ा प्रभाव पड़ा।

नवाब वज़ीर और मीरक़ासिम

यद्यपि पहले वह मीरक़ासिमके पत्र तथा अन्य कई बातोंसे घबराया हुआ था परन्तु अब उसने मीरक़ासिमका [illegible] लाभ उठानेका विचार कर लिया। मीरक़ासिम बड़ा योग्य पुरुष था। उसने नवाब वज़ीरको समझाया कि किस प्रकार यह नये [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

२६

करके उनको भी सन्तुष्ट किया, और उन्हें हरिवर्षीय सैनिकोंके ½ भाग देनेकी प्रतिज्ञा करके लौटा लाया। यदि इस समय नवाब वज़ीरकी सेना कहीं समीप होती तो वहां फिर पहिला शासन हो जाता। थे नगके यह विद्रोह शान्तकर चुकने पर नया अफ़सर मेजर कारक आ गया।

मेजर कारक अफ़सरों तथा सिपाहियोंपर विश्वास न करता था और न वे उसे चाहते थे। कई दिन उसने आलस्यमें ही व्यतीत किये। अन्तमें वह बक्सर पहुंच कर शत्रुकी प्रतीक्षा करने लगा। जब कलकत्ता कौंसिलको इसकी सूचना मिली तो उसने तत्काल बढ़कर शत्रुपर आक्रमण करनेकी आज्ञा दी। उसने लिख दिया कि कर्मनासापर पुल बांधनेकी आज्ञा दी गयी है और जब पर्याप्त सामान एकत्र हो जावेगा तो मैं चल पड़ूंगा। कलकत्तेसे शीघ्र बढ़नेको पुनः आज्ञा हुई। इसपर उसने लिखा कि युद्धकी कौंसिल लड़ाईकी सम्मति नहीं देती। यह निश्चय हुआ कि सामान रसद पर्याप्त है, और शत्रु बक्सरकी ओर आ रहा है इसलिये पीछे पटना हट आना चाहिये। वहां पहुंचकर उसने अपने आपको सुरक्षित कर लिया। उधरसे नवाब वज़ीर सेना लिये बढ़ रहा था। अन्तमें २० वैशाख (३ मई) को नगरपर आक्रमण हुआ। सायंकाल तक युद्ध होता रहा। यद्यपि नवाब वज़ीरने उस समय बड़ी वीरता दिखलायी पर नगरको न ले सका। वह अपनी तोपें लेकर पीछे हट आया। वहां तीन सप्ताह और सेनायें पड़ी रहीं। वर्षाकाल आरम्भ हो जानेपर १६ ज्येष्ठ (३० मई) को नवाब वज़ीर बक्सर आ गया।

पटनाका युद्ध

दैवयोगसे इंग्लैण्डसे १४ आषाढ़ (२८ जून) को किसी और कारण वश मेजर कारकको नौकरीसे हटा देनेकी आज्ञा आयी। कलकत्ता कौंसिल इस आज्ञापर बहुत प्रसन्न हुई। कारकके स्थानपर मेजर मनरो अफ़सर बनाया गया। वह कारकके सर्वथा विपरीत स्वभावका था। मनरोके पहुंचते ही एक कठिनता तो उसे यह हुई कि एक देशी पल्टन बागी हो गयी। उसे शान्त करनेके लिये दूसरी देशी पल्टनें पहुंचीं। उन्होंने बागी पल्टनको क़ैद कर लिया। मनरोने २४ नेताओंको तोपके मुंहपर उड़ानेकी आज्ञा दी। जब देशी तथा हरिवर्षीय सेना एकत्र थी। ज्योंही चार मनुष्योंको तोपके साथ बांधने लगे त्योंही उनके दूसरे चार साथी आगे बढ़े, और अपने आपको इस प्रतिष्ठाके लिये उपस्थित किया। वे साथ ही उड़ा दिये गये पर उनके बलिदानका दृश्य प्रभाव पड़ा कि सभी सैनिकोंकी आंखोंसे अश्रुधारा बह निकली। अब दूसरे देशी पदाधिकारियोंने आकर मनरोसे कहा कि हमारे मनुष्य अब ऐसा न होने देंगे। मनरोके लिये यह कठिन समस्या उपस्थित हो गयी। उसने तत्काल हरिवर्षीय सैनिकोंको तोपें तैयार करने और देशी पल्टनोंको शस्त्र डालनेकी आज्ञा दी। उन्होंने यह आज्ञा मान ली। इस प्रकार शेष मनुष्य भी उड़ा दिये गये। इसके पश्चात् सब ओरसे सेनायें एकत्र कर मनरो ५ कार्तिक (२२ अक्तूबर) को बक्सर पहुंचा। उनाके युद्धमें मीर

मेजर मनरो

मराठा महाराज्य का मानचित्र
(संवत १८५२)

इससे यह स्पष्ट है कि यद्यपि वह राजा या नवाब अपनी रियासतका स्वामी था और विग्रह तथा सन्धिका ज़िम्मेदार था किन्तु सेना न होनेसे वह अंग्रेज़ी राज्यके विरुद्ध कुछ न कर सकता था, और उसे अपनी रक्षाके लिये सर्वदा उनके आश्रित रहना पड़ता था। भारतवर्ष जैसे देशमें जहां अनेक प्रकारकी रियासतें विद्यमान हों केवल इसी प्रकारका राज्य स्थायी हो सकता था। प्राचीन कालके महाराजाधिराज सम्भवतः इसी प्रकारकी शासनप्रणालीका अनुसरण करते थे। यदि दिल्लीमें मराठोंका राज्य भलीभांति स्थापित हो जाता तो वे अन्य मराठों तथा रियासतोंसे इसी प्रकारका सम्बन्ध स्थापित कर ले सकते थे। परन्तु उनके भाग्यमें ऐसा नहीं था। मराठा रियासतें पृथक् पृथक् थीं और अपना लाभ स्वतंत्ररूपसे सोचती थीं। लार्ड वेलेज़ली आते ही किसी न किसी मराठा रियासतके साथ भी अपनी सहायक सेना (Subsidiary) की नीतिसे सम्बन्ध स्थापित करनेका यत्न करने लगा। वह इसी घातमें था कि इसी समय पेशवा घरेलू कलहसे डरकर भागा और उसने अंग्रेज़ोंके पास आकर आश्रय लिया। उसने वेलेज़लीकी नयी नीति स्वीकार कर ली।

संवत् १८३० में नारायणराव पेशवा हुआ। यह बड़ा होनहार बालक था। अपने देशने सब उससे प्रेम करते थे। माधवराव कहा करता था कि यह बालक बड़ा साहसी सैनिक होगा। एक बार बाल्यावस्थामें

नारायणराव पांचवां पेशवा

ही नारायणराव पेशवाके साथ एक छोटे पर्वतपर बैठकर हाथीका युद्ध देख रहा था। दैवयोगसे हाथी वेगमें आकर दर्शकोंकी ओर दौड़ा। समस्त मनुष्य भयभीत होकर भागने लगे। प्राण संकटमें होनेके कारण वे पेशवाके लिये मान आदिके नियम भी भूल गये। नारायणराव भी उठकर शेष मनुष्योंके साथ भागने लगा। माधवरावने उसे पकड़ लिया और कहा, भाई! संसार तुम्हारे विषयमें क्या कहेगा। नारायणराव साहस पूर्वक तत्काल बैठ गया। जयाजीराव एक मराठा रिसालदारने अपना खंजर लेकर हाथीपर वार किया जिससे उसकी सूंड़ ऐसी जख्मी हुई कि वह पीछे भाग गया।

कुछ दिन नारायणराव तथा राघोबा स्नेहपूर्वक रहे, परन्तु राघोबाकी स्त्रीका हृदय द्वेषसे जल रहा था। वह भला कब चैन लेने देती थी। राघोबाने अभिद्रोह करना आरम्भ किया जिससे वह फिर अपने संरक्षणमें रख लिया गया। यद्यपि सखाराम बापू दीवान था परन्तु अधिकार नाना फड़नवीसके हाथमें आता जाता था।

उस समय बरारमें गृहकलह उपस्थित थी। जानोजी भोंसलेने मोदाजीके पुत्रको दत्तक बना कर माधवराव पेशवासे आज्ञा प्राप्त कर ली थी। परन्तु जब वह बालक सिंहासनपर बैठा तो मोदाजी और साबाजी दोनों भाइयों

नारायणरावका वध

में रक्षक बननेके लिये विवाद आरम्भ हो गया। मोदाजी राघोबाका सहायक था। पेशवाने साबाजीको रक्षक स्वीकार कर लिया। अभी दोनों पक्ष मुक़ाबलेकी तैयारी कर ही रहे थे कि नारायणराव

पेशवाका पूनामें वध किया गया । १४ भाद्रपद (३० अगस्त) को सेनामें कुछ हलचल मच गयी थी, जिसका कारण वेतनका झगड़ा बताया गया । नारायणराव मध्याह्नके समय कमरेमें विश्राम कर रहा था । महलोंमें शोर सुनकर वह चौंक उठा । सोमीरसिंह तथा मुहम्मद यूसफ़ कुछ सैनिक लिये पीछेके मार्गसे प्रविष्ट हुए । नारायणराव उठकर राघोबाके कमरेकी ओर दौड़ा । घातक उसके पीछे दौड़े आ रहे थे । उसने राघोबासे प्रार्थना की कि मुझे बचा लो । राघोबाने घातकोंसे साधारणतया कहा कि इसे छोड़ दो । इसपर सोमीरसिंहने कहा, मैं अब यहां तक आ पहुंचा हूं तो इसको छोड़कर स्वयं अपना विनाश क्यों मोल लूं ! तुम यहांसे भाग जाओ अन्यथा तुम भी मारे जाओगे । राघोबा उसको छोड़कर ऊपर भागा । नारायणराव उसके पीछे जा रहा था कि राघोबाके एक नौकरने उसकी टांग पकड़कर उसे नीचे खींच लिया । इतनेमें नारायणरावका एक नौकर घबराया आ पहुंचा और अपने स्वामीको बचानेके लिये दौड़ा । नारायणराव उसकी ओर बढ़ा । उसने अपनी भुजायें उसके गलेमें डाल दीं । सोमीरसिंह तथा राघोबाके नौकरोंने दोनोंका वध कर डाला ।

जब अन्दर यह कोलाहल हो रहा था विद्रोही लोग महलोंको सब ओरसे घेरे हुए थे । सारे नगरमें हलचल मच गयी । गलियोंमें आदमी इधर उधर दौड़ने लगे । सुखाराम बापू कोतवालके पास दौड़कर गया । उसने सब लोगोंको समझा कर वापिस भेजा ।

वधका सन्देह स्पष्टतः राघोबापर था । वह सारे विद्रोहका प्रवर्तक समझा जाता था । रामशास्त्रीने पूछताछ आरम्भ की । इतनेमें राघोबा पेशवा स्वीकार किया गया । छः सप्ताहके अनन्तर रामशास्त्री राघोबाके पास पहुंचे । उन्होंने उसपर अपने भतीजे नारायणरावके वधका दोषारोपण किया । राघोबाने शास्त्रीके सामने मान लिया कि मैंने नारायणरावको कैद करनेके लिये इन मनुष्योंको आज्ञा दी थी । जांचसे विदित हुआ कि उसकी दुष्टा स्त्री आनन्दबाईने आज्ञापत्रमें "पकड़ दें" के स्थान "मार दें" शब्द लिख दिया था ।

राघोबापर वधका दोषारोपण

राघोबाने रामशास्त्रीसे इस पापका प्रायश्चित्त पूछा । शास्त्रीने उत्तर दिया, "अपने जीवनका बलिदान करो तब यह पाप मिटेगा, अन्यथा न तुम और न तुम्हारा शासन दोनोंमें कोई कभी फलीभूत होगा । जब तक तुम इस राज्यके स्वामी रहोगे तब तक मैं तुम्हारे ऐसे हत्यारेका कभी अन्न ग्रहण न करूंगा और न कभी पूनामें हो पदार्पण करूंगा ।" रामशास्त्रीने अपना वचन पूरा किया । वे काशी चले गये ।

राघोबाके पेशवा-पदपर स्थिर हो जानेपर हैदरअली और निज़ामअली उसको निर्बलतासे लाभ उठानेके लिये युद्ध करनेपर कटिबद्ध हो गये, और पेशवाई सेना तथा उसका अध्यक्ष देवाजी सिन्धिया दिल्लीको सिन्धियाके सुपुर्द करके पूना छोड़ गये ।

मराठे शाहआलमको दिल्लीमें बहुत तंग किया करते थे । उसका मन्त्री नजफ़खां मुक़ाबला करनेके लिये तैयार हो गया । अन्तमें एक युद्ध हुआ जिसमें मराठोंने

उसने सर्वदा राघोबाकी मित्रताके लिये इच्छा प्रकट की। राघोबाने इस स्वागतसे प्रसन्न होकर उसका समस्त प्रान्त उसे लौटा दिया। इसके उपरान्त राघोबा हैदर-अलीके विरुद्ध खड़ा हुआ परन्तु उसे उसी समय अपने विरोधी पक्ष तथा उनकी तैयारियोंकी सूचना मिल गयी, इसलिये हैदरअलीसे कुछ लाख रुपयेका वचन लेकर उसने उससे सन्धि कर ली और पूना लौट गया। उधर सेना लिये त्र्यम्बकराव मामा, हरिपन्त फड़के और साबाजी भोंसले उसके मुकाबलेके लिये आ रहे थे। त्र्यम्बक-राव मामा शीघ्रता पूर्वक अकेला आगे बढ़ा आया और कासी ग्राममें संग्राम हुआ। त्र्यम्बकराव ज़ख्मी होकर क़ैद हो गया। इस पराजयसे पूनामें घबराहट फैल गयी। नये वज़ीर इस समय किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे थे। उनका एक कष्ट

माधवराव पेशवा बनाया गया।

तो माधवराव नारायणके उत्पन्न होनेसे मिट गया। वह पेशवा बना लिया गया। यह भी उनका सौभाग्य था कि राघोबाने सिन्धिया तथा होलकरकी ओर जानेका विचार कर लिया। राघोबाके अनेक मराठा सैनिक एकत्र हो गये थे किन्तु उसके पास कुछ रुपया न था कि उनको वेतन तथा भोजन-व्यय दे सके। इस प्रयोजनके लिये वह सिन्धिया, होलकर तथा अंग्रेज़ोंके साथ पत्रव्यवहार कर रहा था। अन्ततः उसने उनकी ओर स्वयं जानेका विचार कर लिया। इन्दौर पहुंचनेपर सिन्धिया और होलकरने राघोबाका आदर पूर्वक स्वागत किया। यद्यपि सिन्धिया और होलकर राघोबाके साथ न हुए परन्तु उन्होंने कुछ सेना उसकी सहायताके लिये दे दी। उस सेनाको साथ लेकर राघोबा लौट आया और बम्बई कौंसिलको अपना मित्र बनानेका उपाय सोचने लगा। इसे बरार तथा गुजरातकी ओरसे एक न एक पार्टी अर्थात् मोदाजी भोंसले अथवा गोविन्दरावके साथ मिलनेकी पूर्ण आशा थी।

अंग्रेजोंके साथ राघोबाका समझौता

इन्दौर जानेके समय उसने बम्बई कौंसिलसे सन्धिके नियमके अनुसार सहायता मांगनेके लिए अपना एक प्रतिनिधि पूनामें मास्टिनके पास भेजा। राघोबाने सूरतके प्रतिनिधि द्वारा सन्धिके नियमोंका निर्णय करना चाहा। बम्बई कौंसिल अपनी सेनाकी सहायतासे राघोबाको पूनाकी गद्दीपर बिठानेके लिये तैयार हो गयी। समझौता यह हुआ यह सालसिट, तथा बसीन कम्पनीको दे दे, और सूरत तथा-बड़ोचमें लगान अंग्रेज़ोंके सुपुर्द कर दे। राघोबाने सालसिट तथा बसीन देनेसे इन्कार किया किन्तु उनके बराबर गुजरातमें स्थान देनेपर तैयार हो गया, और युद्ध-व्यय भी अपने ऊपर ले लिया।

इधर यह उपाय हो रहा था, उधर बम्बईमें समाचार मिला कि पुर्तगीज सालसिट और बसीनको मराठोंसे वापिस लेनेके लिये एक बड़ी सेना भेजनेकी तैयारी कर रहे हैं। इस समाचारके पहुंचनेपर मराठा राज्यको निर्बल पाकर बम्बई कौंसिलने अपनी सेना किला थानापर भेज दी और थोड़े दिनोंमें सम्पूर्ण सालसिट पर अपना अधिकार कर लिया।

इधर नानाफड़नवीसने सिन्धिया तथा होल्करको राघोबाके विरुद्ध करके अपनी ओर मिला लिया। राघोबा यह समाचार सुनकर गुजरातकी ओर भागा और बड़ोदामें जा पहुंचा। वह अपनी गर्भवती स्त्रीको धार दुर्गमें छोड़ गया। वहींपर उसका पुत्र बाजीराव उत्पन्न हुआ जोकि अन्तिम पेशवा था। राघोबा गोविन्दरावकी सहायताकी आशापर बड़ोदा आया। गोविन्दरावने अपने पिता दम्माजीरावकी सहायतासे उस समय अपने भाई फतहसिंहको बड़ोदामें घेर रक्खा था। इन दोनों भाइयोंके झगड़ेका भी पूनासे सम्बन्ध था। दम्माजी गायकवाड़ने माधवरावके विरुद्ध राघोबाको सहायता दी थी और उसका पुत्र गोविन्दराव राघोबाके साथ कारावासमें रह चुका था। जब दम्माजी मर गया तो उसके दूसरे पुत्र सयाजीको जो दूसरी स्त्रीसे था उसका स्थान पूनाकी ओरसे दिया गया। परन्तु उसके बुद्धिहीन होनेके कारण उसका भाई फतहसिंह राज्य करता था। जब राघोबा पेशवा बना तो उसने गोविन्दरावको गायकवाड़का वारिस मान लिया। इसलिये गोविन्दराव भोंसलेके समान ही राघोबाका सहायक था। बड़ोदा पहुंचकर राघोबाने सूरतके प्रतिनिधि द्वारा पुनः पत्रव्यवहार आरम्भ किया। प्रतिज्ञा-पत्रकी कई प्रतियां एक दूसरेको दिखानेमें बहुत समय लग गया। अन्तमें शर्तोंका निर्णय हो गया। राघोबाने सालसिट और बसीनके अतिरिक्त चार और ज़िले देने स्वीकार किये। इसपर गायकवाड़का लगान अंग्रेजोंको दिलाने और युद्धका सारा व्यय अपने ऊपर लेनेकी प्रतिज्ञा की और खर्चके लिये अपने समस्त जवाहरात अंग्रेजोंके पास बन्धक रक्खे। यह जवाहरात राव देवाजी किशन दिल्लीसे लाया था, और उसने राघोबाको बतौर पेशवाके भेंट किये थे।

राघोबा गुजरातमें

राघोबा बड़ोदामें था कि उधरसे पूनाकी सेना लेकर हरिपन्त फड़के रवाना हुआ। सिन्धिया तथा होल्करकी सेना भी मिल गयी और फतहसिंहकी सहायता से राघोबाको ऐसी हार खानी पड़ी कि वह एक सहस्र सवारोंके साथ भागता हुआ सूरत आ पहुंचा। एक सैन्य-विहीन पर-देशी अवस्थामें प्रतिज्ञापत्रके बड़ा विरुद्ध था, परन्तु ६ मार्च १७७५ ईसवी तदनुसार संवत् १८३१ के २२ फाल्गुनको सूरतमें राघोबाने प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। वहींपर अंग्रेजसेना तथा तोपखाना कर्नल कीटिंगके अधीन पहुंच गया था।

राघोबा सूरतमें

उधर बम्बई कौंसिल मद्रास तथा बंगालका अनुकरण करके मराठा राज्यमें दखल देकर अपना बल बढ़ानेकी चिन्ता कर रही थी, इंग्लैण्डमें संवत् १८३० में एक नया ऐक्ट पास हुआ जिससे बंगालका गवर्नर शेष सभी अंग्रेज-प्रांतोंका गवर्नर जनरल बनाया गया, और प्रत्येक सन्धि तथा विग्रहके विषयमें उसकी स्वीकृति आवश्यक कर दी गयी।

पाँचवाँ प्रकरण

पहिला गवर्नर जनरल।

वारेन हेस्टिंग्ज़ पहला गवर्नर जनरल नियत हुआ। बम्बई कौंसिलको यह सूचना मिल गयी थी। जब विवादके समय यह प्रश्न उठा तो उसने कह दिया कि कौंसिलको नियमपूर्वक कोई सूचना न मिली थी इसलिये कौंसिल इस समयतक प्रतिज्ञापत्र आदि लिखनेमें सर्वथा स्वतंत्र है। जब बंगालसे पहिला पत्र आया तो अंग्रेज साल्सिटपर अधिकार जमा रहे थे। बम्बई कौंसिलने जानबूझकर उसके उत्तरमें विलम्ब कर दिया। इतनेमें वारेन हेस्टिंग्ज़का गुस्सासे भरा हुआ इस आशयका दूसरापत्र पहुंचा कि तुमने बिना गवर्नर जनरलकी आज्ञाके मराठोंसे युद्ध आरम्भ क्यों कर दिया है? इसमें राघोबाके साथ प्रतिज्ञापत्र लिखना अत्यन्त अनुचित बतलाया गया था। इस कोपका कारण यह था कि वारेन हेस्टिंग्ज़को पूना सरकारके साथ पुराने प्रतिज्ञापत्रका लिहाज़ था। जबसे उसे यह विश्वास हुआ कि *मराठा सरकार एक बड़ी बलवती शक्ति देशके अन्दर विद्यमान है और अंग्रेज़ोंको आगे बढ़नेके लिये मराठोंके साथ मुक़ाबला करना पड़ेगा, तो उसने पूना सरकारको हाथमें लानेका* एक उपाय सोच लिया था। वह उपाय यह था कि बरारके राजाके साथ बंगाल-कौंसिलकी मित्रता करके अपनी सहायतासे बरारके राजाको पूनामें राजा बनाया जाय। वारेन हेस्टिंग्ज़की सम्मतिपर कार्य करनेसे क्लाइव बंगालमें बहुत सफल हुआ था। अब उसे स्वाभाविकतया यह ख्याल था कि पूनाराज्यमें इस प्रकारका परिवर्तन उपस्थित कर देनेके लिए हम स्वयं योग्य हैं। विशेषकर जब कि बंगाल प्रान्तकी आय हमारे हाथमें आ गयी है। परन्तु उसे भय था कि बम्बई-कौंसिल व्यर्थ उसमें दखल देकर कहीं मेरे रचे हुए षड्यन्त्रको बिगाड़ न दे।

बरारके अन्दर दोनों भाई साबाजी तथा मोदाजी परस्पर युद्ध कर रहे थे। संग्राममें मोदाजी पराजित हो गया और जब साबाजीने मोदाजीको पकड़नेके लिये हाथी आगे बढ़ाया तो मोदाजीने पिस्तौल चलाकर साबाजीकी वहीं पूर्णाहुति कर दी। इसके अनन्तर मोदाजी बिना विरोधके बरारका प्रतिनिधि हो गया। उसका पुत्र राघोजी पहले ही बरारका राजा हो चुका था।

वारेन हेस्टिंग्ज़ समझता था कि मोदाजी भोंसले बननेके कारण महाराष्ट्रके राज्यको प्राप्त करनेका इच्छुक अवश्य होगा। मोदाजी पूना दरबारसे बड़ा अप्रसन्न था, इसलिये वारेन हेस्टिंग्ज़ने मोदाजीसे मित्रता करके अपने निश्चय पर कार्य करना प्रारम्भ किया। दिवाकर पण्डित नामक एक ब्राह्मण मोदाजी का दीवान था। उसके एक सम्बन्धीको वारेन हेस्टिंग्ज़ने अपने यहाँ नौकर रख

लिया और उनके द्वारा पत्रव्यवहार करना आरम्भ कर दिया। यही कारण था जिससे वारेन हेस्टिंग्ज़ बम्बई कौंसिलके हस्तक्षेपको रोकना चाहता था उसने राघोबाके साथ मित्रताको भयानक तथा अनुचित ठहराया और अपनी ओरसे एक प्रतिनिधि मिस्टर ओप्टनको पूना भेजा।

बम्बई कौंसिलको मास्टिनद्वारा पूनाके सब वृत्तान्त विदित हो चुके थे और वह ऐसे अच्छे अवसरको छोड़नेके लिए कभी उद्यत न थी। कौंसिलने गवर्नर जनरलके पत्रोंकी ओर कुछ ध्यान न दिया। सेनाने राघोबाको पूनाकी गद्दीपर बैठानेके लिए आक्रमण कर दिया। कर्नल कीटिंग सेनाध्यक्ष था। सूरतसे प्रस्थान करते ही कीटिंगने एक बड़ी भूल यह की कि फतहसिंह गायकवाड़को अपने साथ मिलानेके लिये पत्र-व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया। फतहसिंहने ये सब बातें आरम्भसे ही हरिपन्तको बता दीं किन्तु पत्रव्यवहार जारी रखा। आखिर कीटिंगने मिस्टर लुई बाल्ड नामक अपने दूतको फतहसिंहके पास भेजा। फतहसिंहका वकील उसे सबसे पहिले हरिपन्तके कैम्पमें ले गया जिसपर उसे बड़ा विस्मय हुआ। दूसरे दिन यह कहकर उसे एक बागमें बिठा दिया कि अभी फतहसिंह आता है। वह दिन भर वहां प्रतीक्षा ही करता रहा। आखिर संध्यामें उसे बुलाकर एक पालकीमें कैदीकी नाईं बिठाकर हरिपन्तकी सेनाके साथ कर दिया।

बम्बई कौंसिलकी सहायता

कीटिंग आंग्लसेना तथा राघोबाकी सेना लेकर पूनाकी ओर बढ़ा। मार्गमें मराठा सेनाने दो स्थानोंपर मुक़ाबला किया। आखिर आरासके स्थानपर संग्राम हुआ, जिसमें कदाचित् प्रथमबार आंग्लसेना पीठ दिखाकर भाग खड़ी हुई। देशी सेनाने भी उनका अनुसरण किया।

आरासका युद्ध

कीटिंग वहांसे हटकर भड़ौचमें पहुंचा। वहां उसने अपनी सेनाको विश्राम दिया। यह जानकर कि हरिपन्त नर्मदा नदीपर है वह उसके पीछे चला किन्तु हरिपन्त बिना युद्ध किये वहांसे चला गया। कीटिंग वहांसे इन दो भाइयोंकी ओर आया। वहांपर गोविन्दरावके बार बार कहनेपर पहिले उसने बड़ोदाकी ओर कूच किया। गोविन्दराव बड़ोदापर अधिकार प्राप्त करना चाहता था। इधर फतहसिंह भी डरके मारे सन्धि करनेपर राज़ी हो गया।

फतहसिंहसे सन्धि

राघोबाने गोविन्दरावको दस लाखकी जागीर दक्षिणमें देनेकी प्रतिज्ञा की। फतहसिंहने इनके सन्धिपत्रमें कुछ सेना और रुपया, भड़ौचका अपना भाग तथा कई ग्राम अंग्रेज़ोंको देकर सन्धि कर ली।

इतनेमें गवर्नर जनरलका प्रतिनिधि कर्नल ओप्टन पुरन्दर आ पहुंचा, और उसने बंगाल कौंसिलकी ओरसे पूना सरकारके साथ बातचीत आरम्भ किया। बम्बई कौंसिलने इसे बड़ा अपमानजनक समझा और इसका विरोध करके अपना प्रतिनिधि कलकत्ते भेजा और अपनी सेनाको सूरत भेज दिया।

पुरन्दरकी सन्धि

इसी समय पूना सरकारको एक झूठे दावेदारके साथ मुठभेड़की कठिनता उपस्थित हुई। एक पाखंडी आदमीने नारायणके पुत्रके स्थानमें अपने आपको सदाशिव भाऊ प्रसिद्ध किया। परन्तु वह कैद कर दिया गया।

झूठा दावेदार

अब इन झगड़ोंको देख कर उसके दुर्भाग्यने उसे मुक्त कर दिया। उसने बहुतसे मराठोंको एकत्र करके कोंकणका लूटना आरम्भ कर दिया। यहां उसे विशेष सफलता हुई किन्तु सिन्धियाकी सेनाने तलेगांवपर उसे हरा कर भगा दिया। पहिले तो वह बम्बई पहुंच कर अंग्रेजोंका रागोजी अनुयायीके रूप बना, यद्यपि बम्बई कौंसिल अपने यहां लानेके लिये बड़ा यत्न करती रही। राघोजीने उसे पूना भेज दिया जहां वह मार डाला गया।

पूना सरकारने यह शिकायत भी भोस्टनसे की परन्तु उसकी कुछ न चलती थी। आखिर बंगाल कौंसिलने उसे वापिस बुला लिया और उसके स्थान पर बम्बई कौंसिलने फिर मिस्टर मास्टिनको पूना भेजा। नाना फड़नवीस इस कारवाईसे तंग गया। उसने स्पष्ट कह दिया कि सारी शरारत इस पुरुषकी उठायी है और अब इसके पूनामें पुनः प्रवेश करनेका अर्थ केवल सन्धिपत्रको भंग करना है। मास्टिनने आते ही सन्धिपत्रके नियमोंके सम्बन्धमें झगड़ा आरम्भ कर दिया। उस समय इंग्लैण्ड और फ्रांसमें युद्धकी तैयारी थी। एक जहाजद्वारा कई फ्रांसीसी पूनामें आ पहुंचे जिनमेंसे एक व्यक्ति सेन्ट लूबनने अपने आपको बादशाह द्वारा

फ्रांसके राजदूत

भेजा प्रगट किया। नाना फड़नवीसने उसका आदरपूर्वक सत्कार किया। किन्तु फ्रांसीसियोंका वहां विद्यमान होना अंग्रेजोंके लिये असह्य था। मास्टिनने इसके विरुद्ध शिकायत आरम्भ की। नाना फड़नवीस भी यही चाहता था। उसने सेन्ट लूबनको बड़ी नम्रताके साथ दरबारमें रख लिया। सेन्ट लूबन शीघ्र ही फ्रांस चला गया जिसमें वहांकी सरकारको मराठा सरकारकी सहायताके लिये तैयार कर सके। पेशवा अभी बच्चा था, नाना फड़नवीस ही गवर्नमेण्टका सब काम चलाता था और उस समय नाना फड़नवीस ही एक व्यक्ति था जो परिस्थितिको ठीक ठीक समझता था।

जब नाना फड़नवीस अंग्रेजोंके साथ उलझनमें पड़ा हुआ था तब पूनामें उसके कई वैरी उत्पन्न हो गये। इस पक्षका नेता उसका चचेरा भाई मुराबा था। वैर भारतकी हड्डियोंमें विषम उदरके कीड़ोंकी तरह प्रविष्ट हो गया

नाना फड़नवीसके वैरी

है। वैर सब जगह होता है परन्तु हमारे यहां इतना अधिक है कि हम अपने भाईका नाश अवश्य कर देंगे, चाहे उससे हम दोनोंका विरोधी लाभ उठावे। इस पक्षने राघोबाके साथ गुप्त पत्र-व्यवहार आरम्भ कर दिया। सखाराम बापू भी उनकी ओर झुक रहा था। आखिर इन लोगोंने बम्बई कौंसिलको भी पत्र लिख दिया कि हम सब प्रकार तुम्हारी सहायता करेंगे। बम्बई कौंसिल अब फिर अपने पुराने निश्चयपर तैयार हो गयी।

उसने बंगाल कौंसिलको एक पत्रमें सब वृत्तान्त लिख कर सैनिक सहायताके लिये प्रार्थना की। गवर्नर जनरलको पूनामें फ्रांसीसियोंकी विद्यमानता प्रतीत

हुई। कर्नल लैज़लीके अधीन थोड़ी सी सेना स्थलमार्गसे बम्बई भेजनेके लिए उसने शीघ्र आज्ञा दे दी। हेस्टिंग्सकी इस बातका इंग्लैण्डमें बड़ा उपहास हुआ। कौंसिलमें बड़ा विरोध हुआ कि फौज जहाज़ द्वारा सुगमता पूर्वक क्यों न भेजी गयी?

परन्तु वारेन हेस्टिंग्सने सब कुछ अपने ऊपर ले लिया और इसका रहस्य न खोला। स्थलमार्गसे सेना भेजनेका उसका यह विशेष उद्देश था कि वह मार्गमें ... मोदाजी भोंसलेके साथ सन्धि भी स्थिर कर ले। माधा-भोंसलेके साथ स॰ जीके विषयमें वारेन हेस्टिंग्सका कुछ ऊंचा विचार था। वह धिका प्रयत्न समझता था कि मोदाजी बरार-सेनाकी सहायतासे सुगमतया पूना या सितारामें राजा बनाया जा सकता है। इस सङ्कल्पसे उसने पहिले ईलियटको दूतवत् सन्धि आदिके लिये बरार भेजा।

दुर्भाग्यसे वह वहां पहुंचते ही मर गया। वारेन हेस्टिंग्स वही प्रस्ताव कर्नल लैज़ली द्वारा फिर स्थिर करना चाहता था। इस सेनाके मार्गके लिये उसने सिन्धिया तथा होलकरसे आज्ञा मांगी। बहाना यह किया कि यह सेना फ्रांसीसी आक्रमण रोकनेके लिये बम्बई भेजी गयी है। इतनेमें पूनामें क्रमशः राज्यक्रान्तियां हो गयीं, पहिलेमें तो होलकरकी सहायतासे सुराबा फड़नवीसकी पार्टीने शासन अपने हाथमें कर लिया, और नाना फड़नवीसको भाग कर पुरन्धरके दुर्गमें आश्रय लेना पड़ा। उस समय हरिपन्त और सिन्धिया हैदरअलीके विरुद्ध युद्ध कर रहे थे। ये दोनों नाना फड़नवीसके साथ थे।

हैदरअलीने राघोबाके साथ मैत्रीके विचारसे करनाटकमें युद्ध आरम्भ कर दिया था और कई दुर्गोंपर उसका अधिकार भी हो गया था। हरिपन्तके भयसे वह डर गया और सन्धि चाहने लगा।

हरिपन्तको लौटना अभिप्रेत था पर उसने यह भेद खुलने न दिया और हैदरअलीसे एक अच्छी रकम लेकर सन्धि की। फिर पूना वापिस आकर सारा राज्य-प्रबन्ध नाना फड़नवीसके हाथमें कर दिया और सुराबाको अहमदनगरमें क़ैद कर दिया। सखाराम बापू भी वृद्ध होनेके बहानेसे पृथक् कर दिया गया।

सुराबाके पक्षको परास्त देख कर बम्बई कौंसिलने मराठा सरकारके साथ पत्रव्यवहार करना उचित समझा और पूछा कि आप पुरन्धरके प्रतिज्ञापत्रको स्वीकार

रूपसे सर्व वृत्तान्तसे अवगत करानेके लिए स्वयं बम्बई गया। उसी समय इंगलैण्ड और फ्रांसके मध्यमें युद्ध छिड़ जानेका समाचार ...।

मिस्टर मास्टिनकी नयी तजवीज़ यह थी कि बम्बई कौंसिल माधवराव नारायणको पेशवा स्वीकार करे, और उसके बाल्यकाल तक शासन राघोबाके हाथमें रहे। बम्बई कौंसिलने नयी तजवीज़ स्वीकार करके तैयारी आरम्भ कर दी।

इस समय पहिला बार गवर्नर जनरलने मराठोंके विषयमें अपना विचार

बम्बई कौंसिलको लिखा। परन्तु कौंसिलने यह कह कर कि राघोबाका अधिकार बहुत अधिक है, इस बातकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया।

बम्बई कौंसिलका [illegible]

कर्नल इगर्टन सेनाध्यक्ष बनाया गया। कौंसिलको यह भय था कि शत्रु ये समझें भारतवर्षमें केवल रुपया एकत्र करनेके ध्यानमें आते थे, चाहे वह रुपया भले मार्गसे मिले या बुरे। कौंसिलने शेष सब मामलोंका निर्णय करनेके लिये एक कमेटी नियत की जिसका प्रधान मिस्टर कारनक था जो कि बंगालके मामलोंमें लड़ता रहा था। मास्टिन भी कमेटीका सदस्य था। राघोबाके साथ लगभग पुरानी शर्तोंपर प्रतिज्ञापत्र लिखा गया।

नाना फड़नवीसका सरदार

उनका शत्रु नाना फड़नवीस जो असाधारण योग्यताका नीतिज्ञ था। वह अंग्रेज़ोंके विचारों तथा कार्योंको भलीभांति समझता था। यह कहा करता था कि अंग्रेज़ दल हमारे पक्षमें कण्टकके सदृश है। जब तक उसकी समाप्ति न होगी देशमें शान्ति कदापि न होगी। अब उसने प्रतिज्ञा कर ली कि मैं इसे नष्ट करके ही छोड़ूंगा। पहिले तो उसने अपनी सब तदबीरोंमें महाराजा सिन्धियाको साथ मिलाया और फिर उसकी सम्मतिसे भारतवर्षकी समस्त देशी शक्तियोंको मिला कर सब ओरसे अंग्रेज़ोंपर आक्रमण करनेकी तैयारी प्रारम्भ की। साथ ही लैज़्लीकी सेनाके मार्गमें सब प्रकारके विघ्न उत्पन्न करनेके लिए मराठा अफ़सरों तथा बुन्देलखण्डके राजपूतोंको गुप्त आज्ञापत्र भेजे।

कपट-प्रबन्धको पूर्ण सफल बनानेके लिये नाना फड़नवीसके दूत सब देशी रियासतोंके पास पहुंचे। जब ये दूत नाना फड़नवीसका पत्र लिये हैदरअलीके पास पहुंचे तो उस समय वह स्वयं अंग्रेज़ोंसे जला बैठा था। हरिपंसे युद्धका समाचार आनेपर मद्रास कौंसिलने अपनी सेना पाण्डिचेरीके विरुद्ध भेजी। जब पाण्डिचेरी पर अधिकार हो गया तो उन्होंने फ्रान्सीसी बस्ती माहीको भी जीतनेका विचार कर लिया।

अंग्रेज़ोंसे हैदरअलीका असन्तोष

माही हैदरअलीके प्रान्तमें था और उसकी रक्षा करना अपना कर्तव्य समझ कर हैदरअलीने उसके विरुद्ध मद्रास कौंसिलको लिखा। परन्तु जब माहीपर भी अधिकार हो चुका तो उन्होंने मिस्टर गिरेको दूत बना कर हैदरअलीके पास भेजा। बहुत वार्त्तालापके अनन्तर हैदरअलीने मिस्टर गिरेको स्पष्टतः बता दिया कि अंग्रेज़ प्रतिज्ञापत्र लिखते हैं और जब चाहते हैं उसे तोड़ देते हैं। उनके शब्दोंका कोई विश्वास नहीं। इसी अवस्थामें नाना फड़नवीसके दूत उसके पास आ पहुंचे जिनके साथ मिलनेके लिये वह तत्काल उद्यत हो गया।

आरम्भसे ही फ्रान्सीसियोंके साथ हैदरअलीकी मैत्री थी। उस समय लैली (एक फ्रांसीसी अफसर) जो कुछ फ्रांसीसी सिपाहियोंके साथ निज़ामके पास था हैदरअलीके पास आ गया। केवल यही नहीं बल्कि हैदरअलीने निज़ाम अलीको भी, जो प्रायः अंग्रेज़ोंके साथ मित्रता रखता था, अपने साथ इस कपट प्रबन्धमें मिला लिया। निज़ाम अलीका एक भाई बसालत जंग अदूनीका जागीरदार था। मद्रास कौंसिल गन्टूरका ज़िला प्राप्त करनेके लिये उसके साथ मैत्री करना चाहती थी। बसालत

हैदरअलीने निज़ाम-अलीको भी मिला लिया था

इस प्रकार वारेन हेस्टिंग्जने एकको उसकी शिकायत दूर करके और दूसरेको मित्रता निबाहनेकी प्रेरणा करके आपसमें फूट डाल दी। एक और तीसरा फतहसिंह गायकवाड़ अपने बचावके लिये साज़िशसे निकल कर अंग्रेज़ोंके साथ हो गया। यह इस प्रकार हुआ। आंग्ल सेनाने पहिले गुजरातपर आक्रमण कर दिया। पूनासे कोई सहायता फतहसिंहको न पहुंची। वह इतना भयभीत हुआ कि अंग्रेज़ोंके साथ मैत्री करनेपर मजबूर हो गया। शेष रहे सिन्धिया और होलकर। इन की रियासतें मध्यभारतमें थीं, उधर गोहदका राना सिन्धियाका शत्रु विद्यमान था, क्योंकि थोड़े समय पहले मराठोंने उससे कर प्राप्त किया था। हेस्टिंग्जने उसके साथ मित्रता करके उसके रुपयसे सिन्धियाके देशपर आक्रमण करनेके लिये आंग्ल सेना भेजी। केवल नाना फड़नवीस और हैदरअली दो ही रह गये जिन्होंने अपनी साज़िशको अन्त तक पूरा करनेका यत्न किया। फ्रांस भी इस संगठनमें मिला हुआ था, परन्तु फ्रांसीसी नौ-सेनापतिने अन्तिम समयमें रुपया लेकर विश्वासघात किया। इस बड़े संगठनको तोड़नेके लिये वारेन हेस्टिंग्जको रुपयेकी बड़ी आवश्यकता थी। यह रुपया उसने राजा चेतसिंह और अवधकी बेगमसे बलात् प्राप्त किया। ये दो बड़े दोष थे जो वारेन हेस्टिंग्जपर बर्क तथा उसके मित्रों द्वारा लगाये गये। जब हाउस आफ लार्डमें उनका विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया तो कई आंग्ल स्त्रियां जो मुकद्दमा सुनने आयी थीं रोते रोते बेसुध हो गयीं। यह मुकद्दमा सात वर्ष चलता रहा। अन्तमें वारेन हेस्टिंग्ज इन दोषोंसे बरी कर दिया गया।

वारेन हेस्टिंग्जकी कारवाई

वारेन हेस्टिंग्जपर दोषारोपण

इस साज़िशको पूर्ण करनेके लिये महाराष्ट्र तथा करनाटकमें युद्ध हुआ। इनके संक्षिप्त वर्णनसे ज्ञात होगा कि उस समय उन दोनों पक्षोंमें आंग्लबल विनष्ट होनेके समीप पहुंच गया था। यदि मोदाजी भोंसले बंगालमें अपना कर्तव्य पूरा करता तो बंगालपर भी विजय प्राप्त हो गयी होती, और अंग्रेज़ोंकी सारी आशाओं-पर पानी फिर जाता। परन्तु जैसे फ्रांसीसी नौ-सेनापतिके हैदरके साथ विश्वासघातने वैसे ही नाना फड़नवीसके साथ मोदाजी और उसके दीवान दिवाकर पण्डितके विश्वासघातने आंग्लबलको भारतवर्षमें बचा लिया।

जब बम्बईकी सेनाने पूनाकी ओर प्रस्थान किया तो राघोबाके नामपर एक विज्ञापन निकालकर सर्वत्र बंटवाया गया। उधर नाना फड़नवीसके प्रतिनिधि भी हर जगह यह प्रचार करते थे कि राघोबा अपने भतीजेका घातक है, और अब वह पूनामें अंग्रेज़ोंका स्थापित करनेके लिये सेना ला रहा है। मिस्टर मास्टिन ज्वर पीड़ित होकर बम्बई चला गया और वहां जाकर मर गया। कर्नल एगर्टन और मिस्टर कारनकमें परस्पर छोटी छोटी बातोंमें भी अनबन हो जाती थी और उनकी गति भी बहुत शिथिल थी। उधर नाना फड़नवीस और महादाजी सिन्धियाने भी अपनी सेना एकत्र कर ली। महादाजी सिन्धिया, तुकोजी होलकर और हरिपन्त फड़केसेनाके तीन

बम्बईसे आक्रमण

बड़े अवसर थे। उन्होंने अपनी थोड़ी सी सेना आंग्लसेनासे तेड़ छाड़ करनेके लिये आगे भेज दी। जब आंग्ल सेना तलेगांवमें पहुंची तो उसे विदित हुआ कि यह ग्राम और उसके आगेका मार्ग नानाकी आज्ञासे भस्मीभूत कर दिया गया है जिसमें आंग्लसेनाको सामान रसद न मिल सके। उनके साथ असबाब ले जानेके लिये उन्नीस सहस्र तो बैल ही थे। यह परिस्थिति देखकर और राघोबाकी सम्मति प्रतिकूल होनेपर सेनाने पीछे हटनेका विचार कर लिया।

जब आंग्लसेना पीछे हटने लगी तो मराठा सेनाने उसका पीछा करना आरम्भ कर दिया, वह साथ ही साथ गोलाबारी भी करती जाती थी। जब दिन निकला (२८ पौष, संवत् १८३५) तो समस्त आंग्लसेनाने अपने आपको मराठा-सेनासे परिवेष्टित पाया। मराठासेनाने पीछेसे आक्रमण किया परन्तु आंग्लसेना तोपोंसे मुकाबला करती पीछे हटती भागी और वड़गांवमें आकर उसने विश्राम लिया। बहुतसा सामान आदि मराठोंको हस्तगत हुआ। दूसरे दिन मराठोंने प्रातःसे गोला बारी आरम्भ की। पन्द्रह अंग्रेज़ी अफसरोंके मारे जानेसे शेष सब निराश हो गये। देशी सैनिकोंने भागना आरम्भ कर दिया। इस दशामें पीछे हटना असम्भवथा। और युद्ध करना उससे भी अधिक कठिन था। इसलिये कमेटीने वड़गांवका सन्धिपत्र सेक्रेटरी फार्मरको सन्धिकी प्रार्थना करनेके लिये भेजा। मराठा-सेनाने ये शर्तें सामने रक्खीं—

(१) राघोबा वापिस दिया जाय।

(२) समस्त प्रान्त जो अंग्रेजोंने लिया है लौटा दिया जाय।

(३) कम्पनी सूरत तथा भड़ोंचमें लगान लेना छोड़ दे।

मिस्टर फार्मरने उत्तर दिया कि मैं बिना गवर्नर जनरलकी स्वीकृतिके कोई नया सन्धिपत्र नहीं लिख सकता। इसपर महादाजीने कहा "तुमने कर्नल आप्टनके किये हुए सन्धिपत्रको तोड़नेका अधिकार कहांसे लिया था?"

इसके अनन्तर मिस्टर हॉलम नामक एक और दूत महादाजीके पास गया। स्पष्टतया उसे सब नियमोंको स्वीकार करनेका अधिकार दिया गया परन्तु मिस्टर कारनककी हार्दिक इच्छा महादाजीको भ्रममें डालकर लाभ उठानेकी थी। यही नहीं महादाजीके किसी विशेष नौकरको ४१ सहस्र रुपया रिश्वत दी गयी जिसमें वह उसे अंग्रेजोंसे सन्धि करनेके लिये प्रेरित करे। अन्ततः यह निश्चय हुआ कि समस्त प्रा मराठोंको लौटा दिया जाय जैसा कि संवत् १८३० (१७७३ ईसवी)में पूर्व था। कमेटीने एक आज्ञापत्र बंगालके सेनाध्यक्ष कर्नल लैसलीको लौट जानेके लिए लिख भेजा। राघोबाने भी सिन्धियाके पास स्वयं आकर प्रतिज्ञा करके आश्रय लिया। इस प्रति पत्र स्थिर रहनेके लिये आंग्लसेनाने फार्मर तथा लफ्टनेण्ट स्टूवर्टको जमानतपर मराठोंके सुपुर्द किया। इस प्रकार आंग्लसेना छुटकारा पाकर लौट गयी। घाट गुज़रते ही कर्नल लैसलीको

बम्बई कौंसिलकी निराशा

उसके विपरीत दूसरा आज्ञापत्र भेज दिया। बम्बई लेफ्टेनेण्ट कार्नेक, स्टेरटन और कर्नल काकबर्न तथा और भी अनेक सेनापति कम्पनीकी नौकरीसे हटाये गये। अब बम्बई कौंसिल

किंकर्तव्यविमूढ़ तथा निराश हो गयी। उसको बहकानेवाला मिस्टर मास्टिन मर चुका था। उसके सब उपायोंका परिणाम बड़ा शोकजनक हुआ। सब बातोंके मूलमें भूल यह थी कि मास्टिनने कौंसिलके हृदयपर झूठे तथा अयुक्तिपूर्ण विचार बैठा दिये थे। उसने विश्वास दिलाया था कि राघोबाके जानेपर पूनाके लोग उसके सत्कारके लिये उठ खड़े होंगे और नाना फड़नवीससे लोग इतने अप्रसन्न हैं कि मराठा लोग आंग्लसेनाकी सहायता करनेपर उद्यत हो जायँगे। परन्तु उसने मराठोंके आचार-व्यवहार तथा मानसिक वृत्तिको नहीं समझा था। यद्यपि उनमें दलबन्दियां हो गयी थीं किन्तु अभी वे इतने न गिरे थे। आंग्लसेना पूनासे १८ मीलकी दूरीतक आ पहुंची। एक भी सहायक न उठा, अतः उसे यह अपमान सहना पड़ा। बम्बई कौंसिलका प्रधान मिस्टर हारनबी भी धृतिशील व्यक्ति था। उसने पिछली घटनापर विशेष ज़ोर न देकर भविष्यके लिए तत्काल ध्यान दिया। उसने पूना कहला भेजा कि मैं बड़गांवके सन्धिपत्रपर कार्य करनेके लिये तय्यार नहीं। उधर उसने कौंसिलमें यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि किसी प्रकार सिन्धिया अपनी ओर लाया जाय। इसके लिये यह निश्चय किया गया कि सिन्धियाकी कृपाके बदले उसे भड़ौच दे दिया जाय। उसने अपनी सेनाको नयी शिक्षा देनी भी प्रारम्भ कर दी।

उधरसे अब बंगालकी सेना भी आ रही थी। हमने लिखा है कि वारेन हेस्टिंग्सने विशेष प्रयोजनवश स्थलमार्गसे सेना भेजी थी। परन्तु लैस्लीको मार्गमें इतनी रुकावटें हुईं कि वह आगे न बढ़ सका। बुन्देलखण्डके राजपूत सेनाके अफ़सरोंको मार डालते थे, घास काटनेवालोंको पकड़ लेते थे। इसपर लैस्ली उनके झगड़ोंका निर्णय करनेके लिये बहुत समयतक वहीं पड़ा रहा। अन्तमें गवर्नर जनरलने उसे वापस बुलाकर कर्नल गोडर्डको उसके स्थानमें नियुक्त किया। इस समाचारके पहुंचनेसे पूर्व ही लैस्ली मर गया। कर्नल गोडर्डने शीघ्र यात्रा करके नर्मदाको पार किया। अब यहां उसे मोदाजीके साथ सन्धि करके ससैन्य उसे पूना ले जाना था। उसने मिस्टर वाटरस्टोनको मोदाजीके पास भेजा। मोदा-जीने उसका बड़े प्रेमसे सत्कार किया और सब वृत्तान्त कह सुनाया। यद्यपि उसकी बड़ी इच्छा थी कि मेरा वंश सितारा राजधानीमें राज्य करे परन्तु पूना सरकार उस समय बड़ी बलशालिनी थी इसलिये वह इसके लिए किसी और अवसरकी प्रतीक्षा करना चाहता था। उसी समय मोदाजीपर पूनासे षड्यन्त्रमें सम्मिलित होनेके लिये दबाव डाला जा रहा था। इन परिस्थितियोंमें यद्यपि वह स्पष्टतः किसी सन्धिके लिये तय्यार न हुआ परन्तु उसने गवर्नर जनरलसे मैत्री स्थापित करनेके लिये दृढ़ निश्चय कर लिया। वहांसे गोडर्ड आगे बढ़ा तो उसे बम्बईको युद्धसम्बन्धी कर्नलोंके परस्पर विरोधी भावोंके दो पत्र पहुंचे। उसने शीघ्र पहुंचनेका विचार कर लिया। उसके पहुंचनेपर मिस्टर हारनबीकी जानमें जान आ गयी।

अब यह निश्चय हुआ कि [illegible] तो पूना सरकारके साथ पुरन्धरके सन्धिपत्रके आधारपर सम्बन्ध आरम्भ किया जाय और भीतरसे सिन्धियाको पृथक् करनेका यत्न किया जाय। यदि ये दोनों न हो सकें तो फतहसिंह गायक-

गाइके साथ मित्रता स्थापित की जाय। सिन्धियाने रक्षक नियत करके रघुनाथराव को बुन्देलखण्डमें जागीर देकर भेज दिया। रावोबाके साथी भी साथ थे। उसने अपने साथियोंको सहायतासे सिन्धियाके सिपाहियोंके साथ मुकाबला किया और भागकर फिर अंग्रेज़ोंके पास भड़ोच आ पहुंचा।

जनरल गोडर्डको दोनों स्थलोंपर सफलता हुई। अब उसने फ़तहसिंह गायकवाड़को अपने साथ मिलाना चाहा। संवत् १८३६ के १७ पौष (पहली जनवरी सन् १७८०) को सेना लेकर उसने गुजरातपर चढ़ाई की। फ़तह-

गायकवाड़से मित्रता

सिंह बहुत दिनों तक कुछ उत्तर न देकर पूनासे सहायताकी प्रतीक्षा करता रहा। एक मासके भीतर अंग्रेज़सेनाने बहुतसे नगर तथा धोवाईके दुर्ग ले लिये। फ़तहसिंहको अब भय हुआ और वह पूनासे निराश हो कर अंग्रेज़ोंके साथ मित्रता करनेपर उद्यत हो गया। पेशवाको कर देना बन्द करके उसने तीन सहस्र सेना द्वारा अंग्रेज़ोंको सहायता देना भी स्वीकार कर लिया। इस प्रकार "मराठा सघ" का एक स्तम्भ टूट गया और गायकवाड़ अंग्रेज़ोंके पक्षमें आ गया।

अंग्रेज़सेनाने अहमदाबादका दुर्ग ले लिया। अब सिन्धिया तथा होल्कर सेना लेकर फ़तहसिंहकी सहायताके लिये चले। परन्तु अब समय व्यतीत हो चुका था। उनके विलम्बका कारण यह था कि रावोबाके भागनेपर नाना फड़नवीस और सिन्धियामें कुछ परस्पर वैमनस्य हो गया। नाना फड़नवीस सिन्धियापर दोषारोपण करता था कि तुमने मेरे साथ अधिक रक्षकदल न भेजा। जब सिन्धियाकी सेना नर्मदा पार करके बड़ोदाके पास पहुंची तो सिन्धियाने जनरल गोडर्डके साथ इस विचारसे फिर पत्रव्यवहार आरम्भ किया कि वे रावोबाको लौटा देंगे। उसने उन दोनों अंग्रेज़ोंको जो ज़मानतमें उसके साथ थे मुक्त कर दिया। वे अंग्रेज़ी कैम्पमें जा मिले, परन्तु जनरल गोडर्डने उत्तर दिया कि रावोबापर मैं कुछ भी ज़ोर नहीं डाल सकता।

अभी तक सिन्धियाको यह ज्ञात न था कि यह भावी युद्ध रावोबाके नामपर नहीं बल्कि अंग्रेज़ स्वयं अपनी बदनामीको धोनेके लिये कर रहे हैं। गोडर्ड यह चाहता था कि सिन्धिया और होलकर मिल कर पहिले आक्रमण करें, परन्तु उन्होंने केवल उसकी सेनाको कामसें लगाये रखा और कोई युद्ध न किया। बम्बई कौंसिल गोडर्डपर अप्रसन्नता प्रकट करने लगी कि यह व्यर्थ कालयापन कर रहा है पर वह विवश था। अन्तमें जब मराठोंने उसके भोजन आदिकी सामग्री नष्ट करना आरम्भ किया तो गोडर्डको नर्मदाके पास एक और स्थान ढूंढना पड़ा।

हेस्टिंग्ज़ने राना गोहदकी सहायतासे जिसके साथ गवर्नर जनरलने मराठोंके विरुद्ध मित्रता की थी सिन्धियाकी रियासतपर आक्रमण करनेके लिए कप्तान पोपहमके अधीन कुछ सेना भेजी। कप्तान सफलताके साथ ग्वालियरके दुर्गके पास जा उपस्थित हुआ। एक रात सीढ़ियां

ग्वालियर[illegible] दुर्गपर अंग्रे[illegible] अधिकार

लगा कर सिपाही ऊपर चढ़ गये और संवत् १८३७ के १० श्रावण (४ अगस्त १७८० ईसवी) को उन्होंने बिना युद्ध किये ही दुर्गपर अधिकार कर लिया।

हटा लिया और अंग्रेज़ सेनाके लिए भोजनके जहाज़ पहुंच गये। ठीक ठीक हेतु ज्ञात नहीं कि फ्रांसीसी नौसेनापतिने ऐसा क्यों किया। केवल एक ही बात सम्भव प्रतीत होती है कि उसने अपने लिये कुछ बड़ी रिश्वत लेकर अपनी जातिके शत्रुओंको बचा दिया।

आयरकूटके लिये अब हैदरअलीके साथ युद्ध करनेके सिवाय और कोई उपाय न था इस युद्धमें जो कि पोटोनावोके स्थानपर हुआ अंग्रेज़सेनाने हैदरअलीको पराजित किया। इस विजयसे अंग्रेज़ोंके पैर करनाटकमें पुनः जम गये।

जनरल गोडर्ड

जनरल गोडर्डको मद्रासके कष्टोंके पश्चात् पूना सरकारसे सन्धि करनेके लिये यत्न करने और यदि वह स्वीकार न करे तो पूर्ण दल-बलके साथ सामना करके तत्काल निर्णय करनेका आदेश हुआ। उस समय सिन्धिया तो अपनी रियासतकी रक्षाके लिए मध्यभारतकी ओर चला गया था। कोंकनमें अंग्रेज़ सेनाने कुछ मास घेरा डाल कर बसीनके दुर्गपर भी अधिकार कर लिया था। युद्धमें प्रसिद्ध मराठा जनरल रामचन्द्र गणेश काम आया।

गोडर्डने नाना फड़नवीसको सन्धिके लिये लिखा, और हैदरके विरुद्ध मित्रता स्थापित करनेका प्रस्ताव भी उपस्थित किया। नाना फड़नवीसने इसका स्पष्ट उत्तर दिया कि मैं कोई ऐसी सन्धि नहीं करूंगा जिसमें मेरा मित्र हैदरअली शामिल न होगा।

मराठोंके हाथ गोडर्डकी पराजय

इसपर गोडर्ड पूनापर आक्रमण करनेके विचारसे बोरघाट तक आया। नाना फड़नवीसने सेनाको पुरन्दरके दुर्गमें भेज दिया और स्वयं हरिपन्त फड़के और तुकोजी होलकरके साथ घाटकी ओर बढ़ा। उसने परशुराम भाऊको सेना देकर कोंकन भेजा। परशुरामने कप्तान मेकीकी सेना पर जो कि भोजनसामग्री लिये आ रही थी ऐसा आक्रमण किया कि वह बड़ी कठिनाईसे विनष्ट होने २ बची। जनरल गोडर्डके लिये मार्ग बहुत असम्भव हो गया। अन्तमें उसने बम्बई कौंसिलसे सम्मति लेकर लौटनेका निश्चय किया। कुछ और सेना कर्नल बार्नके अधीन बसीनसे भोजन सामग्री ला रही थी। उसपर भी परशुरामने आक्रमण किया और समस्त पशु अपने अधिकारमें कर लिये। गोडर्ड अब लौट भी न सकता था। उसने बम्बईसे सहायतार्थ प्रार्थना की, परन्तु अब तुकोजी होलकर भी परशुरामके साथ आ मिला। एक ओरसे हरिपन्त सेना लिये आ रहा था। उसने पीछेसे आ कर तोपें, बारूद और दो सहस्र [illegible] इत्यादि सामान गोडर्डसे छीन लिया। अब गोडर्ड अपनी सेना लिये भागा जाता [illegible] मराठा सेना दोनों ओरसे उसके पीछे आक्रमण करती जाती थी। यदि वह कहीं ठहर जाता तो मराठा सेना भी वहीं ठहर जाती। [illegible] मनुष्य मारे गये जिनमें १८ अफ़सर थे। [illegible] मराठा सेनाने [illegible]।

मराठा लोग गोडर्डकी इस वापसीको अपनी बड़ी भारी विजय समझते हैं यद्यपि उनको भी पर्याप्त हानि हुई । मराठोंने कोंकणके दुर्गोंको दृढ़ कर लिया । कुछ सेना गुजरात भेजी, शेष सैनिक अपने घर चले गये । बम्बईकी परिस्थिति कुछ अच्छी न थी इसलिए गवर्नर जनरलने सिन्धियाके विरुद्ध कर्नल कामकके अधीन और सेना भेजी । सिन्धिया भली भांति सेनाका सामना करता रहा परन्तु बहुत दिनों तक युद्ध चलनेसे उसका देश नष्ट होने लगा । वह युद्ध जारी रखनेसे ऊब गया । अन्तमें उसने संवत् १८३८ के २७ आश्विन (१३ अक्टूबर १७८१ ई०) को आंग्ल-सेनाके साथ सन्धि कर ली । सिन्धियाने अंग्रेज़ों और मराठोंके मध्यमें सन्धि करानेका निश्चय किया । जब इधर सिन्धिया सन्धि करानेपर राज़ी हो गया तो उधर वारेन हेस्टिंग्ज़ने मोदाजीसे हैदरअलीके विरुद्ध सहायताके लिये प्रार्थना की । मोदाजी भी द्रोहमें सम्मिलित था । उसने अपनी प्रतिज्ञानुसार तीस सहस्र सैनिक अपने पुत्र चिमनाजीके अधीन कटक भेजे । यह सेना एक वर्षतक वहां ही पड़ी रही । जब चिमनाजीने कहला भेजा कि ५० लाख रुपया लेकर मैं अपनी सेना हैदरअलीके विरुद्ध ले जानेपर उद्यत हूं । निज़ाम अलीपर इस समाचारका बहुत प्रभाव पड़ा । वह हैदरअलीसे सर्वथा पृथक् रहा । उधर नाना फड़नवीसकी ओरसे मोदाजीको धमकियां आ रहीं थीं कि तुम अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करो अन्यथा पूना सरकारकी ओरसे तुमपर आक्रमण किया जायगा । इससे दुःखित होकर मोदाजीने पूनासरकार और अंग्रेज़ोंके मध्यमें सन्धि करानेका यत्न आरम्भ किया ।

अन्ततः गवर्नर जनरलके प्रतिनिधि ऐण्डर्सन और पूनासरकारकी ओरसे महादाजी सिन्धियाके मध्य संवत् १८३९ के २२ ज्येष्ठ (६ जून १७८२ ई०) को मालबाईमें सन्धि हुई । इसका आधार पुरन्धरका सन्धिपत्र सालबाईका सन्धिपत्र था । इस सन्धि-पत्रकी स्वीकृति देनेमें नाना फड़नवीस हैदरअलीसे सम्मति लेनेके विचारसे विलम्ब करता रहा, उसकी सम्मतिके बिना वह सन्धि करनेपर कदापि तैयार न था । इतनेमें समाचार आया कि हैदरअली ६५ वर्षकी आयुमें परलोक वासी हो गया । इसपर नाना फड़नवीसने संवत् १८३९ के चैत्र (फरवरी १७८३ ई०) में उस सन्धिपत्रपर हस्ताक्षर कर दिये । इस सन्धिपत्रके अनुसार राघोबाको गोदावरीपर जागीर दी गयी ।

हैदरअलीकी मृत्युके उपरान्त उसके पुत्र टीपूने युद्ध जारी रखा । मद्रास-सन्धिके लिये कौंसिलके सविनय प्रार्थना करनेपर और उसके दूतोंके साथ दुर्व्यवहार करनेके उपरान्त टीपूने मंगलोरका सन्धिपत्र स्वीकार किया । सिन्धियाके शीघ्र सन्धि करनेका एक और कारण यह था कि इस समय नजफ़खां जो मराठोंके दक्षिण जानेके पश्चात् दिल्लीमें शासन करता था मर गया था । नजफ़खांकी मृत्युपर उसके पुत्र अफ़रासियाब खां और एक सम्बन्धी मिर्ज़ा शफ़ीके मध्य झगड़ा हुआ जिसमें शफ़ी मारा गया ।

अब महादाजीको दिल्ली पहुँचकर वहाँ अपना शासन जमानेका अवसर मिल गया। यह भी लिख देना आवश्यक है कि गवर्नर जनरलने गुप्तरीतिसे अपनी अनुमति प्रकट कर दी कि दिल्लीसम्बन्धी बातोंमें मैं किसी प्रकार हस्तक्षेप न करूंगा। वहाँ सिन्धियाको सब कुछ करनेका अधिकार होगा।

दिल्लीमें महादाजीका शासन

अफरासियाब खाँने सहायताके लिये सिन्धियाको बुला भेजा। परन्तु मीर्ज़ा शफ़ीके भाईने अफरासियाबका वधकर डाला। अब महादाजी वास्तविक रूपमें दिल्लीमें स्वतन्त्र हो गया। उसने पेशवाके लिये प्रतिनिधिका पद प्राप्त करके स्वयं दिल्लीमें राज्य करना आरम्भ किया। बादशाहने महादाजीको सेनाध्यक्ष नियुक्त करके दिल्ली तथा आगरा उसे दे दिये। सिन्धियाने साठ सहस्र रुपया राजकुलके व्ययके लिये देना स्वीकार किया। इस प्रकार मराठोंका प्रथम युद्ध समाप्त हुआ।

युद्धकी समाप्तिपर यद्यपि अंग्रेज़ोंकी दशा युद्धके पूर्वकी सी ही रही परन्तु देशमें उनकी योग्यताका सिक्का जम गया, क्योंकि सभी रियासतें एकत्र होकर भी उनको न निकाल सकीं। मराठा साम्राज्य युद्धके अनन्तर अपनी उन्नतिके शिखरपर चढ़ गया। इधर नाना फड़नवीस दक्षिणमें निज़ाम तथा टीपूसे चौथ प्राप्त कर रहा था, उधर महादाजी सिन्धिया दिल्लीका अधिपति बना हुआ था। उसने बंगालपर मराठा चौथका पुराना दावा किया। उस समय हेस्टिंग्ज़के स्थानपर मैकफर्सन गवर्नर जनरल था। उसने इस मांगपर मोदाजीको सिन्धियाके विरुद्ध करना चाहा, क्योंकि बंगालकी चौथपर मोदाजीका अधिकार था। अब वह अंग्रेज़ोंका मित्र था अतएव सिन्धियाको मौन रह जाना पड़ा।

युद्धका प्रभाव

इसके अगले बीस वर्षोंमें अंग्रेज़ी सरकारकी शक्ति योग्य तथा अनुभवी अफ़सरोंके आनेसे बढ़ती ही गयी। 'मराठासंघ' स्वाभाविक निर्बलताओंके कारण टुकड़े टुकड़े होने लगा। संघके पांच सदस्योंमेंसे दो पृथक् हो गये थे। अब शेष तीनोंके अन्दर एक दूसरेसे द्वेष होना आरम्भ हुआ, जिससे मराठासाम्राज्यकी समाप्ति ही हो गयी। सिन्धिया और होलकर दोनों उत्तर भारतकी ओर थे। सिन्धियाने दिल्लीमें अपना अधिकार जमा लिया था। होलकर सदैव उससे हार्दिक वैर करता था। सिन्धिया तो राजपूत राजाओंसे कर लेनेपर कटिबद्ध हुआ। इसमें उसे जयपुर तथा जोधपुरके विरुद्ध युद्ध भी करने पड़े।

मराठोंकी अवनति

छठवां प्रकरण

दक्षिणमें अंग्रेजोंका संग्राम।

जब सिन्धिया राजपूतोंसे झगड़ रहा था तब पूनासरकार, हैदरअलीके पुत्र टीपूके साथ युद्ध करनेमें लगी हुई थी। टीपू अपने पिताके सर्वथा विपरीत चलता था। उसे अपने बलका बड़ा गर्व था। टीपूने नरगोधके देसाईसे अत्यन्त अधिक कर प्राप्त करना चाहा। देसाईने पूना सरकारसे शिकायत की। नाना फड़नवीसने टीपूको लिखा कि तुम्हें साधारण कर लेनेका अधिकार है। टीपूने देसाईके परिवारका वध करवा दिया और उसकी कन्या अपने महलोंमें भेज दी। उसने आर्योंको पकड़कर बलपूर्वक सुन्नत(Circumcision) करके मुसलमान बनाना आरम्भ किया, जिससे एक बार दो सहस्र ब्राह्मणोंने मरना स्वीकार कर लिया।* इसपर हरिपन्त मराठा सेना लेकर पहुंचा। निज़ाम भी मराठोंके साथ सम्मिलित हो गया। यह देख टीपूने सन्धिके लिये प्रार्थना की। उसने बदामी, कटोर तथा नरगोधके अतिरिक्त ४५ लाख रुपये देना स्वीकार किया। इसके बाद फ्रांसके साथ सम्बन्ध उत्पन्न करके वह अपना सैनिक बल बढ़ानेमें लग गया। इससे सबके हृदयमें भयका संचार हो गया। इसी समय मसालत जंगके मर जानेपर लार्ड कार्नवालिसने प्रतिज्ञानुसार निज़ामसे गन्तूरका ज़िला मांगा। निज़ा-

टीपूसे युद्ध

---

* कुछ विद्वानोंका कहना है कि टीपू न तो उतना अत्याचारी ही था, जितना कि वह प्रायः बतलाया जाता है और न उसे हिन्दुओंसे विशेष द्रोह ही था। श्रीसम्पूर्णानन्दजी अपनी पुस्तक 'भारतके देशी राष्ट्र' में लिखते हैं—

"उसकी (टीपूकी) योग्यताका इनको (अंग्रेजोंको) अनुभव हो गया है—उसके पास विश्वासपात्र और परामर्श देनेवाले हैं पर मन्त्री एक भी नहीं है और वह अपने शासनके समस्त अंगोंका निरीक्षण और नियन्त्रण स्वयं करता है, वह बिना बाहरी दिखावेके अपने गौरवको बनाये रखता है। उसके राज्यमें कृषकोंकी रक्षा होती है और उनका परिश्रम प्रोत्साहित और पुरस्कृत होता है। गत युद्धके पहले टीपूकी प्रजा, विशेषतः मालाबारकी प्रजा—के प्रति क्रूरता और अत्याचारके समाचार बहुत फैल रहे थे—यह निर्मूल नहीं थे पर उसके अनुकूल होनेका बड़ा स्पष्ट प्रमाण है कि युद्धके समय उसके दैनिक राज्यमें एक भी [illegible], सुल्तान या जमींदार व्यक्ति उसका पक्ष परित्याग करके हमसे आकर न मिला"। (मेजर जनरल सर जान मैलकम लिखित 'पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ इंडिया' भाग २)।

अभी थोड़े दिन हुए श्री शङ्कराचार्यजीके शृंगेरी मठके कई ताम्रपत्र और अन्य ऐतिहासिक पत्र प्रकाशित हुए हैं। उनसे प्रतीत होता है कि टीपू उक्त मठकी अनेक प्रकारसे सहायता करता था और तत्कालीन मठाधीशसे विजयके लिए आशीर्वाद मांगता था। इसे मनुष्यको अत्याचारी और हिन्दुओंका शत्रु बताना सर्वथा भूल करना है।"

सने ज़िला दे दिया, किन्तु इसी सन्धिपत्रके आधारपर टीपूके विरुद्ध अंग्रेज़ोंकी सहायता भी मांगी। अंग्रेज़ोंको टीपूके फ्रांसके साथ सम्बन्धसे भय उत्पन्न हो गया था। इसलिये मराठों, अंग्रेज़ों तथा निज़ामने मिलकर टीपूको अपमानित करनेका विचार कर लिया। मरहठा, मुग़ल तथा आंग्लसेनाने मिलकर टीपूकी रियासतपर आक्रमण किया। टीपू एक वर्षतक लड़ता रहा, आखिर सिरिंगापटमको आंग्लसेनाके हाथ पड़ते देखकर संवत् १८४८ में उसने सन्धि कर ली और तीन करोड़ रुपया और आधा देश तीनों शक्तियोंके सुपुर्द कर दिया। उन्होंने यह धन बराबर बराबर परस्पर बांट लिया।

टीपूके विरुद्ध तीन शक्तियां

सिन्धियाको राजपूतोंके साथ संग्राममें बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। एक समय शाहीसेना भी राजपूतोंके साथ मिल गयी। महादाजीने एक पत्र नाना फड़नवीसको सहायताके लिये लिखा। उसमें बताया कि मैं सब कुछ मराठा-साम्राज्यके लिये कर रहा हूं। अपनी सेवाके कार्योंकी ओर ध्यान दिलाकर उसे लिखा कि तुम हृदयमें मेरे प्रति द्वेष भाव न रखो। इसी समय गुलाम कादिर रुहेलाने दिल्लीपर अधिकार करके शाह आलमकी आंखें निकलवा डालीं और उसके परिवारका वध कर दिया। इसपर राजपूतोंके साथ करका निर्णय करके सिन्धियाको सेना लेकर दिल्ली आना पड़ा। गुलामकादिर भागा किन्तु पकड़ा जा कर मारा गया। सिन्धियाने चक्षुहीन बादशाहको पुनः सिंहासन-पर बैठाया। दिल्लीके सभी झगड़ोंका निर्णय करके सिन्धिया बादशाहकी ओरसे अपने आपको पेशवाका प्रतिनिधि कहला कर महाराजाधिराज आदिकी उपाधियां तथा बहुमूल्य वस्त्र लेकर पूनाको चला। नाना फड़नवीसको कुछ सन्देह था परन्तु महादाजी उसके साथ इतने प्रेम और आदरसे मिला कि वह सन्तुष्ट हो गया। पूनामें बड़े समारोहके साथ सभा की गयी जिसमें अल्पवयस्क पेशवा राजवस्त्र धारण कर सिंहासनपर बैठा। उसने जागीरदारोंसे व्यवहार स्वीकार किये। मुग़ल बादशाहकी यह आज्ञा सुनायी गयी कि उसने सारे राज्यके अन्दर गोवध बन्द कर दिया है।

गुलाम कादिर रुहेला

सिन्धियाकी शक्ति

अब सिन्धियाने पूनामें रहकर पेशवाको अपने हाथमें लाना चाहा। जब नाना फड़नवीसने देखा कि पेशवा मेरे विरुद्ध हो रहा है तो उसने आकर बड़े दुःखके साथ अपना त्यागपत्र दे दिया और बनारस जानेकी इच्छा प्रकट की। पेशवाने क्षमा मांगी और कहा कि आगे ऐसी बात न होगी जिससे अप्रसन्नताका अवसर मिले।

सिन्धियाकी अनुपस्थितिमें उसकी सेना और होलकरकी सेनामें लड़ाई हो गयी। सिन्धियाकी सेनाको विजय प्राप्त हुई और पेशवाकी आज्ञासे युद्ध बन्द किया गया। यद्यपि सिन्धिया अपने आपको पेशवाका तुच्छ नौकर तथा साधारण पटेल कहता था किन्तु पूनामें यह भाव सर्वत्र फैला हुआ था कि वह सबको निकाल कर अपने हाथमें अधिकार करना चाहता है, जैसा कि उसने दिल्लीमें किया है। पर अन्तमें महादाजी सिन्धिया ज्वरपीड़ित हो कर संवत् १८५० में इस लोकसे चल बसा।

सिन्धियाकी मृत्यु

महादाजीके विचार

इसमें कोई सन्देह नहीं कि महादाजी अपने समयका प्रसिद्ध पुरुष था। यद्यपि अपनी आयुके अन्तिम भागमें उसे अपनी बलवृद्धिकी प्रबल इच्छा हो गयी थी तथापि वह उस बलको मराठा-साम्राज्यके दृढ़ बनानेमें लगाना चाहता था। उसने फ्रांसीसी अफसर डी बायनके अधीन यूरोपीय रीतिसे कवायद करने वाली एक बड़ी सेना तैयार कर ली थी। उस समय उसके जीवनकी यही सबसे बड़ी इच्छा थी कि जैसे हो अंग्रेजोंसे देशकी रक्षा हो। उसने यह भी देख लिया कि संघ (confederacy) के भिन्न भिन्न सदस्य मिल कर भी यह न कर सकते थे। अंग्रेजोंके मुकाबलेपर एक संयुक्त बलवान् राज्य स्थापित करना आवश्यक था जिसके शासन और भयसे अन्य मराठा रियासतें परस्पर मिल सकें। वह यह बल अपने कुलमें उत्पन्न करना चाहता था। जब वह पूना आ रहा था, तो दिल्लीमें यह खबर उड़ी कि सिन्धिया बादशाहकी आज्ञाके अनुसार मराठोंकी सहायतासे बंगालसे चौथ प्राप्त करने आ रहा है। इसपर लार्ड कार्नवालिसको भी बड़ी चिन्ता हुई थी।

जब सिन्धिया पूनामें था तो उस समय पूना सरकारका निज़ामके साथ चौथके विषयमें झगड़ा हुआ। कोई दस बारह वर्षसे निज़ामने कर देना बन्द किया था। परिस्थिति ऐसी होती गयी कि पूना सरकार कर मांग भी न सकी। निज़ाम अंग्रेजों द्वारा निर्णय कराना चाहता था। सिन्धिया इसके बहुत विरुद्ध था। उसने नाना-फड़नवीससे स्पष्ट कह दिया कि अंग्रेज़ निज़ामके साथ मिलकर मराठोंसे युद्ध करनेकी तैयारी कर रहे हैं। नाना फड़नवीस सिन्धियाके बलके भयसे अंग्रेज़ोंके साथ बिगाड़ करने पर तैयार न था। इतनेमें लार्ड कार्नवालिस चला गया, और

सर जान शोरकी उदासीनताकी नीति

उसके बाद सर जान शोरने न्यूट्रल पालिसी (उदासीनताकी नीति) धारण कर ली। उसने निज़ामको सहायता देनेसे इन्कार कर दिया। निज़ामने अपनी सेनाको बढ़ाना तथा दृढ़ करना आरम्भ किया। जब मराठा दूत गोविन्दरावने निर्णयके लिये कहा तो निज़ामके मन्त्री मुशीरुलमुल्कने उत्तर दिया कि अमुक अमुक विषयोंके निर्णयके लिये नाना फड़नवीसको बुलाओ। गोविन्दरावने कहा, नानाफड़नवीस कैसे आ सकता है? मन्त्रीने कहा हम बतावेंगे कि वह किस प्रकार उपस्थित होता है। इसपर पूनामें युद्धकी तैयारी होने लगी। मुगल बहुत ही क्षुब्ध और उत्तेजित थे। वे यहां तक डींग मारने लगे कि पेशवाको अपनी लँगोटी धारण कराकर बनारस वापिस भेज देंगे।

कुर्दलाका युद्ध

नानाफड़नवीसने समस्त मराठा सरदारोंको युद्धके लिये एकत्र किया। महाराज सिन्धियाके स्थानपर उसके भ्रातृपुत्र आनन्दरावका पुत्र दौलतराव जो कि महादाजीका दत्तक पुत्र था आ बैठा। इसकी उम्र इस समय केवल १५ वर्षकी थी। दौलतराव और तुकोजी होल्कर पूनामें आ उपस्थित हुए। गोविन्दराव गायकवाड़ और रायोजी भोंसला सेना लेकर आये। यह अन्तिम बार मराठा संघके भिन्न भिन्न सदस्य सेनामें

एकत्र हुए। कुर्दलाके क्षेत्रमें दोनों सेनायें उपस्थित हुईं। युद्धके पश्चात् मुग़लोंमें व्याकुलता फैल गयी, निज़ाम भाग कर कुर्दलाके दुर्गमें प्रविष्ट हो गया। मराठा सेनाने उसे घेर कर अपने वशमें कर लिया, इस पर निज़ामने तीन करोड़ रुपये और बहुत-सा प्रान्त तथा बरारके राजाको २९ लाख रुपये देना स्वीकार किया। परन्तु सबसे बढ़कर अपमान यह था कि उसे अपने मन्त्री मुशीरुलमुल्कको भी समर्पित करना पड़ा। मुशीरुलमुल्क बड़ी प्रतिष्ठाके साथ पेशवाके समक्ष लाया गया। पेशवा बड़े शोकमें डूबा हुआ था। कारण पूछनेपर उसने कहा "मुझे खेद होता है कि दोनों पक्ष झुके गिरे हुए प्रतीत होते हैं। एकने बिना युद्धके हार मान ली। दूसरा यों ही विजय प्राप्त करनेकी डींग मार रहा है।"

इस विजयके समय नाना फड़नवीसका ऐश्वर्य अपने शिखरपर था। एक साधारण घटनाने उसके अन्तिम जीवनके भागको कष्टमय बना दिया। नाना फड़नवीस राघोबाके पुत्रोंका रक्षक था। उनमेंसे बाजीराव बड़ा योग्य तथा प्रसन्नचित था। उसकी उम्र १९ वर्ष की थी। जो उससे मिलता था प्रसन्न हो जाता था।

पेशवा माधवरावकी मृत्यु

नवयुवक पेशवाकी उससे मैत्रीकी इच्छा हुई। नाना फड़नवीस आनन्द बाईके पुत्रको भयानक समझ कर पेशवाको जितना रोकता था उसका अनुराग और भी बढ़ता था। बाजीरावने एक पत्रमें यह लिख कर भेजा कि हम दोनों क़ैदी हैं। मैं दुर्गमें हूं और तुम मन्त्रीके हाथोंमें परन्तु हमारे हृदय स्वतंत्र हैं और हम हृदयसे स्नेह कर सकते हैं। इस प्रकार पत्र-व्यवहार आरम्भ हो गया।

जब नाना फड़नवीसको इस पत्रव्यवहारका पता लगा तो वह बाजीरावका और सावधानीसे निरीक्षण करने लगा। पेशवाको यह अत्यन्त बुरा लगा और यों भी वह उदासीन ही रहता था। संवत् १८५२ में दशहराके दिन उसने छतसे गिरकर अपने प्राण त्याग दिये। उसने मरते हुए यह इच्छा प्रकट की कि मेरे स्थानपर बाजीराव पेशवा नियत किया जाय।

नाना फड़नवीस मराठा-साम्राज्यकी चिन्तामें पेशवाकी मृत्युका शोक भी भूल गया। उसने तुकोजी होलकरसे सम्मति ली और दौलतराव तथा राघोजी भोंसलेको

बाजीराव सानी अन्तिम पेशवा

बुलाया। उसने उन्हें बताया कि लोग राघोबाके नामसे कितनी घृणा करते हैं, और उसका अंग्रेज़ोंके साथ सम्बन्ध भविष्यके लिये कितना भयानक है। इसलिये उसने तजवीज़ की कि पेशवाकी स्त्री किसी लड़केको गोद ले। सबने इसका समर्थन किया। सिन्धियाका अफसर बलोबा तातिया इस प्रस्तावके विरुद्ध था। बाजीरावने तत्काल उसके साथ गुप्त पत्र-व्यवहार आरम्भ कर दिया, और उसके द्वारा दौलतरावको कुछ देश देनेका वचन दे कर अपने साथ मिला लिया।

जब नानाफड़नवीसको इसका पता लगा तो उसने परशुराम भाऊको बुला कर सम्मति ली और निश्चय किया कि सिन्धियाके आनेसे पूर्वही बाजीरावको पेशवा बना दें। बाजीरावको परशुराम पूना ले आया। नाना फड़नवीससे मिल कर

उन्होंने पिछली सब बातोंको भूल जानेकी प्रतिज्ञायें कीं। इसपर दौलतराव सेना ले कर पूनाकी ओर आया। नाना फड़नवीसने सब कुछ परशुरामको समर्पित कर दिया और स्वयं पूनासे सितारा चला गया। वहां उसने राजाको अपने स्थान पर रखनेका यत्न किया किन्तु असफल होकर वह वाई चला गया। इधर जब दौलतराव पूना आया तो उसके मन्त्री बालोबा तातियाने परशुरामके साथ द्रोह करके बाजीरावको क़ैद कर लिया। उसके छोटे भाई चमनाजी आपाको मरे हुए पेशवाकी स्त्रीका दत्तक पुत्र बताकर पेशवा प्रसिद्ध कर दिया। बाजीरावने क़ैदकी दशामें नाना फड़नवीस-से पत्रव्यवहार आरम्भ किया। परशुराम भाऊ नाना फड़नवीसको पकड़ना चाहता था। इसपर नानाने भी कई दुर्ग दृढ़ करके सेना एकत्र करनी आरम्भ कर दी। तुकोजी होलकर प्रत्येक समय उसका सहायक था। इसके अतिरिक्त नानाने सर्जेराव द्वारा जिसकी कन्याके साथ दौलतराव विवाह करना चाहता था, दौलतरावको भी अपने मन्त्रीके विरुद्ध करके अपनी ओर मिला लिया। बाजीरावने सर्जेरावको दो करोड़ रुपये दे करके प्रसन्न कर लिया और इस बातपर राजी किया कि वह अपनी कन्या सिन्धियाको दे दे। सिन्धियाने अपने मन्त्री बालोबाको क़ैद कर लिया और बाजीराव सिंहासनपर बिठा दिया गया। बाजीराव स्वभावसे बड़ा धोखेबाज था।

बाजीरावकी नीति

सिंहासनपर बैठते ही उसने अपने आपको सिन्धिया और नाना फड़नवीससे मुक्त करनेकी चेष्टा आरम्भ कर दी। इतनेमें तुकोजी होलकरकी मृत्यु हो गयी और उसके चार पुत्रोंमें झगड़ा हो गया। सबसे बड़ा काशीराव सरल प्रकृतिका पुरुष था। सिन्धिया उसकी ओर हो गया, किन्तु दूसरे दो भाई जसवन्त राव और यशोजी मल्हाररावके पक्षमें थे। युद्धमें मल्हारराव मारा गया। जसवन्तराव नागपुर भाग गया, यशोजी कोल्हापुरकी ओर भागा। इस प्रकार होलकरका देश भी सिन्धियाके अधीन हो गया, और नानाका बल बहुत ही न्यून हो गया।

बाजीरावने सर्जेरावको समझाया कि जबतक नाना फड़नवीसका अधिकार है वह तुम्हारे पथमें विघ्न डालता रहेगा। एक षड्यन्त्र रच कर सिन्धियाने नाना फड़नवीसको क़ैद कर लिया। उसकी तथा उसके सम्बन्धियोंकी सब सम्पत्ति लूट ली गयी। सर्जेरावने कन्याका विवाह सिन्धियासे कर दिया और स्वयं उसका मन्त्री बन गया। बाजीरावने सर्जेरावको दो करोड़ रुपये देनेका वचन दिया था। यह रक़म पानेके लिये उसने अधिकार दिया कि वह पूनाके चाहे जिस व्यक्तिको लूट ले। सर्जेरावने व्यापारियों और धनाढ्योंको अनेक प्रकारके कष्ट देकर रुपया प्राप्त किया। सारे नगरमें हाहाकार मच गया। सब लोग सिन्धियाको धिक्कारने लगे। अब बाजीरावने अपने भाई अमृतरावके साथ मिलकर सिन्धियाको क़ैद करनेका विचार किया। अमृतरावको ज्ञात न था कि सब निष्ठुरताका वास्त-विक मूल बाजीराव है। बाजीरावने सिन्धियाको बुला भेजा और धमकी देकर उससे प्रश्न किया, 'तुम पेशवाके स्वामी हो या भृत्य?' उसने विनयपूर्वक उत्तर दिया मैं भृत्य हूं। तब बाजीरावने उससे कहा कि तुम्हारे नौकरोंने नगरमें उपद्रव

सभा रक्खा है। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं कि तुम यहांसे तत्काल अमगांव चले जाओ। उस समय अमृतरावने संकेत करके उसे क़ैद करनेकी आज्ञा मांगी परन्तु बाजीरावको साहस न हुआ। उसने सिन्धियाको न पकड़वाया। किन्तु बादमें दौलतरावको पकड़नेकी साज़िशका भार अमृतरावके सिर मढ़ दिया।

दौलतरावके विरुद्ध षड्यन्त्र

इधर दौलतरावकी यह दशा थी उधर उसके विरुद्ध एक और तूफ़ान खड़ा हो गया। महादाजीकी तीन स्त्रियां थीं। उन्होंने अपने कष्टोंके आधारपर एक षड्यन्त्र दौलतरावके विरुद्ध खड़ाकर दिया। सिन्धियाकी कुछ सेना उसके विरुद्ध हो गयी। तीनों देवियां पेशवाके कैम्पमें चली गयीं। साथ ही बाजीरावने निज़ामके साथ सिन्धियाके विरुद्ध सहायताके लिये सन्धि कर ली। सिन्धियाने इस अवस्थामें विवश होकर नाना फड़नवीसको क़ैदसे मुक्त कर दिया। बाजीरावने सिन्धियासे सन्धिकी इच्छा प्रकट की।

लार्ड वेलेज़्ली

सिन्धिया, बाजीराव और नाना फड़नवीसमें परस्पर शीघ्र सन्धि हो जानेका एक और कारण हुआ। वह यह था कि संवत् १८५५ में सर जॉन शोर इङ्गलैण्डको वापस गया। उसके स्थानपर वेलेज़्ली गवर्नर-जनरल होकर आया। उसकी नीति सर जॉन शोरसे सर्वथा विपरीत थी। वह निश्चयकरके आया था कि सब देशी रियासतोंके साथ सबसिडियरी (मातहतीका) सम्बन्ध स्थापित करूंगा, क्योंकि देशी शक्तियोंको वशमें लानेकी सरल तथा उत्तम रीति यही है कि उनकी सेना अपने हाथोंमें लेकर रक्षाके लिये वे अंग्रेज़ी सरकारकी आश्रित बना दी जावें। इस समयतक निज़ामके पास फ्रांसीसी अफ़सर थे। सुलतान टीपूने तो सुदूर नीपोलियनके साथ मित्रता कर ली थी, और मैसूरके अन्दर प्रजातन्त्र-समिति (Republican Club) स्थापित कर ली थी। वेलेज़्लीने आते ही पहिले तो निज़ामको वश किया। निज़ाम अलीने फ्रांसीसी अफ़सर निकाल दिये और उनके स्थानमें कुछ निश्चित वार्षिक रक़म देनेका प्रतिज्ञापत्र और अंग्रेज़ी रक्षा स्वीकार कर लिया। इसके उपरान्त उसने मराठा सरकारपर ज़ोर देना प्रारम्भ किया कि वे भी मातहतीका सम्बन्ध (Subsidiary Relation) में सम्मिलित हो जावें। पूनामें इस समय

मातहतीका सम्बन्ध

विद्रोह तथा संग्राम हो रहे थे परन्तु मराठे इस नीतिका अभिप्राय नहीं समझते थे। उन्होंने साफ़ इन्कार कर दिया और परस्पर सन्धि कर ली। इसी समयमें निज़ाम और अंग्रेज़ोंकी सेनाने मिलकर मैसूरपर आक्रमण किया। सिरिंगापट्टनके अवरोधके समय सुलतान टीपू मारा गया। उसका राज्य अंग्रेज़ों, निज़ाम और मैसूरके पुराने राजाके कुटुम्बमें विभाग कर दिया गया। इसमें उसका स्वत्वाधिकारी जो नाम मात्रका राजा और बालकही था मैसूरके सिंहासनपर बिठा दिया गया। वेलेज़्लीने मराठोंको इस सर्वोपर एक भाग देना चाहा कि वे मातहतीके सम्बन्धमें आ जावें। मराठोंने इसे भी स्वीकार न किया।

इन परिस्थितियोंमें बाजीराव वेश बदलकर रात्रिके समय नाना फड़नवीसके पास पहुंचा। रोता हुआ उसके चरणोंमें गिर पड़ा और उसने पुनः पूना वापस चलनेकी प्रार्थना की। नाना फड़नवीसने समस्त अवज्ञा तथा कष्टपर ध्यान न देकर इस साम्राज्यको जिसके स्थिर रखनेमें उसने अपना जीवन व्यतीत किया था बचाना स्वीकार कर लिया। बाजीराव अस्थिर बुद्धिका मनुष्य था। वह सहसा नानाके विरुद्ध हो गया। नानाने जाकर उससे कहा मुझे अधिकारकी इच्छा नहीं है। मैं केवल इसी मराठा सरकारकी बेहतरीके लिये आया हूं जिसके लिये मैंने अपना सारा जीवन व्यतीत किया है। बाजीरावको नानापर अविश्वास हो गया।

बाजीरावके स्वभाव-की चंचलता

इधर यशवन्त राव होल्कर नागपुरसे भागकर मालवामें पहुंचा। उसने अपनी सेना एकत्र करके सिन्धियाके देशपर आक्रमण कर दिया। मराठा सरकार अशान्त दशामें थी। वह व्यक्ति जो एकता स्थापित करके उसे नाना फड़नवीसकी बचा सकता था संसारसे ही चल बसा। नाना फड़नवीसकी मृत्यु संवत् १८५६ के २९ फाल्गुन (१३ मार्च १८०० ई०) को हुई। इसके साथ ही मराठा-राज्यकी बुद्धिमत्ता और योग्यताकी समाप्ति हो गयी। नाना फड़नवीस बड़ा नीतिज्ञ तथा योग्य व्यक्ति था। वह धर्मात्मा तथा मितव्ययी था। प्रत्येक कार्य नियमित समयपर करता था। वह इस प्रकार अकेला समस्त साम्राज्यका काम दिन रात परिश्रम करके करता रहता था कि बुद्धि चकरा जाती है।

मृत्यु

यशवन्त राव होल्कर मालवामें अपना बल क्रमशः बढ़ा रहा था। उसने सिन्धियाकी सेनाओंको जो उसके विरुद्ध गयीं पराजित कर दिया। इस अवस्थामें दौलतरावको उत्तर भारतकी ओर भागना पड़ा। पीछे इन्दौरमें यशवन्तराव पराजित हुआ और इन्दौर सिन्धियाके हाथ आ गया। यशवन्तराव तत्काल दक्षिण चला गया। वहां उसने खानदेशको जा लूटा। वहांसे सेना लेकर पूना आया। पेशवाने भी सब ओरसे सेना एकत्र की। युद्धमें केवल अपनी ही वीरताके कारण यशवन्तरावकी विजय प्राप्त हुई। बाजीराव पूनासे भाग खड़ा हुआ। वह दौलतरावको बराबर पत्र भेजता रहा। होल्करकी सेना उसका पीछा कर रही थी। अंग्रेजोंसे भी वह सहायता मांग रहा था। अन्तको बसीन पहुंचकर उसने उनके साथ सन्धि कर ली।

बसीनके सन्धिपत्रसे मराठा-साम्राज्यका विनाश आरम्भ होता है। इस समय यह निश्चय होगया कि भारतवर्षमें सबसे बड़ी शक्ति अंग्रेजोंकी होगी न कि मराठों-की। जिस समयसे वेलेज़्ली यहां आया था उसकी इच्छा थी कि मराठा सरकार भी अंग्रेजोंके साथ सामरिक-सम्बन्ध स्थापित कर ले। उसने इस उद्देश्यसे जो कुछ हो सकता था किया किन्तु सफलता न हुई। अब इस घरेलू झगड़ेने पेशवाको पूर्णतया अंग्रेजोंके हाथमें डाल दिया। बाजीरावने २४ लाख रुपया वार्षिक देकर ६ सहस्र अंग्रेजी सेना अपने राज्यमें रखनेके लिये रखना स्वीकार कर लिया।

बसीनकी सन्धि १८०२

उस समय यदि सिन्धिया उसकी सहायताको पहुंच जाता और उसे जसवन्त रावके भयसे विमुक्त कर देता तो कदाचित् बसीनका सन्धिपत्र न लिखा जाता। परन्तु दौलतराव अभी बच्चा ही था इसलिये उसने इस संकटके समयका महत्व न समझा। जब उसे बसीनके सन्धिपत्रका समाचार मिला तब उसे दुःख हुई किन्तु अब क्या हो सकता था।

बाजीराव स्वयं भी सन्धिपत्र लिखकर घबरा गया। इस बन्धनसे निकलनेके लिए उसने सब प्रकारसे यत्न किया। उसने दौलतराव और राघोजी भोंसला को लिखा कि मुझसे भूल होगयी है, आप किसी प्रकार इसका प्रतिकार करें।

इधर जसवन्तराव होलकरने जब देखा कि बाजीराव भाग गया है तो उसने उसके छोटे भाई अमृतरावको सिंहासनपर बैठा दिया और स्वयं वहांसे चल दिया। इतनेमें अंग्रेजसेना बाजीरावको साथ लिये हुए पूना पहुंची। अमृतराव वहांसे भाग खड़ा हुआ और शीघ्र ही उसने अंग्रेजोंसे वृत्ति लेना स्वीकार कर लिया।

दौलतराव और राघोजी भोंसलेने युद्धके लिये तय्यारियां करनी आरम्भ कर दीं। अंग्रेजोंको भी कहला भेजा कि सन्धिपत्रमें कई बातें ऐसी हैं जिनके लिये हमारी स्वीकृति आवश्यक थी। साथ ही उन्होंने जसवन्तराव

जसवन्तरावका स्वार्थ होलकरको सम्मिलित होनेके लिये उत्तेजित करना आरम्भ किया। प्रथम तो उसे सिन्धियाके साथ शत्रुता थी और वह चाहता था कि जब अंग्रेज और सिन्धिया लड़कर थक जायं, तो मैं क्षेत्रमें निकलकर अपना बल स्थापित कर लूं। उसके स्वार्थ तथा द्वेषने मराठा-साम्राज्यको नष्ट कर दिया। इसपर एक ऐतिहासिक विद्वान्‌ने लिखा है "आर्योंने पृथ्वीराज और जयचन्दके कालसे अब तक न तो कोई नई बात सीखी, और न अपनी पुरानी करतूतको छोड़ा।" वेलेज़लीने सिन्धियासे पूछा कि तुम्हारा क्या विचार है। सिन्धियाने उत्तरमें कहा कि मैं राघोजी और होलकरसे राय लेकर उत्तर दूंगा। इसपर आंग्लसेना तत्काल सामना करनेको उद्यत हो गयी। सिन्धियाके राज्यके दो भाग थे। एक तो दक्षिणमें और दूसरा उत्तरभारतमें। दक्षिणमें मराठा साम्राज्यको बचाने और सन्धिपत्रको रद्द करनेके लिये सिन्धिया स्वयं विद्यमान था। दूसरी ओर उसके प्रतिनिधि विद्यमान थे। आंग्ल सेनाने भी दो भागोंमें सिन्धियापर आक्रमण किया। दक्षिणकी ओरका आक्रमण तो वेलेज़लीके भाई आर्थर वेलेज़लीने किया और उत्तर भारतमें जनरल लेक एक सेना लेकर कानपुरसे चला।

राघोजी भोंसला दौलतरावका मन्त्री था। राघोजी प्राचीन ढंगका मराठा था, और युद्धकी प्राचीन मराठा विधिको पसन्द करता था। उसने दौलतरावको समझाया कि जमकर संग्राम करना व्यर्थ है। अपनी पुरातन

सिन्धिया दौलतरावकी पराजय

विधिही बरतनी चाहिये। दौलतरावको अपनी सेनाकी वीरतापर बड़ा विश्वास था। उसने जनरल वेलेज़लीसे असईमें युद्ध किया। इसमें अंग्रेजी जनरलकी वीरता तथा योग्यतासे अंग्रेजोंको विजय प्राप्त हुई।

युद्धका आरम्भ समझ कर कर्नल मानसनको सेना सहित होलकरके विरुद्ध भेजा। मानसन बिना सामानके होलकरका पीछा करते दर्रामुकन्दर (Mukandar pass) से होता हुआ चम्बल नदी तक जा पहुँचा। होलकर बड़ी चतुरतासे उसे इतनी दूर ले आया था। अब होलकरने लौट कर चम्बल नदीको पार किया। पहिले तो मानसनने युद्ध करनेका विचार किया किन्तु पीछे उसने अपना विचार बदल दिया और लौट पड़ा। होलकरकी सेना हाथ धोकर पीछे पड़ गयी। लौटनेमें लगभग दो मास समय लग गया। कभी वह आश्रयके लिये इधर जाता था, कभी उधर। वर्षाके कारण नदियां अत्यन्त वेगसे बहती थीं। कई स्थानोंपर कई मनुष्य डूब गये। समस्त सामग्री, तोपें इत्यादि होलकरके हाथ आयीं और जो थोड़ेसे मनुष्य बचे उन्होंने दो मास उपरान्त आगरा पहुंच कर आश्रय लिया। यह पराजय मानसनके लिए एक बड़ा कलंक थी।

कर्नल मानसनकी पराजय

यह कलंकका टीका मिटानेके लिये मानसनको मराठोंके साथ लड़नेका एक और अवसर दिया गया। होलकरकी सेना डीगके दुर्गमें थी। मानसनने आक्रमण करके उसे जीत लिया। होलकर और उसकी सारी सेना भरतपुर दुर्गमें पहुंच गयी।

अब लार्ड लेक अपनी सेना सहित भरतपुर पहुंचा। भरतपुरका राजा होलकरका मित्र था। भरतपुर विजित हुए बिना होलकरको विजित करना असम्भव था। भरतपुरका घेरा (Seige) बहुत दिनों तक रहा। इसमें अंग्रेज़ सेनाने दुर्ग लेनेके लिये बार बार धावा किया परन्तु चारों बार उसे असफल होकर लौटना पड़ा। एकबार गोरोंकी ७६ नम्बरकी सेनाने आज्ञा नहीं मानी अतः भारतीय सैनिक आगे बढ़े।

भरतपुरका दुर्ग लेनेका प्रयत्न

मानसनकी इस दूसरी पराजयसे मराठोंके दिल बढ़ गये। अनवरतराव देवयुद्ध समझा जाने लगा। सिन्धिया भी सेना लेकर इधर चल पड़ा। उसकी हार्दिक इच्छा होलकरके साथ मिल जानेकी थी। इसी अवसरपर भरतपुरका राजा सन्धि करनेपर सहमत हो गया और अंग्रेज़ सिन्धिया तथा होलकरके मिलापके भयसे बच गये। होलकर वहांसे भागकर पञ्जाबको चला गया। उसकी इच्छा थी कि महाराजा रणजीतसिंहको अपने साथ मिला कर अंग्रेज़ोंके विरुद्ध उत्तेजित करूं। उस उपायसे भी निराश होकर लौटना पड़ा।

लार्ड वेलेज़्लीके शासन-कालकी एक और वर्णनीय घटना कर्नाटकको मिलाना है। जब वेलेज़्ली टीपूके युद्धमें निमग्न हुआ था उस समय कर्नाटकका वृद्ध नवाब मृत्यु शय्यापर पड़ा था। यह गुप्त पता अंग्रेज़ोंको लगता रहा। वेलेज़्लीने विचारा कि इसका राज्य मद्रास प्रान्तके अन्तर्गत कर लेना चाहिए। वह अभी इसका [illegible] रहा था कि [illegible] जिससे व्यवहार किया और [illegible] जाय। जब इसकी मृत्यु हो गयी तो उसके [illegible] कहा कि वह अपना राज्य अंग्रेज़ी सरकारको समर्पित

सातवां प्रकरण।

जार्ज बार्लोसे लार्ड हार्डिंज तक।

जार्ज बार्लोके शासन-कालमें संवत् १८६३ में वेलोरमें मद्रासी सिपाहियोंका विद्रोह हुआ। अंग्रेजोंने उनके वस्त्रोंमें और रहन-सहनमें कुछ परिवर्तन करना चाहा था। सिपाहियोंने अप्रसन्न होकर अफ़सरोंका वध कर डाला। यह विद्रोह शीघ्र ही दबा दिया गया। संवत् १८६३ से १८६९ तक लार्ड मिण्टो गवर्नर जनरल रहा। इसने कोई युद्ध नहीं किया। जो स्थान विजित हो चुके थे उन्हींको दृढ़ करनेका यत्न करता रहा। अभी नेपोलियनकी ओरसे भय बना हुआ था, इसलिये मेटकाफ राजा रणजीतसिंहके पास, एल्फिनस्टन अफ़गानिस्थानको और मैलकम फारसको, ये तीन दूत भेजे गये।

वेलोरका विद्रोह

लार्ड मिन्टो

इसके बाद संवत् १८७० में मारक्विस आफ़ हेस्टिंग्ज गवर्नर जनरल हुआ। यह नौ वर्ष तक रहा। नेपालका युद्ध और मराठोंका अन्तिम युद्ध उसके शासन-कालकी दो बड़ी प्रसिद्ध घटनाएं हैं। उस समय आर्योंके दो स्वतंत्र राज्य विद्यमान थे। वे अभी तक अंग्रेजोंके साथ सम्मिलित नहीं हुए थे। शेष सभी रियासतोंने प्रायः 'माण्डलिक सम्बन्ध' स्वीकार कर लिया था। इनमेंसे एक तो पंजाबका सिक्खराज्य था। दूसरा हिमालयके पर्वतोंमें नेपालका आर्य राज्य था।

लार्ड हेस्टिंग्ज

नेपालमें गोरखोंका राज्य था। यह कुल उदयपुरके राजकुलकी एक शाखा समझा जाता है। भमरसीका एक बालक वहां भाग गया था। उसने हिमालयके शिखरपर अपने कुलका शासन स्थापित किया, जैसा कि उसके वंशजोंके नामसे प्रकट होता है। गांवोंकी रक्षा करना ही उसने अपना विशेष काम समझा। १९ वीं शताब्दी विक्रमीके आरंभमें उसके वंशजोंने फैलना आरंभ किया। नेपालपर अपना शासन जमा करके आगेकी ओर बढ़ने लगे। इस प्रकार बंगालपर भी प्रायः उनके आक्रमण होने लगे। अंग्रेज़ी सरकारको भय उत्पन्न हुआ। हेस्टिंग्जने संवत् १९७१ में प्रथम बार उनके विरुद्ध सेना भेजी। इस सेनाको कई युद्धोंमें पराजित होना पड़ा। अभी यह सेना गोरखोंकी हालतसे सुपरिचित न थी, इसलिये थोड़ेसी सैनिक बच कर लौटे। दूसरे वर्ष आक्टरलोनी सतलजके मार्गसे पर्वतोंकी ओर बढ़ा और नेपाल तक जा पहुंचा। अगले वर्ष फिर सेना लेकर पटनेसे चला, और उसने काटमाण्डू तक पहुंचकर नेपाल दरबारको सन्धि करनेपर विवश किया। इस सन्धिपत्रसे नैनीताल, मंसूरी और शिमलापर अंग्रेजोंका अधिकार हो गया। यह सन्धि अभी तक नेपाल और अंग्रेजोंमें स्थिर है।

नेपालके साथ युद्ध

लार्ड एमर्स्टके शासन-कालमें राजा राममोहन राय एक सुप्रसिद्ध व्यक्ति हुए हैं। उन्होंने शिक्षा सम्बन्धी विवादमें भाग लेकर ईसाई प्रचारकोंके पक्षमें गवर्नर जनरलको एक पत्र लिखा। उसमें उन्होंने अपने शास्त्रोंकी

राममोहन राय

शिक्षाकी तीव्र आलोचना की, और वाइसरायसे प्रार्थना की कि बङ्गालमें आंग्ल शिक्षा प्रचलित करके भारतवासियोंको अपूर्व लाभ उठानेके लिये अवसर दिया जाय।

संवत् १८८४ में लार्ड विलियम बैण्टिक गवर्नर जनरल होकर आया, और संवत् १८९१ तक रहा। विलियम बैण्टिक पहिले मद्रासका गवर्नर रह चुका था। इसके शासन-कालमें वहां वेलोरका विद्रोह हुआ था। अब उसे

विलियम बैण्टिक गवर्नर जनरल

अपना कलङ्क मिटानेकी चिन्ता थी। उसने अपने सुप्रबन्धसे ब्रिटिश राज्यकी नींवको दृढ़ किया और यह सबसे योग्य गवर्नरोंमें समझा जाता है। उसने सतीकी रीति बन्द की और ठगोंको रोकनेका प्रबन्ध किया। इनके अतिरिक्त इसका काल दो बातोंके लिये प्रसिद्ध है। यह पहिला शासक था जिसने यह अनुभव किया कि देशी मनुष्योंकी सहायताके बिना भारतवर्षको बहुत दिनों तक अधीन रखना सम्भव नहीं। इसलिये इसने योग्य देशी पुरुषोंको उच्च पद देकर उनकी सहायता लेना प्रारम्भ की।

इसके कालकी दूसरी बात भारतवासियोंकी शिक्षाका निर्णय है। मेकाले शिक्षा-विभागका प्रधान नियत हुआ था। इसलिये उसीके विचारकी सहायतासे अंग्रेजी शिक्षाके पक्षमें अपना निश्चय दिया। भारतभाषा

वर्तमान शिक्षा

तथा विदेशी सभ्यताकी अपेक्षा तुच्छ, और विद्याओंको सार-रहित, अनावश्यक तथा निरर्थक कहा गया। यह भी कहा गया कि समग्र धन जो सरकारके पास शिक्षाके लिये है पाश्चात्य विद्याओं तथा आंग्लभाषाके प्रचारमें व्यय करना चाहिये। लार्ड विलियम बैण्टिक इससे सहमत हुआ। नदियाका अत्यन्त प्राचीन विश्वविद्यालय उठा दिया गया, और इसके स्थानमें अंग्रेजी पाठशालाओं तथा विश्वविद्यालयकी नींव डाली गयी।

विलियम बैण्टिकके चले जानेके अनन्तर सर चार्ल्स मेटकाफ कुछ मास तक काम करता रहा। इसके कालमें समाचारपत्रोंको स्वतन्त्रता दी गयी जिससे सरकारको सदा देश-दुर्दशाओंका पता मिलता रहे, और लोग अपनी शिकायतें बिना डरके सरकारके सम्मुख रख सकें।

संवत् १८९२ में लार्ड आकलैण्ड गवर्नर जनरल नियत हुआ। इसके शासन-कालमें काबुलका युद्ध हुआ। काबुलमें अमीर दोस्त मुहम्मद [illegible] शासन करता था। [illegible] संवत् १८९६ में

[illegible]

[illegible] दोस्त मुहम्मदने काबुलपर अधिकार कर लिया। [illegible] [illegible] [illegible] रहा। लार्ड आकलैण्डने [illegible] [illegible] [illegible] रहा था। [illegible]

आठवां प्रकरण

सिक्खोंका अंग्रेजोंसे युद्ध।

खड्ग सिंहका राज-पद प्राप्ति

रणजीतसिंहके पश्चात् उनका पुत्र खड्ग सिंह सिंहासनारूढ़ हुआ और ध्यानसिंह उसका मन्त्री नियत हुआ। सिंहासनके अधिक दावेदारोंके परस्पर झगड़े आरम्भसे ही भारतवर्षमें स्वदेशी शासनके नाशके कारण हुए हैं। तदनुसार इस अवसरपर भी शेरसिंहने अपना दावा अंग्रेजोंके सम्मुख रखा किन्तु यह वृथा रहा।

खड्गसिंह मन्दबुद्धि तथा अयोग्य पुरुष था। इसलिये इसका पुत्र नौनिहालसिंह जो पेशावरमें सेनापति था तत्काल लाहौर आया और अपने पिताका राज्य सम्भालनेका यत्न करने लगा। नौनिहालसिंह हृदयसे ध्यानसिंहके विरुद्ध था। परन्तु सुचेतसिंह नामक खड्गसिंहका एक और वैरी था इसलिये दोनों उसे नष्ट करनेके लिये मिल गये। एक दिन प्रातःकाल ध्यानसिंह, उसका भाई गुलाबसिंह और नौनिहालसिंह महाराजके विशेष कमरेमें अकस्मात् प्रविष्ट हो गये। सुचेतसिंहको जगा कर उसका वध कर डाला। खड्गसिंह पासही बैठा रहा। यह पहिला वध था जिससे विनाशकालका भयंकर स्वरूप आरम्भ होता है। इस प्रकार धोखेसे दूसरे मनुष्यका वध कर देना अत्यन्त घृणित आचारको प्रकट करता है। महाराज रणजीतसिंहने इस पतनको रोक रखा था, और यदि उनके उत्तराधिकारी कुछ काल तक वैसेही योग्य होते तो शायद सिक्ख सरदार इससे मुक्त हो जाते। अब नौनिहालसिंहकी यह इच्छा थी कि किसी रीतिसे ध्यानसिंह तथा गुलाबसिंहसे लाहौर दरबारको स्वतन्त्र करें। इस प्रयोजनसे उसने पार्वत्य राजाओं-पर आक्रमण करनेके लिये एक सेना तैयार की।

इस समय अंग्रेजोंके साथ उसका कुछ झगड़ा हो गया। इसके दो कारण थे। एक तो अंग्रेज अपना व्यापार बढ़ानेके लिए सिन्धु नदी द्वारा माल ले जानेकी आज्ञा चाहते थे। महाराज रणजीतसिंहके कालमें कई बार अंग्रेजोंने यह व्यापार सम्बन्ध स्थापित करनेका प्रयत्न किया। परन्तु महाराज भी उनकी वस्तुओंको देशमें आने न देना चाहते थे। इसलिये वे सदा एक ही आक्षेप किया करते थे कि अंग्रेज लोग गोहत्या करते हैं, और यदि उन्होंने मेरे देशमें ऐसा किया तो झगड़ा हो जायगा। वे अंग्रेजोंसे झगड़ा करना नहीं चाहते थे। परन्तु झगड़ेका वास्तविक कारण और था। नौनिहालसिंहने दोस्त मुहम्मदको अंग्रेजोंके प्रति उकसाया। यह विषय अभी निर्णीत होने न पाया था कि खड्गसिंह सवत् १९०१ में मर गया। वह पहले ही से बहुत निर्बल था। अफीम अधिक खानेसे उसकी अवस्था और भी खराब होगयी जिससे उसकी मृत्यु होगयी।

महाराज नौनिहालसिंह बुरी सायितमें गद्दीपर बैठा । वही दिन उसके जीवनका अन्तिम दिन सिद्ध हुआ । जब वह अभिषेक—संस्कार करके हाथीपर सवार होकर वापस आ रहा था तो दरवाजेसे नीचे गुज़रते ही दरवाज़ा गिरकर हाथीपर आपड़ा । गुलाबसिंहका बड़ा पुत्र उत्तमसिंह वहीं मर गया । नौनिहालसिंह इतना जख़्मी हुआ कि उसी रात्रिको इस संसारसे चल बसा । यह विचार सर्वथा असत्य है कि इसमें जम्मूके राजाओंकी कोई शरारत थी ।

नौनिहालसिंह

नौनिहालसिंहकी मृत्यु सिक्ख राज्यके लिये वज्रपातके समान थी । इस नवयुवकने बीस वर्षकी आयुमें ही अपनेको बड़ा योग्य और चतुर सिद्ध कर दिखाया था । वह अपने पितामहके सदृश अपने राज्यको फैलाने और दृढ़ करनेका विचार करता था । इसका विवाह शामसिंह अटारीवालेकी कन्यासे हुआ था ।

ध्यानसिंहने तीन चार दिन तक मृत्युका समाचार छिपा रखा । इतनेमें उसने शेरसिंहको सिंहासनपर बैठानेके लिए लाहौर बुलवा लिया । शेरसिंहके रणजीतसिंहका पुत्र होनेमें सन्देह था, इसलिये कई सिक्ख सरदार खड्गसिंहकी रानी चन्दकौरकी ओर होगये । चन्दकौर रानी स्वीकार की गयी और शेरसिंह कौंसिलका प्रधान बनाया गया ।

रानी चन्दकौर

थोड़े कालमें शेरसिंहने ध्यानसिंहकी सहायतासे सेनाको अपनी ओर कर लिया और दुर्गपर आक्रमण कर दिया । रानी चन्दकौर सिंहासनसे उतारी गयी और शेरसिंह महाराज स्वीकार किया गया । ध्यानसिंह इसका मन्त्री बना । सेनाके वेतनमें प्रत्येक सिपाहीकी एक रुपया वृद्धि की गयी । सिन्धियावाला सरदार अजीतसिंह और अतरसिंह लाहौरसे भागकर अंग्रेजोंसे जा मिले । इस समय सेनाका बल बढ़ना आरम्भ होगया । सैनिकोंने कई अनधिकार चेष्टाएं भी करनी आरम्भ कर दीं । अंग्रेज इन सब बातोंको ध्यानपूर्वक देख रहे थे । उनके यहां यह चर्चा भी शुरू हो गयी कि इस अवसर पर एक सभ्यजातिकी हैसियतसे हमारा कर्तव्य है कि हम पञ्जाबको विजय कर लें । यह भी स्मरण रखना आवश्यक है कि ये सब समाचार सिक्खोंको मिलते रहते थे । अंग्रेज अभी तक सिक्ख सेनाके बलका ठीक ठीक अनुमान न कर सके थे ।

शेरसिंह

सिन्धियावाले सरदारोंके द्रोहका समाचार सर्वसाधारणमें प्रसिद्ध होगया । एक सिन्धियावाला सरदार लहनासिंह मजीठमें सेनापति था । सिक्ख सैनिकोंको इस बातसे बड़ी घृणा थी कि दूसरे पुरुषोंका उनके कामोंमें किसी प्रकारका हस्तक्षेप हो । उन्होंने लहनासिंहको अपने सैनिकोंके साथ षड्यन्त्रकारका दोष लगाकर क़ैद कर लिया ।

थोड़े कालके भीतर सैनिकोंकी सब शिकायतें दूर होगयीं । सिक्ख सैनिकोंने अपने बलका अनुभव कर लिया । वे अपने आपको गुरु गोविन्दसिंहके खालसा प्रतिनिधि और सिक्ख-राज्यकी स्थिरताके उत्तरदायी समझने लगे । उनकी दशा इस समय ठीक वैसी थी जैसी कि इंग्लिस्तानमें क्रामवैलके सैनिकोंकी थी, जब कि वे वहांकी प्रतिनिधि—सभाके प्रति अपनी शक्ति दृढ़ करनेके लिये उद्यत हो गये थे ।

सिक्खसेना

प्रत्येक पलटनके सिपाही पाँच जमादारोंको अपना प्रतिनिधि चुनते थे। इस प्रतिनिधि-दलको पंचायत कहते थे। समस्त पलटनोंकी सब पंचायतें मिलकर खालसाकी यह साधारण समिति बनती थी जिसमें वे सभी विषयोंका निर्णय सीमापर सिक्खोंका किया करते। सिक्ख-साम्राज्यके बलका केन्द्र यद्यपि इस प्रकार निर्बल

प्रबलता होने लगा था परन्तु सीमापर अभीतक उन्हींका बल बढ़ता गया। जम्मूके डिप्टी जोरावरसिंहने भक्करजूको विजितकर चीनराज्यकी सीमान्तवर्ती चौकीको अपने वशमें कर लिया। इससे सिक्खों तथा चीनियोंमें युद्ध छिड़ गया। इस समय नेपाल सरकार भी सिक्खोंसे पत्रव्यवहार करके परस्पर सम्बन्ध उत्पन्न करना चाहती थी। उस समय अंगरेजसेनापर अफगानिस्तानमें ऐसी विपत्ति पड़ी कि वह सर्वथा नष्ट हो गयी। महाराज रणजीतसिंहने अंग्रेज सेनाको जो शाहशुजाको सिंहासनपर बिठाने जाती थी पंजाबसे गुजरनेकी आज्ञा दे दी थी। उस समय उनके हृदयमें यह इच्छा उत्पन्न हुई थी, कि यदि इस युद्धमें अंग्रेजोंपर कोई आपत्ति आयगी तो हम उससे लाभ उठाकर अपने बलको बढ़ायेंगे। किन्तु जब यह अवसर आया तो महाराज संसारसे ही चल बसे और उनके उत्तराधिकारी अयोग्य ही निकले। अब अंग्रेज उनसे काबुलसे बदला लेनेके लिये सहायता मांगने लगे। अतएव गुलाबसिंह सहायता देकर भेजा गया।

इसी समय रानी चन्दकौरको उसकी दासियोंने इतना मारा कि उसके प्राण निकल गये। प्रायः लोगोंका यह विचार था कि यह काम महाराज शेरसिंहकी सम्मतिसे हुआ है। इसके पश्चात् अंग्रेजोंके यत्नसे सिन्धियावाला सरदारों और ध्यानसिंहमें सन्धि होगयी। अजीतसिंह तथा अतरसिंह दोनों लाहौर वापस आगये। अजीतसिंह महाराजका साथी बनगया। अब ध्यानसिंहका विश्वास घटने लगा। इस समय ध्यानसिंह दलीपसिंहका पक्षपाती प्रतीत हुआ। महाराज रणजीतसिंहने एक सुन्दर स्त्री 'जिन्दां' को रानी बना लिया था। उससे दलीपसिंह उत्पन्न हुआ था जिसकी आयु इस समय पाँच वर्षकी थी।

ध्यानसिंहने सिन्धियावाले सरदारोंसे भी द्रोह करना आरम्भ कर दिया। वे पहिले ही दिनसे महाराजके विरुद्ध थे। अब उन्होंने महाराजके वधका निश्चय कर लिया। शेरसिंह सरीके बाहर एक बारेल दालानमें बैठा था

शेरसिंहका वध कि अजीतसिंह एक नयी बन्दूक दरबार देनेके लिये लाया। महाराजा ज्योंही हाथ बढ़ाकर लेने लगा तत्काल उसने गोली चला दी और शेरसिंहका वहीं प्राणान्त होगया। अजीतसिंहके साथ कई मनुष्य थे, वे अन्दर घुसगये और उन्होंने महाराजके साथियोंको मारडाला। अजीतसिंहके चचा लहनासिंहने इसी दालानके अन्दर महाराज शेरसिंहके पुत्र प्रतापसिंहको मारडाला। संक्रान्तिका दिन था और उस दिन प्रतापसिंह जिसकी आयु अभी १२ वर्षकी थी ब्राह्मणों तथा साधुओंको अन्नदान दे रहा था।

इसके पश्चात् वे दोनों घातक ध्यानसिंहसे जा मिले और उसके साथ दुर्गकी ओर चले। मार्गमें जाते समय अजीतसिंह उस दुष्कृत्य एक ओर ले गया और उसने बन्दूकसे उसकी समाप्ति कर दी।

इसके उपरान्त इन लोगोंने दुर्गपर अधिकार कर लिया। इन्हें इस बातका विचार न रहा कि ध्यानसिंहका पुत्र हीरासिंह अभी जीवित है, वह अपने पिताका बदला लेनेकी चेष्टा करेगा।

हीरासिंह

हीरासिंहने इस कुसमाचारको सुनतेही सेना एकत्र की और लोगोंको भली भांति बता दिया कि किस प्रकार सिन्धियावालाके सरदारोंने उस दिन तीन बड़ी हत्याएं कर सिक्ख साम्राज्यको नष्ट करनेका विचार किया है। साथही सेनाको पारितोषिक भी देनेकी उसने प्रतिज्ञा की। सेना-पर इस वक्तृताका बड़ा प्रभाव हुआ। वह तत्काल हीरासिंहके साथ दुर्ग लेनेपर उद्यत होगयी। उसने आधीरातको दुर्गपर धावा बोल दिया। दूसरे दिन दोपहरतक दुर्गवाले सामना करते रहे। अब वे थककर हार बैठे तो सेना दुर्गपर चढ़ गयी, और सिन्धियावालेके सरदार अजीतसिंह, लहनासिंह, मिसिर बेलीराम और भाई गुरुमुखसिंह सबको मारडाला।

बालक दलीपसिंह राजा प्रसिद्ध किया गया, और हीरासिंह उसका मन्त्री निश्चित हुआ। प्रत्येक सैनिकके वेतनमें २॥) रुपयेकी वृद्धि की गयी।

जल्ला पण्डित

हीरासिंह एक वर्ष तीन मास तक मन्त्री रहे। यह बड़ा योग्य तथा चतुर मनुष्य था। इसने अपने पितासे बहुत कुछ सीखा था। अपनेमें योग्यता रहते हुए भी इसे एक ब्राह्मणपर बड़ा विश्वास था। इस ब्राह्मणका नाम जल्ला पण्डित था। जल्ला पण्डित आरम्भसे हीरासिंहका रक्षक था, इसलिये हीरासिंह प्रत्येक कामनें उसकी सम्मतिपर चलता था। जल्ला पण्डितके सम्बन्ध दो बातें थीं। एक तो वह अंग्रेजोंके इतिहाससे परिचित था। वह जानता था कि अंग्रेज पंजाबको अपने साथ मिलानेका प्रयत्न करेंगे। इसलिये उसे प्रत्येक कार्यमें अंग्रेजोंका प्रभाव प्रतीत होता था। वह पंजाबको अंग्रेजोंके प्रभावसे सर्वथा सुरक्षित रखना चाहता था। इसी कारण उसने कोई दोन यूरोपियन नौकरोंको अनेक बहानोंसे उनके पदसे हटा दिया। केवल एक दो शेष रह गये।

दूसरे उसने एक और बातका अनुभव किया कि रणजीतसिंहका कुछ अब राज्य अपनेके योग्य न था। इसलिये उसकी इच्छा थी कि जैसे पूनामें ब्राह्मणोंने पेशवा [illegible] स्थापित करके नानासाहबके हाथ [illegible] ऐसे ही पंजाबमें एक पेशवाई स्थापित करके राज्य महाराष्ट्रके समान सुदृढ़ किया जाय। इस विचारकी पूर्तिके लिये उसने यह प्रबन्ध आरम्भ किया कि खालसा सेनाओंको बाहर भेज उसके बदले लाहौरमें दूसरी सेना तैयार की जाय। यदि पण्डित जल्लासे काम होता और पुराने [illegible] युद्धके अपने [illegible] पूर्तिका यत्न करता तो सफल होना सम्भव था। परन्तु पण्डितका स्वभाव [illegible] था और वह सब कुछ [illegible] करना चाहता था। ऐसे परिवर्तन [illegible] नहीं हो सकते। इसके विपरीत [illegible] हो गये। वह [illegible] शिकार बना, और हीरासिंहको भी अपने साथ ले डूबा।

१२

हीरासिंहके विरुद्ध दो दल

हीरासिंहके विरुद्ध तत्काल दो दल तय्यार होगये। एक तो उसका चाचा सुचेतसिंह था जो इसलिये उससे अप्रसन्न हो गया कि वह मन्त्रित्वपर अपना अधिकार समझता था। दूसरा महाराज दलीपसिंहकी माता रानी जिन्दाका भाई जवाहरसिंह था। वह अपना बल बढ़ाना चाहता था, परन्तु हीरासिंह तथा जल्ला पण्डित उसे अयोग्य समझकर उसकी प्रतिष्ठा न करते थे। पहिली बग़ावत सियालकोटमें हुई। वह पशौरासिंह और कश्मीरासिंह दो बालकोंकी ओरसे थी। ये अपने आपको महाराज रणजीतसिंहकी सन्तान प्रकट करते थे। कुछ सिक्ख पलटनें उनकी ओर होगयीं। बड़ी कठिनतासे यह बग़ावत दबायी गयी। इसके पश्चात् राजा सुचेतसिंह लाहौरपर चढ़ आया। उसके मनमें यह आशा थी कि सेनायें मेरे साथ मिल जावेंगी पर यह उसकी भूल थी। सेनाओंका प्रबन्ध इस समय पञ्चायतोंके हाथमें था। उन्होंने घरेलू झगड़ोंमें पड़ना उचित न समझा। राजा सुचेतसिंहने केवल बीस साथियोंके साथ हीरासिंहकी सेनाका सामना करते हुए बड़ी वीरतासे प्राण दिये।

तीसरा विद्रोह

इसके दो मास उपरान्त तीसरा विद्रोह हुआ। यह अतरसिंह सिन्धियावाला-को ओरसे था। अतरसिंह अपने भाइयोंकी सहायताके लिये आ रहा था। जब उसने सुना कि हीरासिंहने लाहौरका दुर्ग जीत लिया है तो फिर सैरपुरकी ओर चला गया। उसने एक सुप्रसिद्ध सिक्ख सन्त भाई बीरसिंह द्वारा ग्राममें विद्रोह कराना चाहा किन्तु सबके सब खालसा सेनामें ही भरती थे। अतरसिंह अपने आपको असफल पाकर वहांसे अंग्रेजी इलाकेमें भाग गया। फिर उसने सेनाको हीरासिंहके विरुद्ध भड़कानेका यत्न किया और फ़िरोज़पुरके समीप भाई बीरसिंहके पास आकर ठहरा। कश्मीरासिंह भी उसके साथ मिल गया।

हीरासिंहने खालसाको एकत्र कर उनको बतलाया कि सिन्धियावाला अंग्रेजोंसे मिला हुआ है। सब झगड़ेके मूल अंग्रेज़ हैं जो कि खालसा-राज्यको नष्ट करना चाहते हैं। एक बड़ी सेनाने फिरोज़पुरकी ओर प्रस्थान किया। यद्यपि सिक्खोंने बड़ा यत्न किया कि भाई बीरसिंह वहांसे पृथक् हो जावे परन्तु वह वहां ही रहा और एक गोली लगनेसे मर गया। अतरसिंह और कश्मीरासिंह भी मारे गये।

हीरासिंहके मनमें दृढ़ विश्वास था कि यह सब झगड़ा अंग्रेजोंकी ओरसे हुआ है। इसके अनन्तर आंग्लसेना सिन्धकी विजय करनेके लिये चली। हीरासिंहने सिक्ख सेनाको सीमान्तकी ओर भेज दिया, इस भयसे कि कहीं अंग्रेजोंका विचार पञ्जाबकी ओर आनेका न हो।

इस समय सिक्ख सेनाने गिलगितको वशमें कर लिया। हीरासिंहने खालसा सेनाको बाहर विजय प्राप्त करनेके लिये भेजा। खालसा अब किसीके वशमें न रहा था। उसकी पञ्चायतें लाहौरसे बाहर जानेको तैयार न थीं। वे ऐसी प्रत्येक बातको बुरी दृष्टिसे देखती थीं। इतनेमें जल्ला पण्डितके विरुद्ध एक दल क़ायम हो गया। जवाहरसिंह रानीको भड़काता रहता था। एक बार पण्डितने रानीके विरुद्ध कुछ अनुचित

शब्द् कहे । वे उसके कानों तक आ पहुंचे । रानी जिन्दाको अपने पुत्रके लिये भय उत्पन्न हुआ । उसने जल्लाके विनाशका उपाय सोचा । पण्डितने एक ब्राह्मण लालसिंह-को लोभ देकर अपना विश्वासपात्र बना लिया था । जिन्दा उसके साथ मिल गयी और उसके द्वारा सेनाको पण्डितके विरुद्ध करना आरम्भ किया । खालसाने हीरासिंहसे पण्डितको पृथक् करनेका बड़ा यत्न किया किन्तु हीरासिंह पण्डितको छोड़नेपर उद्यत न हुआ ।

एक रात दोनों अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये लाहौरसे भाग निकले । इधर खालसाको सूचना मिल गयी । सिक्ख सैनिक उनके पीछे चल पड़े । नदीके पार थोड़ी दूरीपर जब वे थक कर विश्राम कर रहे थे तो उन्हें जा पकड़ा और दोनोंका सिर काट लाहौर ले आये ।

हीरासिंह और जल्ला पंडितका वध

अब जवाहरसिंह मन्त्री बना, और जवाहरसिंह तथा लालसिंहका काल आरम्भ हुआ जो कि लगभग एक वर्ष तक रहा । इस कालमें पहिले सेनाने जम्मू-पर आक्रमण किया । राजा गुलाबसिंहने पंचायतोंको उपहार आदि देकर सेनाको प्रसन्न करना चाहा । परन्तु अन्ततः पराधी-नता स्वीकार करके वह लाहौर चला आया । कुछ काल यहां रहा और बहुतसा जुर्माना देकर जम्मू लौट गया ।

जवाहरसिंह

जवाहरसिंह मन्त्री बनते ही यहां तक विषयोपभोगमें पड़ गया कि वह वेश्याओंके साथ नाचा करता था । इसके समयमें पशौरासिंहने अटक दुर्गपर अधि-कार करके अपने आपको महाराजा प्रसिद्ध कर दिया । सरदार चतुरसिंह अटारीवाला जिसकी कन्याके साथ दलीपसिंहका सम्बन्ध हुआ था और जो कि हजाराका शा-सक था सेना लेकर अटककी ओर चला ।

पशौरासिंहने हार स्वीकार कर ली । वह बन्दी बना कर लाहौर भेजा गया । वहांपर जवाहरसिंहने उसे मार डाला । पहलेसे ही खालसा जवाहरसिंहसे घृणा करता था । इसने दो तीन बार यह प्रकट किया कि मैं महाराजको साथ लेकर अंग्रे-जोंके पास भाग जाऊंगा । अब सेनाका कोप अत्यन्त अधिक बढ़ गया । उसने स-मितिमें निर्णय किया कि जवाहरसिंहको प्राणदण्ड दिया जाय । उसे सेनाके समक्ष उपस्थित होनेकी आज्ञा हुई । वह हाथीपर चढ़कर महाराजको साथ लिये बाहर आया । खालसाने आज्ञा दी कि महाराजको हाथीसे उतार कर पृथक् किया जाय । फिर कतिपय सैनिकोंने आगे बढ़कर बन्दूकसे जवाहरसिंहको मार डाला । लालसिंह उसके स्थानपर मन्त्री और तेजसिंह सेनाध्यक्ष निश्चित हुआ । किन्तु वस्तुतः सर्वा-धिकार सैनिकोंके हाथमें था, जो राज्य-प्रबन्ध स्वयं करना चाहते थे ।

जबसे पञ्जाबमें हलचल हुई और खालसाका बल बढ़ने लगा तभीसे अंग्रेजोंको अप-ने सीमाप्रान्तकी अधिक दृढ़ करनेकी चिन्ता होने लगी । उन्हें यह आशा हुई कि अब पंजाबको विजित करनेका समय समीप आ रहा है । इससे पूर्व लुधियानेमें थोड़ी सी आंग्लसेना थी । महाराज रणजीतसिंहके जीवनके अन्तिम वर्षमें बारह सहस्र सेना खुरासानपर

युद्धकी तैयारी

आक्रमण करनेके लिए फिरोज़पुरमें एकत्र की गयी थी। जब उधर युद्धका कोई भय न रहा तो इस सेनाका कुछ भाग वहींपर रहने दिया गया। परन्तु जब अंग्रेजोंने सिन्धपर आक्रमण किया तो उस समय फिरोज़पुरकी छावनी बदल दी गयी। अब कुछ सेना अम्बाला भेज करके उसे भी दृढ़ करनेका विचार किया गया। यह ठीक है कि अंग्रेजोंको पूर्ण अधिकार था कि जिस तरह उचित समझें अपनी कार्यनिर्णाको दृढ़ करें, पर सिक्ख इस सेनाकी वृद्धिको अपने विरुद्ध युद्धकी तैयारी समझने लगे। अंग्रेजोंकी तैय्यारियाँ केवल अपनी रक्षाके लिये थीं। इसके अतिरिक्त सिक्खोंसे यह भी छिपा न था कि अंग्रेज सतलज नदीके ऊपर पुल बांधनेके लिये बम्बईमें नौकायें तैयार कर रहे हैं। सिन्धकी सेना मुलतानपर चढ़ाई करनेके लिये तैयार हो रही थी। सब सीमान्त दुर्गोंमें गोला बारूद इत्यादि सामान एकत्र किये जा रहे थे। कई चिन्ह ऐसे थे जो सिक्खोंको अंग्रेजोंके विचारके सूचक थे। इधर सिक्खोंके सरदार और नेता अपने स्वार्थके लोभमें अपने देशकी स्वतंत्रता और धर्मका बलिदान करनेपर तैयार बैठे थे। उन्हें यह भय था कि जब कोई मनुष्य खालसा सेनामें ऐसा निकल आवेगा जो इसको वशमें करके राजद्वार तक ले तो तत्काल उसके हाथमें सब आ जायेगा। वह इन सबको परे हटा कर राज्यको सम्भाल लेगा। इसलिये उनके हृदयमें इच्छा उत्पन्न हुई कि किस प्रकारसे खालसाकी शक्ति तोड़ी जाय। यह केवल एक ही रीतिसे हो सकता था कि वह अंग्रेजोंसे लड़नेके लिये उकसाया जाय। इसलिये खालसाको उत्तेजना देनेके लिये वे प्रश्न करते थे कि क्या तुम चुप चाप बैठ देखते रहोगे, और अंग्रेज़ रणजीतसिंहके राज्यपर अधिकार प्राप्त कर लेंगे? सिक्खोंका उत्तर यह होता था कि हम अपने तन, मन और धनसे गुरुकी नगरीकी रक्षा करेंगे। वे प्रतिज्ञा करते थे कि हम अंग्रेजोंको पञ्जाबमें क़दम न रखने देंगे।

सिक्ख सरदारोंका स्वार्थ

यदि अंग्रेजोंकी ओरसे उसे तय्यारियोंके सामान दृष्टिगोचर न होते तो खालसा कभी इस युद्धके लिए तैयार न होता। परंतु जब सैनिकोंको विश्वास हो गया कि अंग्रेज युद्ध करनेपर कटिबद्ध हैं तो वे महाराज रणजीतसिंहकी समाधिपर एकत्र हुए, और खालसाके लिये प्राण देनेकी शपथ खाकर लाहौरसे चल पड़े। प्रस्थानसे पहले सेनाका अध्यक्ष निश्चित कर लेना आवश्यक था। लालसिंह तथा तेजसिंहने अपने स्वार्थके लिये सेनापति बनना स्वीकार किया। उन्होंने कहा कि जब तक युद्ध होता रहे खालसा पञ्चायतें बन्द कर दी जायँ और हमारी आज्ञाओंका पालन पूर्ण रूपसे हो।

इस अवसर जनरल गफको अम्बालामें सेनाध्यक्ष लार्ड [illegible] आ मिला। सिक्ख सेनाको सामना करना अब भारतीय सहज था। पत्ना सिक्ख इस युद्धमें पहलेके युद्ध लड़ चुके थे। वे स्वयं [illegible] काम करते थे। [illegible] बन्दूक उठाकर [illegible] का पालन करनेपर तैयार थे। खालसा सैनिक एक ही समय बैठकर होता था, [illegible] था, और [illegible] था। [illegible] था, और [illegible] युद्ध [illegible] तैयार था। इनके मुक़ाबलेमें [illegible]

सैनिक थे जो कि क़वायद अच्छी कर सकते थे, किन्तु उनके हृदयमें उत्तेजनाका लेश-मात्र न था। वे वेतनके लिये लड़ने थे। फ़िरोज़पुरमें सात सहस्र आंग्ल सेना थी। यदि सिक्ख सेना उनपर आक्रमण करती, तो उनको पराजय देना कोई बड़ी बात न थी। किन्तु लालसिंह तथा तेजसिंह सिक्खोंको बलिदान करानेके लिये लाये थे। उन्होंने कहा कि एक छोटीसी सेनाका सामना करना वीर खालसाके लिये उपयुक्त नहीं है। उनको तो अंग्रेज़ोंको पराजित कर लाट साहबको क़ैद करना चाहिये। इसीमें छः दिन नष्ट कर दिये गये। आंग्लसेना इतनेमें रुड़की तक आ पहुंची। अब

लालसिंहका विश्वासघात

बजाय इसके कि सम्पूर्ण सिक्खसेना आंग्लसेनापर आक्रमण करती लालसिंह केवल दो सहस्रका एक दस्ता लेकर आंग्लसेनापर चढ़ आया। पहलेके निर्णयानुसार वह दस्ताको वहीं छोड़ कर स्वयं पीछे भाग आया। इस प्रकार बिना नेताके सिक्ख सेनाका एक दस्ता शत्रुदलसे लड़ने लगा। आंग्लसेना आक्रमण करती हुई आगे बढ़ने लगी। पांच मील तक शत्रुकी ओर मुख किये हुए सिक्खसेना पीछे हटती आयी, और शत्रुओंसे युद्ध करती रही। इसमें अंग्रेज़ोंके नौ सौ मनुष्य मारे गये। इस एक संग्रामसे अंग्रेज़ोंको सिक्खोंके बलका पता लग गया। हार्डिंग गवर्नर जनरलने गफ़के अधीन दूसरे सेनापतिके रूपमें लड़ना स्वीकार किया। तेजसिंहने फ़िरोजपुर वाली सेनाका ध्यान रखनेका निश्चय किया। वह चुपचाप बैठा रहा। फ़िरोजपुर ही प्रथम क्षेत्र था जहां आंग्लसेनाको अपने सदृश भारतवर्षीय क़वायददां सेना और तोपखानेका सामना करना पड़ा। रणजीतसिंहने अपनी सेनाको यूरोपीय क़वायदकी विशेष शिक्षा दी थी।

फ़िरोजपुरमें दोनों ओर लगभग बराबर सेना थी। अंग्रेज़ोंने चारों ओरसे सिक्खसेनापर आक्रमण किया। चारों ओर सिक्खोंने उन्हें पीछे हटाया। एक सेना-

फ़िरोजपुरमें अंग्रेजों की हार

पतिने सेनाको पीछे हटनेकी आज्ञा देकर कहा "भारतवर्ष अब हाथसे गया।" आंग्लसेनामें हाहाकार मच गया। पल्टनें एक दूसरेके साथ मिल गयीं और परस्पर गोली चलाने लगीं। सायंकाल हो गया। अंग्रेज़ोंके पास गोलाबारूद कोई सामान शेष न रहा। संपूर्ण सेना निराश होकर थककर पड़ रही। किसी ओरसे आशाकी झलक तक न दिखाती थी।

सिक्खसेना बड़ी निर्भय थी। सिक्खोंकी दस सहस्र सेना पृथक् विद्यमान थी। अगर तेजसिंह इस सेनाको लेकर पहुंच जाता तो निश्चयपूर्वक अंग्रेज पूर्णतः

तेजसिंहका देश-द्रोह

पराजित होते। परन्तु तेजसिंहकी तो यह इच्छा ही न थी। वह देखता रहा, जब लालसिंहकी सेना थक कर बैठ गयी तो अपने सैनिकोंके ज़ोर देनेपर वह फ़िरोजपुरसे चला और प्रातःकाल रणक्षेत्रमें जा पहुचा। उधरसे जब अंग्रेज उठे तो उन्होंने देखा कि रणक्षेत्र शून्य है। उन्होंने समझा कि अब विजय प्राप्त हो गयी। उस समय तेजसिंह-की सेनाके आगमनसे धूल उड़ती दिखायी दी। तेजसिंहने आंग्लसेनाको नष्ट

सके। परंतु किसी सिक्खने आश्रय नहीं मांगा। वे प्रत्येक स्थानपर निरन्तर सामना करते रहे। विजयी भी इनकी निर्भयता और साहसको देखकर विस्मित होते थे, विशेषकर उस समय जब कोई नवयुवक आक्रमणोंके समूहमें बढ़ता हुआ दौड़कर कट जाता था। इनके नेता 'वाहगुरु' कहकर अन्य सैनिकोंको ललकारते थे और प्रमाणित करते थे कि अभी खालसा जीवित है।

ग्यारह बजेसे पूर्व कोई सिक्ख सतलजके बायें तटपर न रहा। इस युद्धने खालसाके दर्पको धूलिमें मिला दिया। आंग्लसेना वहांसे कसूर पहुंची और तत्पश्चात् लाहौरमें प्रविष्ट हुई। सिक्खोंने अब गुलाबसिंह द्वारा अंग्रेजोंके साथ सन्धिपत्र लिखवानेका निश्चय किया। उन्हें यह पता नहीं था कि वह पहलेसे अंग्रेजोंसे मिला हुआ है।

लाहौरमें दलीपसिंह महाराज स्वीकार किया गया। व्यास तथा सतलजके मध्यका प्रान्त दोआब जालन्धर अंग्रेजोंने अपने राज्यमें मिला लिया। युद्धके व्ययके लिये सिक्खदरबारको डेढ़ करोड़ रुपये देने पड़े। गुलाबसिंह अपने आपको पंजाबसे स्वतंत्र करनेकी चेष्टा कर रहा था इसलिये उसने काश्मीरका प्रान्त पंजाबसे निकाल कर अपनी रियासतके अन्तर्गत कर लिया और एक करोड़ रुपया इस बदलेमें अंग्रेजोंको दिया। इसप्रकार महाराज रणजीतसिंहके राज्यके तीन टुकड़े कर दिये गये। लालसिंह मन्त्री और तेजसिंह सेनाध्यक्ष बनाया गया। परन्तु इन दोनोंको भय था

[illegible]

राज्यके तीन टुकड़े

कि कहीं फिर खालसा हमारे विरुद्ध न होजाय इसलिये इन्होंने प्रार्थना की कि एक आंग्लसेना पंजाबमें रखी जावे। एक अंग्रेज अफसर यहांपर राज्य—प्रबन्धके लिये नियत हुआ। उसकी सहायताके लिये छः सिक्ख सरदारोंकी एक सभा चुनी गयी जिसमें तेजसिंह सबसे बड़ा था। इस सन्धिपत्रसे अंग्रेजी सरकारने पंजाबके शासनका भार अपने ऊपर ले लिया और सर हेनरी लारेन्स प्रधान रेसिडेन्ट नियुक्त हुआ।

नवाँ प्रकरण।

सिक्खोंका अन्तिम प्रयत्न।

रेजिडेन्सी स्थापित हो जानेके थोड़े दिन पश्चात् लाहौरमें एक बड़ा विद्रोह हुआ। किसी गोरे सैनिकने एक बैलको तलवारसे जख्मी कर दिया। आर्यलोग एकत्र होगये और सिपाहियोंको मारने लगे। रेजीडेन्ट लारेन्स और मेजर एडवर्ड्स घटनास्थलपर गये। लोग उनपर पत्थर आदि फेंकने लगे। एडवर्ड्सके सिरमें चोट आयी। बड़ी कठिनतासे यह विद्रोह शान्त किया गया।

लाहौरमें विद्रोह

हेनरी लारेन्सने कतिपय अंग्रेज अफसरोंको शान्ति बनाये रखने और परिस्थितिकी सूचना देनेके लिए सीमा-प्रान्तपर स्थापित किया। एडवर्ड्स बन्नूके प्रान्तमें, जार्ज लारेन्स पेशावर, एबटाबाद और हजारामें, एवं निकलसन अन्य प्रान्तमें नियत किये गये।

सीमाप्रान्तको छोड़ कर पंजाब सर्वथा शून्य पड़ा था। ऐसा प्रतीत होता था कि न तो लारेन्सको और न गवर्नर जनरलको ही उस भागसे भय था जहाँपर सिक्खोंका ज़ोर था। उन्होंने इस बातका अनुभव न किया कि खालसा अभी तक आंग्लराज्यसे सन्तुष्ट न हुआ था।

दूसरे दिन खालसाको पता लग गया कि हमारेही नेताओंने छलसे अपने साथियोंको मरवा डाला है। वे उन नेताओंको धिक्कारते थे और कहते थे "राज करेगा खालसा बाकी रहे न कोय।" सर हेनरी लारेन्स लाहौरमें खालसाका आन्तरिक असन्तोष प्रायः उन्हीं लोगोंसे मिलता था जिन्होंने अपने देशको स्वतन्त्रताको बेच दिया था। अतः खालसाके असन्तोषके सम्बन्धमें उसे किसी प्रकार भी सन्देह न हुआ। एक वर्षके पश्चात् सर हेनरी पंजाबको सर्वथा सुरक्षित समझ कर गवर्नर जनरलके साथ इंग्लैण्ड चला गया। सर फ्रेडरिक करी उसके स्थानपर आया। उसे कार्य-प्रबन्धका बहुत कम अनुभव था। यद्यपि बाह्य रूपसे अशान्तिके कोई चिह्न न दीखते थे किन्तु भीतर ही भीतर अशान्तिकी प्रबल लहरें चल रही थीं। खालसाके वास्तविक नेता अपनी वर्तमान दशा पर रो रहे थे। वे किसी अनुकूल समयकी ताकमें थे। इन सकल नेताओंका सरदार शेरसिंह अटारीवाला था जो कि कौंसिलका सदस्य भी था। वह ऊपरसे किसी प्रकार असन्तुष्ट प्रतीत न होता था। इस सरदारोंकी ओरसे सब सिक्खग्रामोंमें चुपके चुपके यह समाचार पहुंच गया कि सब लोग तैयार रहें। आवश्यकता होने पर वे बुलाये जायँगे।

खालसाका असन्तोष

लौटते समय पूर्व दुर्गपालोंमेंसे जो कि अब हटा दिये जा चुके थे एक सिपाहीके पुलपर खड़े होकर ऐगेन्युपर अपने नेजेका वार किया। उसने इसको उठा दिया और वहां शोरगुल मचगया, पुराने दुर्गपाल एकत्र होगये ऐण्डर्सनपर आक्रमण करके उसे खूब मारा, अन्तमें उसे मृत समझकर छोड़ दिया। बड़ी कठिनतासे दोनों अफ़सर ईदगाहमें पहुंचे। ऐगेन्युने मूलराजको इस घटनाके सम्बन्धमें पत्र लिखा

दोनों अफ़सरोंपर आक्रमण

और बन्नूमें एडवर्ड्ज़को भी सूचना भेज दी गयी। मूलराजका उत्तर आया कि क्या आर्य और क्या मुसलमान सब द्रोही हो गये हैं और यह कार्य मेरी शक्तिसे बाहर है। जितनी देशी सेना लाहौरसे चली थी वह लोगोंके साथ मिलगयी। अंग्रेजोंके साथ केवल कान्हसिंह तथा दस बारह मनुष्य और रह गये। ऐगेन्युने मूलराजके पास आदमी भेजकर निर्णय कर लिया कि हमलोग मुलतानसे लौट जायंगे। परन्तु समूहका वेग नदीके समान होता है। सायंकाल होतेही एक बड़ा जनसमूह ईदगाहकी ओरसे चल पड़ा। वहां पहुंचते ही जन-समूहका कोप बड़ी क्रूरतासे उमड़े ऐगेन्युका सिर शरीरसे पृथक् कर दिया। ऐण्डर्सनको शय्यापर विश्राम करते समय तलवारोंसे टुकड़े टुकड़े कर डाला। यह उस अग्निकी पहिली ज्वाला थी जो भिन्न भिन्न स्थानोंपर सुलग रही थी। जब इस दुर्घटनाका समाचार करीको मिला तो उसने पहिले पहिल उसे साधारण बात समझा। उसने सिक्ख पल्टनोंसे वहां जाकर विद्रोहको शान्त करनेके लिये कहा। सिक्ख सरदारोंने बिना आंग्ल सेनाके वहां जानेसे इन्कार कर दिया। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि इस कार्यमें सिक्ख सैनिकोंपर विश्वास नहीं किया जा सकता, इसलिये सिक्ख सेना वहां भेजनी ही न चाहिये।

तब इसने लार्ड गफ़को शिमलामें सूचना दी और आंग्लसेनाको मुलतान भेजनेके लिये प्रार्थना की। लार्ड गफने अधिक गरमी पड़नेके कारण सेनाको भेजनेमें कुछ विलम्ब कर दिया। अब लार्ड डलहौजी गवर्नर जनरल था और वह इस काररवाईसे सहमत था। लेफ्टनेण्ट एडवर्ड्ज़ने समाचार पहुंचते ही पठानों तथा बलुचियोंकी एक सेना एकत्र करके डेरा-गाज़ीखांपर अधिकार कर लिया। नवाब बहावलपुरको भी सहायता देनेपर राज़ी कर लिया। इस प्रकार वह अकेला अपने उत्साहसे बहुत दिनों तक दीवान मूलराजकी सेनासे युद्ध करता रहा।

लेफ्टनेण्ट एडवर्ड्ज़

इतनेमें लाहौर में एक दुरभिसन्धि का पता लगा जिसमें रानी जिन्दा भी सम्मिलित थी। अंग्रेजोंका अधिकार होते ही रानीको, जिसने अपने भाईका बदला लेनेके लिये खालसाको बारूदके स्थानपर सर्सों भेजी थी, अपनी ... [illegible] हो गयी। उसने कालासिंह द्वारा षड्यन्त्र रचना ... [illegible] ... तनि देकर आगरा

लाहौरमें षड्यन्त्र-रचना

सिंह मन्त्री नियत कि... [illegible]

जब करीको एडवर्डज्की सफलताका वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो उसने अपने उत्तरदायित्वपर आंग्लसेनाको मुलतान भेज दिया। जनरल ह्विश उसका सेनापति था। जब यह सेना, सिक्ख-सेना सहित जिसका नेता शेरसिंह अटारीवाला था, मुलतान पहुंची, तो उधर हजारामें सरदार शेरसिंहके पिता सुचेतसिंहने विद्रोहपताका खड़ी की। १९ भाद्रपद(४ सितम्बर) को जनरल ह्विशने मुलतान दुर्गको घेर लिया। मुलतान अधीन हो जाता किन्तु २६ भाद्रपद (१४ सितम्बर) को शेरसिंह भी विद्रोहियोंके साथ मिल गया। तब ह्विशने अवरोध उठा लिया और तीन मास तक सहायतार्थ सेनाकी प्रतीक्षामें चुपचाप बैठा रहा।

शेरसिंह मुलतानसे निकलकर प्रत्येक स्थानपर खालसाको सचेत करता हुआ अपने पिताके साथ जा मिलनेके लिये रामनगर तक आ पहुंचा। इधर गफने सेनाकी बागडोर अपने हाथमें ले ली और वह रावी पार करके पीछे पीछे वहां आ गया। ६ मार्गशीर्ष (२२ नवम्बर) के प्रातःकालको गफने शेरसिंहको पार होते देखकर विना किसी विचारके धावा बोल दिया। शेरसिंहने गोलाबारीकी आज्ञा दी। अब लार्ड गफपर विपत्ति आ पड़ी। तोपें रेतमें फंस गयीं और आंग्लसेनाको पीछे हटना पड़ा। एक तोप वहीं रह गयी। जनरल हैवलाकने तोप लानेकी आज्ञा मांगी। वह सेना लेकर गया किन्तु सिक्ख तोपोंकी मार बड़ी तीक्ष्ण थी। वह स्वयं वहीं मारा गया और सेनाको असफल होकर लौटना पड़ा। दूसरे दिन सिक्ख तोपें उठाकर ले गये। रामनगरके युद्धसे सिक्खोंके दिल बहुत बढ़ गये।

रामनगरका युद्ध

सिक्ख अब चनाव पार हो गये। गफके मनमें एक ही विचार काम कर रहा था कि किस समय शत्रुपर पहुंचकर आक्रमण करें। उसने जनरल थैकवैलको पार होनेकी आज्ञा दी।

सिक्ख रात्रिके समय सो जाते थे इसलिये थैकवैल सेनाका कुछ भाग लेकर वजीराबादसे नदी पार हुआ। गफकी आज्ञा थी कि शत्रुपर मिलते ही आक्रमण कर देना परन्तु दिनभर अन्वेषण करनेपर भी उन्हें सेनाका कुछ पता न चला। उधरसे गफने गोलाबारी आरम्भ कर दी जिसमें सिक्खोंको थैकवैलका पता न लगे। जब शेरसिंहको यह वृत्तांत विदित हुआ तो वह तो एक बार सारी सेना लेकर थैकवैलके प्रतिकूल चला। किन्तु फिर उसको यह भय हुआ कि कहीं गफ पीछेसे नदी पार न करे। इसलिये उसने सेनाका कुछ भाग वहीं छोड़ा और केवल दस सहस्र सेना लेकर चला। सादुल्लापुरके स्थानपर उसने थैकवैलकी सेनापर गोलाबारी आरम्भ की। जब रात हो गयी तो लौट आया। आंग्लसेना भूमिपर लेट गयी और उसको थोड़ी सी हानि हुई। शेरसिंह गफके आगमनसे डरता रहा और इसने आक्रमण न किया। उधर गफ नदीकी उसी ओर बैठा रहा।

यहां चतुरसिंहने अटक दुर्गको घेर लिया था। जब उसने अटकको ले लिया तो गवर्नर जेनरलने गफको लिखा कि तत्काल शत्रुपर आक्रमण कर दो। नदी पार करनेपर उसे सूचना मिली कि सिक्ख सेना रसूलके समीप है। गफने उसी ओर प्रस्थान किया। सिक्ख-सेना चिलियांवाला ग्रामके समीप आ गयी थी। गफकी दृष्टि उसपर पड़ी। शेरसिंह उसी दिन युद्ध करनेके लिये कटिबद्ध था। उसने तोपें चलानी आरम्भ कीं। इधरसे भी तोपें चलीं। कुछ काल तक गोलाबारी होती रही। इनके मध्य एक मील घना जंगल था। कुपित होकर गफने शत्रुके तोपखानेपर आक्रमण करनेकी आज्ञा दी। सिक्खोंने वीरतासे सामना किया। युद्धका विस्तृत वर्णन देना कठिन है किन्तु इतना कहना आवश्यक है कि पंजाबका यह युद्ध बहुत ही प्रसिद्ध हुआ है। आश्चर्यकी बात यह है कि अंग्रेज भी इसे अपनी विजयोंमें गिनते हैं और सिक्ख तो निःसन्देह इसे अपनी बड़ी विजय मानते हैं। इस स्थानपर अंग्रेजोंकी तोपें और झण्डे रह गये और उन्हें लौटना पड़ा। सायंकालको जब अंग्रेज हट कर चिलियांवाला ग्राममें आ गये तो वे छः तोपें और फौजी झण्डोंके अतिरिक्त सारी लाशें रणभूमिमें छोड़ आये। उनकी बड़ी भारी हानि हुई। इस युद्धमें उनके १८९ अफसर और २३५७ मनुष्य मारे गये अथवा जख्मी हुए। सिक्ख ये सब वस्तुएं अपनी विजयके प्रमाणमें लेकर रसूलको लौट गये। दो सप्ताह पर्यन्त दोनों सेनायें एक दूसरेसे थोड़ी दूरीपर पड़ी रहीं। गफकी समझमें न आता था कि क्या करें। वह मुलतानके विजयकी प्रतीक्षा करता रहा। चिलियांवाला युद्धके ४० दिन पश्चात् मुलतानकी विजय हुई। जनरल ह्विश सेना लेकर गफकी सहायताको चला।

चिलियांवालाका युद्ध

अंग्रेजोंकी हानि

इधर शेरसिंह अपने पिता चतुरसिंहके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहा था। थोड़े ही दिनोंमें चतुरसिंह अपनी सेना लिये आ पहुँचा। उसके साथ अफगान सेना भी थी जिसका सेनापति अमीर काबुलका पुत्र अकरम खां था। चतुरसिंहने सभी सेनाकी बागडोर अपने हाथमें ले ली। कई बार चतुरसिंहने यत्न किया कि गफको सामने लावें परन्तु गफ अपने स्थानसे न हिला। अन्तमें वहांसे आंख बचाकर शेरसिंहने चनाब नदीको पारकर लाहौरकी ओर मुख किया। गफने ह्विशको मार्ग रोकनेकी आज्ञा दी। वह पहिले ही तैयार बैठा था। जब सिक्खोंको यह विदित हुआ तो उन्होंने गुजरातमें आ डेरा जमाया।

अब जनरल ह्विशकी सेना गफके पास पहुंच गयी। वह कुमक होता हुआ गुजरातमें शत्रुके सम्मुख आ उपस्थित हुआ। दोनों सेनाओंमें युद्धकी तैयारियां आरम्भ हो गयीं। [illegible] आक्रमणको सिक्खोंने बड़े [illegible] गया। [illegible] मुट्ठीभर [illegible] करते रहे। धीरे धीरे बढ़ती हुई [illegible] तथा [illegible] सिक्खोंको [illegible] हुआ। वे थोड़ी देर ठहरकर दूसरी बार

गुजरातका [illegible]

युद्धके लिये फिर आगे बढ़े। वे खालसाकी विजयके लिये इस युद्धको सबसे अन्तिम अवसर समझते थे और जान तोड़कर लड़ते थे।

दोपहरके एक बजे अंग्रेज भी थककर निराश हो बैठे और सिक्ख भी थककर पीछे हट आये। इनका हटना अंग्रेज़ोंको विदित हुआ तो उनके दिल बढ़ गये और उन्होंने पीछा करना आरम्भ किया। संवत् १९०५ के ३० फाल्गुन (१४ मार्च १८४९ ई०) को सिक्खसेनाने शस्त्र रख दिये और युद्धकी समाप्ति हुई। इस बार नेताओंपर उलटा दोषारोपण नहीं हो सकता था, सिक्खसेना इस वीरतासे शायद ही कभी लड़ी हो। यदि इस बार सिक्खोंको सफलता नहीं हुई तो इसका कारण शेरसिंहकी भूल थी। उसने केवल अपनी शिथिलताके कारण उन अवसरोंसे लाभ न उठाया जो उसे कई बार मिले।

युद्धकी समाप्ति

लार्ड डेलहौजीने अब पंजाबको अंग्रेजी शासनमें मिला लेनेका निश्चय कर लिया था। प्रश्न यह था कि पंजाब किसके लिये विजित किया गया। सर हेनरी लारेन्सका उत्तर स्पष्ट था। उसने कहा, हमने पंजाब महाराजके लिये विजित किया है जिसके हम संरक्षक थे। परन्तु डेलहौजीका विचार कुछ और ही था। वह स्वयं लाहौर आया और उसने सभाके सभी सदस्योंसे सिंहासन शून्य करनेके प्रतिज्ञापत्र-पर हस्ताक्षर कराये। उसने दलीपसिंहने अपने राज्यका अधिकार अंग्रेजी सरकारको अर्पित करनेकी प्रतिज्ञा की। केवल राजा दीनानाथने आपत्ति उपस्थित करनेका साहस किया। उसने कहा—"इस बालकने क्या अपराध किया है। अंग्रेज जाति इतनी उच्च हृदयवाली जाति है कि दूसरे देशोंमें युद्ध करके बादशाहोंको सिंहासनपर बिठाती है। इसका पिता तो अंग्रेज़ोंका मित्र था।" डेलहौजीने उसे आगे बोलनेसे रोक दिया अतः वह रोता हुआ बाहर चला गया। राजा दलीपसिंह अंग्रेजी रक्षामें पंजाबसे बाहर भेज दिया गया। इस प्रकार पंजाब आंग्लराज्यमें मिला लिया गया।

पंजाबपर अंग्रेज़ोंका आधिपत्य

* * *

कूकोंका आन्दोलन।

इस विषयको इस अध्यायमें समाप्त करनेके लिये यह आवश्यक प्रतीत होता है कि कूकोंका आंदोलन खालसा इतिहासमें सम्मिलित कर दिया जाय यद्यपि इस आन्दोलनका प्रभाव पंजाबमें बीस वर्ष-के बाद प्रकट हुआ। जब कोई जीवित जाति दूसरोंसे पराजित होकर परतन्त्र हो जाती है तो उसके जीवनका लक्षण प्रायः यह होता है कि वह विजयी जातिको अपना शत्रु समझ कर उससे अपनी स्वतन्त्रताको लौटा ले। विजेताओंके लिये यह आवश्यक होता है कि अपने सुप्रबन्ध और सुशासनसे विजित जातिको सुखकरके उसकी पराजयका कलंक तथा अपयश उसके हृदयसे दूर करें। जब दो चार पीढ़ियाँ हो जाती हैं और पराजित लोगोंमें जातीय गौरवका भाव लुप्त हो जाता है तो

वे विजेताओंको अपना सुहृद तथा हितैषी समझ कर उनके साथ मिलने जुलने और उनका अनुकरण करनेमें अपनी उन्नति समझते हैं।

जिस खालसाने दो बड़े युद्धोंमें अंग्रेजोंके विरुद्ध लड़कर अपने प्राणोंका बलि-दान दिया था उसके लिये चुपचाप नयी परिस्थितिको स्वीकार कर लेना सर्वथा अस्वाभाविक था। यद्यपि खालसा दो बार पराश्त हो चुका था और इसके सैनिक मर चुके थे किन्तु अभी खालसामें जीवन था, और एक बार फिर यत्न करनेका विचार हृदयमें तरंग मार रहा था।

खालसाकी संख्या परिमित थी

खालसाकी निर्बलताका एक कारण यह था कि खालसा श्रेणी पंजाबमें अत्यन्त परिमित संख्यामें थी। पंजाबमें गुरुके सिक्ख तो बहुत फैले हुए थे, यद्यपि वे भी जन-संख्याका एक भाग थे, परंतु जिस खालसाकी रचना गुरु गोविन्दसिंहने देशको आक्रामकोंसे स्वतन्त्र करनेके लिये की थी वह परिमित था। इसका काम क्षत्रियोंके तुल्य लड़ना ही था। अंग्रेजोंके आगमनके समय केवल चालीस, पचास सहस्र सिक्खसेना खालसा कही जा सकती थी। अब यह सेना निर्बल होते होते बहुत थोड़ी रह गयी थी। इन लोगोंमेंसे अनेकने दुःखित होकर अपने खालसा कर्त्तव्य छोड़ दिये थे। बहुतेरे अंग्रेजसेनामें भी भरती हो गये। इस

"कूका" शब्दकी उत्पत्ति

टूटी फूटी तथा बिखरी हुई अवस्थासे खालसामें पुनः जीवन उत्पन्न करनेका यत्न करना कूकोंके आन्दोलनके प्रवर्तकका काम था। "कूका" नाम केवल इसलिये पड़ गया कि वे रात्रिको कूके दिया करते थे।

कूका आन्दोलनका प्रवर्तक रामसिंह

गुरु रामसिंह तरखानवृत्ति (लकड़ीका काम करनेवाला) था। उसने खालसाके साथ साथ अंग्रेजोंसे दो युद्ध किये। युद्धके पश्चात् फिर वह अटक दुर्गमें अपना काम करने लगा। परन्तु उसके हृदयमें खालसाके प्रेमकी अग्नि जल रही थी।

संवत् १९१० में हज़ारो बालकराम नामक एक साधु थे। रामसिंहने उनके दर्शन किये। फिर वह अपना काम छोड़कर दूसरे कामकी ओर प्रवृत्त हुआ। साधुने इससे पूछा "रामसिंह! क्या कर रहे हो, खालसा तो नष्ट हो रहा है।"

राजनीतिक समिति की स्थापना

इससे प्रभावित होकर उसने स्थान स्थानपर जाकर खालसाकी एक राजनीतिक समिति बनायी जिसका आशय गुप्त था। यह समिति खालसाको एकत्र करनेके लिये केन्द्र बनी। खालसाका इसके चारों ओर एकत्र होना आरम्भ हुआ। यह प्रायः प्रसिद्ध था कि रामसिंहके भाषणमें जादूका बल था। जिसके कानमें वह मन्त्र फूंक देता था वह उसका शिष्य बन जाता था। इन लोगोंने अंग्रेजी-संस्थाके मुकाबलेपर अपनी संस्था स्थापित की। प्रत्येक जिलेमें उनके अपने नेता हुआ करते थे। उनके मुकद्दमे आंग्ल-सभाओंमें न जाते थे बल्कि उनके नेताओं द्वारा निर्णीत होते थे। उनकी डाकका प्रबन्ध सरकारी डाकके समान था। उनके पत्र सरकारी डाकसे न

जाते थे। कूके स्वयं एक ग्रामसे दूसरे ग्राम तक ले जाया करते थे। इनके अतिरिक्त दो तीन बड़े धार्मिक सिद्धांत भी गुरु रामसिंहने स्थापित कर दिये, यथा किसी प्रकारका मांस न खाना, थालीमें कोई पदार्थ जूठा न छोड़ना, जो कुछ हो बांट कर खाना, इत्यादि। एक प्रकारसे ये साम्यवादके सिद्धांत थे।

इस संस्थाने इतनी उन्नति की कि दस वर्षके भीतर दो लाख [illegible] इसके सदस्य हो गये। जब संवत् १९१३-१४ में अंग्रेजोंके विरुद्ध बड़ा भारी आन्दोलन हुआ तो उस समय खालसा इस नये समाजको बनानेमें लगा हुआ था। जिन सिक्ख लोगोंने अंग्रेजोंका साथ दिया वे सिक्ख अवश्य थे किन्तु खालसाकी अनुगामिनी न थीं। कूकोंका सबसे बड़ा दोष यह था कि उन्हें अंग्रेजोंकी योग्यताका अनुमान भी पता न था। उन्हें यह ज्ञान न था कि जिले जिलेके नेताओंकी सूची प्रत्येक जिलेके कार्यालयमें विद्यमान है। वे अपनी धुनमें मस्त थे। जब उन्हें अपना बल बढ़ता दिखायी दिया तो उनके कई सदस्योंने अनधिकार चेष्टायें करनी आरम्भ कीं।

उक्त संस्थाकी उन्नति

संवत् १९२० में इनके पांच मनुष्य एक रातको अमृतसरमें कोई पचीस पुरुषोंका वध कर स्वयं भाग गये। इन्हें गोघातकोंसे बड़ी घृणा थी। कमिश्नरने आर्य धनाढ्यों को यह समझकर कि यह उन्हींका षड्यन्त्र है पकड़ लिया। कूकोंने गुरु रामसिंहको इस वृत्तांतसे सूचित कर दिया। उसने कहा "तुम्हारा धर्म है कि उन निर्दोषोंकी रक्षाके लिये अपना अपराध कबूल कर लो।" उन्होंने आकर अपराध स्वीकार कर लिया और पांचोंहीको फांसी दी गयी। उनमेंसे दो कूकोंके नेता थे। एकका नाम झण्डासिंह था जिसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी।

गुरु रामसिंहने अपनी राजधानी लुधियानेके समीप भैनीसाहबमें बनायी। वहां इनका प्रतिवर्ष अधिवेशन होता था जिसमें सब बातें निर्णीत की जाती थीं। संवत् १९२८ में उनके वार्षिकोत्सवमें समस्त दिशाओंसे यह युद्ध करनेका निश्चय शब्द सुनायी दिया कि झण्डासिंहकी मृत्युका बदला लेना आवश्यक है। गुरुने बहुतेरा समझाया कि अभी समय नहीं आया, परन्तु जब उसने देखा कि लोग मेरे वशमें नहीं रहे तो उसने भी अपनी स्वीकृति दे दी। उन्होंने सभी स्थानोंमें आज्ञापत्र भेज दिये जिसमें सब एकत्र हो-जावें, और युद्ध करनेके उपाय सोचने लगे। यह निश्चय हुआ कि पहिले लुधियानेके जिलेके मलौदवाले छोटे दुर्गपर आक्रमण किया जाय। वहांसे बन्दूकें और तलवारें लेकर रियासत मालेर कोटलापर चढ़ाई हो। मालेर कोटलाका नवाब बालक था। जब रियासत-पर अधिकार हो जायगा तो इसमें खालसा एकत्र हो जावेगा और दूसरी रियासतें भी इसके साथ मिल जावेंगी। तब अंग्रेजोंसे युद्ध आरम्भ कर दिया जायगा। इस उत्सवमें अंग्रेजी सरकारके भेजे हुए गुप्तचर विद्यमान थे। उन्होंने तत्काल सब बातोंकी सूचना दे दी। जब दूसरे दिन कई सौ कूकोंने उस दुर्गपर आक्रमण किया तो गवर्नमेंटने अपनी ओरसे प्रबन्ध करना आरम्भ किया। वहांपर उन्हें अधिक सफलता न हुई। कुछ लोग तो

अंग्रेजोंके गुप्तचर

वहीं मारे गये, और जो थोड़े बहुत शस्त्र मिले उन्हें लेकर कोई सात सौ मनुष्य जिनमें स्त्रियाँ भी थीं मालेर कोटलाकी ओर चले।

यहांपर सरकारकी ओरसे सेना तैयार रखनेका समाचार पहुंच चुका था। उधर सरकारी सेनायें दिल्ली तथा जालन्धरसे चल पड़ीं। सिक्ख रियासतोंने इस विद्रोहका समाचार पाकर अपनी सेनायें अंग्रेजी सरकारकी सेवामें भेजीं। लुधियाने-का डिप्टी कमिश्नर मिस्टर वैकर भी चल दिया।

कूकोंका दमन

इसके अतिरिक्त जहां जहां कूकानेता विद्यमान थे वे पकड़कर देशनिर्वासित कर दिये गये। गुरु रामसिंह तथा जाल्मिसिंह मण्डाले भेजे गये। कई काले पानी अथवा दूसरे स्थानोंकी जेलोंमें भेजे गये। सरकारके इस प्रबन्धका यह परिणाम हुआ कि भिन्न भिन्न जिलोंमें जहां जहां कूके तैयार थे वहां वहां वे यों ही बैठ रहे।

कूकोंकी आत्मबलि

उधर मालेर कोटलामें युद्ध हुआ। छः सात सौ मनुष्य सेनाका मुकाबला कहां तक कर सकते थे? डिप्टी कमिश्नर पहुंचा। उसने उनको तोपसे उड़ा देनेकी आज्ञा दे दी, यद्यपि उसे ऐसा करनेका कोई अधिकार न था। सातसे अधिक मनुष्य तोपसे उड़ा दिये गये। गवर्नर जनरल भारतमन्त्रीको सर्वदा नये समाचारोंसे अवगत कर रहा था। उसने डिप्टी कमिश्नरको ऐसा करनेसे रोका किन्तु आज्ञा प्राप्तिके पूर्व ही यह कार्य हो चुका था। कूके आगे बढ़ बढ़ कर तोपके सामने पड़ते थे। एक अंग्रेजने जिसने यह दृश्य अपनी आंखों देखा था कहा कि "सारा यूरोप एक ईसापर गर्व करता है। मैंने आज कई ईसा बलिदान होते देखे हैं।"

इसके अनन्तर सरकारका ध्यान कूकोंकी ओर विशेष रूपसे आकर्षित हुआ। उसने इस आन्दोलनको पूर्णतः शांत कर दिया। पुनरुत्थानके लिये आत्माका यह तीसरा प्रयत्न था।

पहिला प्रकरण।

पूर्व घटनाओंका संक्षिप्त पुनरालोकन।

हम पूर्वही लिख चुके हैं कि जिस समय पश्चिम-उत्तरसे मुग़ल सेनापतिने आकर दिल्लीमें अपने राज्यकी नींव डाली उसी समय यूरोपसे गोरी जातियोंने आकर देशमें व्यापार आरम्भ किया। इन जातियोंमेंसे अंग्रेज़ भी थे।

पहिले पहिल इन्होंने अपने व्यापारके लिये कोठियां बनायीं। फिर कोठियोंकी रक्षाके लिये किले बनाने और सिपाही भरती करने पड़े। यहांके राजा इतना भी न समझ सके कि ये व्यापारी इन कार्यों द्वारा राजनीतिक क्षेत्रमें

राजनीतिक क्षेत्रमें अंग्रेजोंका अवतरण

कदम बढ़ा रहे हैं। हिन्दुस्थानमें राज्य-प्रबन्धका कोई दृढ़ सिलसिला विद्यमान न था। बड़े बड़े नवाब बादशाहसे स्वतन्त्र हो चुके थे और छोटे छोटे नवाब भी प्रायः स्वाधीन ही थे। इन सब छोटी और बड़ी रियासतोंमें परस्पर द्वेषाग्नि प्रज्वलित थी। एक भाई दूसरे भाईकी बढ़ती नहीं देख सकता था। स्वार्थ और ईर्षा—यही दो इस देशकी बीमारीके मूल कारण चले आते हैं।

डूप्लेही पहिला आदमी था जिसने यह देखा कि मैं किसी न किसी राज्य-सत्ता रखने वाले व्यक्तिको अपने हाथमें लेकर अपनी राजनीतिक शक्ति स्थापित कर सकता हूं। उसने देखा कि सितारा, मैसूरादि रियासतोंमें राजा लोग केवल कठपुतलीका काम दे रहे हैं। उसने इस अवस्थासे लाभ उठानेका विचार किया।

'क्लाइव इङ्गलैण्डका एक आवारा सा लड़का था। वह न केवल युद्ध विद्यामें विशारद निकला परन्तु उसने डूप्लेकी इस नीतिपर आचरणकर अंग्रेज़ोंकी शक्ति बंगाल और मद्रासमें स्थापित कर दी। भारतकी प्रजाके अन्दर

अंग्रेजः राज्यका संस्थापक क्लाइव

राजनीतिक भाव तो सब प्रकार नष्ट हो चुका था। उसके नेता राजा भी राजनीतिमें इतने अनभिज्ञ थे कि वे यह भी न समझ सकते थे कि जो आदमी हमें राजगद्दीपर बैठानेकी शक्ति रखते हैं, वे हमें राजगद्दीसे उतार भी सकते हैं। इसी विषयपर एक अंग्रेज़ इतिहास-लेखक कहता है कि "यदि हिन्दुस्थानकी प्रजा अंग्रेज़ी राज्यमें दुःखी है तो उसे इनके लिये मीर जाफर जैसे पुरुषोंको धन्यवाद देना चाहिये जिन्होंने केवल नवाबी नाम रखनेके लिये अपने देशको दूसरोंके हाथ बेच डाला"। यही मीरजाफर अपमानित होने अर्थात् गद्दीसे उतारे जानेपर भी क्लाइवको अपना हार्दिक मित्र समझता था।

बंगालमें नवाबके और अंग्रेज़ी राज्यके सम्मिलित शासनका परिणाम यह हुआ कि इन लोगोंके पास, जिनका देश दुनियामें सबसे धनवान् समझा जाता था, खानेके लिये कुछ भी नहीं रहा। जब एक वर्ष (१७७० में) फसल न हुई तो

द्वैध शासनका परिणाम

अकालके चिन्ह दिखाई देने लगे। कुलकन्याएं और भद्र पुरुष जो कभी बाहर न निकले थे भूखों मरने लगे। बंगालमें पहिले पहिल भयंकर दुःख देख पड़ा। भूखसे व्याकुल व्यक्तियोंने

अपने बच्चोंको बेचना और मृतकोंको खाना शुरू किया। इस भयंकर कालके बाद भूखे आदमियोंके झुण्डके झुण्ड शहरोंमें आ इकट्ठे हुए जहां ऐसी कई प्रकारकी व्याधियां आ फैलीं जो अकालके साथ अवश्य आ जाती हैं। सड़कें बस्तीविहीन हो गये, ग्राम ध्वस्त हो गये, मुर्दोंको जलाने या गाड़ने वाला कोई न रहा। गीदड़ और मांसाहारी पक्षियोंके लिये प्रचुर भोजन-सामग्री प्रस्तुत हो गयी।

इस द्वैध शासनके बाद वारन हेस्टिंग्ज़ बंगालका गवर्नर बनकर आया। हेस्टिंग्जका बचपन क्लाइवके सदृशही विचित्र था। क्लाइवकी तरह हेस्टिंग्ज ब्रिटिश राज्यका दूसरा संस्थापक हुआ। हेस्टिंग्जके समयमें अंग्रेज़ दूसरोंको कठ-पुतली बनाकर युद्ध नहीं करते थे परन्तु अब वे अपने आपको राज्याधिकारी समझते थे और अपने लिये ही युद्ध करते थे। हेस्टिंग्जका समय समाप्त होनेपर यद्यपि हिन्दुस्थानमें अंग्रेज़ोंकी राज्य-शक्ति सबसे बड़ी नहीं थी परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि तुरन्तही वे सबसे बढ़कर शक्तिशाली हो गये।

वारन हेस्टिंग्ज, दू-सरा संस्थापक

हेस्टिंग्जको अपने युद्धोंके लिये धनकी आवश्यकता पड़ी। जितने दोष उसके सिरपर मढ़े गये वे सब इसी आवश्यकताके कारण पैदा हुए, इस अभिप्रायसे उसने अवधके नवाबके साथ एक गुप्त सन्धि की जिसके अनुसार रोहेलोंका देश छीन लेनेके लिये उसने सेनाकी सहायता दी। यह बड़ा भारी अत्याचार था, क्योंकि रोहेले अंग्रेज़ों और नवाबके मित्र थे और मराठोंके आक्रमण रोकनेमें उन्होंने बड़ी सहायता दी थी। इसी प्रकार धनकी आवश्यकताके कारण उसने बनारसके राजा चेतसिंहपर, जो कि इनका बड़ा मित्र था, और अवधके नवाबकी माताओंपर भी धन और जेवर छीननेके लिये भयानक अत्याचार किया। उसकी ऐसी नीतिका भी समर्थन मैकालेने बड़े सुन्दर शब्दोंमें किया है। हेस्टिंग्जकी नीतिका उद्देश केवल धन प्राप्त करनेका था क्योंकि उसकी आर्थिक अवस्था बुरी थी, इसलिये उसने बुरे या भले तरीकोंसे धन प्राप्त करनेका निश्चय कर लिया था। उसने अपने लिये यह नियम बना लिया कि जब रुपयेका अभाव हो तब उसे उस पुरुषसे ले लेना चाहिए जिसके पास रुपया है।

हेस्टिंग्जका अत्याचार

बोर्डके डाइरेक्टर (प्रवर्तक) उसे ऐसे कामोंके करनेके लिये न तो सम्मति देते थे और न मना ही करते थे। उनकी चिट्ठियोंमें राजनीतिपूर्ण आदेशका अद्भुत नमूना पाया जाता है। सब प्रकारके नैतिक उपदेश धनकी उत्कंठाका विचित्र लालसामें डूब जाते थे। "अच्छी भांति शासन करो, और रुपया भेजो, मातहत रियासतोंसे न्याय और प्रेमका बर्ताव करो और रुपया भेजो, किसीसे सख्ती न करो और रुपया भेजो" इन सब उपदेशोंका मतलब दूसरे शब्दोंमें यह था कि प्रजाके साथ न्यायका बर्ताव करो और अन्याय भी करो, नरमीसे रहो और लूट मार भी करते रहो। कामोंके लिये भी बना और साथ ही अत्याचार भी शुरू हुआ। हेस्टिंग्जने निश्चय कर लिया कि सबसे अच्छा तरीका यह है कि सदुपदेश एक ओर रख दिये जावें और रुपया इकट्ठा करनेका उपाय निकाला जाय।

आदेश

लार्ड कार्नवालिसने आकर युद्ध समाप्त कर दिया और सुप्रबन्ध द्वारा शासनको दृढ़ किया। उनका सबसे बड़ा काम भूमिका स्थायी प्रबन्ध (Permanent Settlement) था। इसका कारण उसने स्वयं इस प्रकार वर्णन किया है—

"बाहरके हमलेको हटानेमें और इस बातका ध्यान करके कि हमने किस प्रकार इस देशपर कब्जा किया है हमारे लिये यह अत्यावश्यक है कि इस देशमें जमींदारोंकी ऐसी एक श्रेणी हो जो अपने स्वार्थवश हमारी सहायता करती रहे। उनके भूमिके अधिकारमें किसी प्रकारका परिवर्तन न हो। यदि हम उनके लगान-को सदा बढ़ाते रहेंगे या उनकी जागीरोंको छीननेका अधिकार प्रयोगमें लावेंगे तो वे हर समय ऐसे तरीकोंको काममें लानेके लिए तैयार रहेंगे जिनसे वे अपनी अवस्थाको पहिलेसे सुधार सकें।"

लार्ड वेलेज़ली, ती- सरा संस्थापक

वृटिश राज्यका तीसरा बड़ा संस्थापक लार्ड वेलेज़ली था। उसने विश्व-विद्यालयकी अच्छी शिक्षा प्राप्त की थी और राजनीतिका भी विशारद था। वह पार्लमेन्टका सभासद भी रह चुका था। उसका एक बड़ा सिद्धान्त यह था कि दुनियाके हिस्सोंपर शासन करनेके लिये दिखावेकी बड़ी आवश्यकता है। यही माया संसारपर शासन करती है। अतएव उसने हिन्दुस्तानकी रियासतोंको एक विशेष साधन द्वारा अपने अधीन लानेका निश्चय कर लिया। यह साधन सांब-सिडिक प्रबन्ध (Subsidiary System) कहलाता है। जब उसने नेपोलियनके विरुद्ध युद्ध करनेके बहानेसे टीपू सुलतानकी राजधानी छीन ली तो उसे देशी रियासतोंका सोलहआना मालूम हो गया। उसने देशी राजाओंको बाध्य किया कि वे अपनी रक्षाके लिये सेना रखनेका अधिकार अंग्रेजी सरकारके हवाले कर दें और उसका सारा व्यय भी वही दें। इसका अर्थ यह था कि वे अपना विशेष राज्याधिकार कम्पनीके हवाले कर दें। सबसे पहिले उसने इस नीतिका प्रयोग अवधमें किया। नवाबने कुछ समयसे अपनी भेंट नहीं दी थी वेलेज़लीने उसे इलाहाबादके साथ नौ ज़िले अंग्रेजोंको सेनाके खर्चके बदले दे देने और सांबसिडिक प्रबन्ध (Subsidiary System) के पत्रपर हस्ताक्षर करनेके लिए बाध्य किया। इसके बाद लार्ड वेलेज़लीके हर समय यह प्रबल इच्छा बनी रहती थी कि भिन्न भिन्न मराठा राजा भी इस सन्धिपत्रपर हस्ताक्षर कर दें। संवत् १८५९ (१८०२ ई०) में मराठा सरदारोंके गृहकलहने उसे यह अवसर दे दिया। बाजीराव पेशवाने बसीनमें होलकरसे भागकर इस सन्धिपत्रपर हस्ताक्षर कर दिये छः हजार सेना रखनेके लिये गुजरातके कुछ ज़िले उसने अंग्रेजी सरकारको दे दिये वह स्वयं अंग्रेजोंकी आज्ञाके बिना किसी अन्य राजासे पत्र-व्यवहार तथा सन्धि आदि न कर सकता था।

अंग्रेजी सरकारने अपनी तरफसे यह प्रतिज्ञा की कि हम तुम्हारे उत्तराधिका-रियोंके सम्बन्धमें हस्तक्षेप न करेंगे वह इसी शर्तको बड़ी ज़मानत समझता था जिसके बदले उसने बड़ी सेनाका अधिकार अंग्रेजोंको दे दिया था। यही कारण था जिससे सिन्धिया और होलकर अपनी स्वतंत्रताको खतरेमें देखकर युद्धके लिये उद्यत हुए। सिन्धियाके साथ युद्ध छिड़ा तो होलकर तमाशा देखता रहा।

सिन्धियाको वेलेज़लीकी नीति स्वीकार करनी पड़ी । फिर होल्करकी बारी भी आ गयी । हिन्दुस्थानके राज्याधिकारियोंमें मिलकर काम करनेकी शक्ति कहीं दिखायी नहीं देती ।

यह भी याद रखना चाहिये कि यह मांडलिक प्रबन्धकी नीति (Subsidiary Policy) लार्ड वेलेजलीकी अपनी थी । मराठा सरदारोंका चौथ और सरदेशमुखी वसूल करनेका नियम इसका आधार था । दूसरी शक्तियां उन्हें सरदेशमुखी देनेकी प्रतिज्ञा करती थीं और अपनी रक्षाका अधिकार मराठोंके हवाले सौंप देती थीं ।

लार्ड विलियम बैण्टिकने वर्तमान शिक्षाप्रणालीकी नींव रखकर अंग्रेजी राज्यको दृढ़ किया । यह लार्ड शुद्ध और सरल हृदयवाला पुरुष था । यह कहा जा सकता है कि वह दिलसे हिन्दुस्थानी प्रजाको प्रेमकी दृष्टिसे देखता था । जिन जिन बुराइयोंको इसने लोगोंमें देखा उन्हें दूर करनेका भरपूर यत्न किया ।

चौथा बड़ा राज्य-संस्थापक लार्ड डेलहौज़ी था । वह अपने आपको पूर्व प्रकारसे सन्धिपत्रोंके ऊपर समझता था । उसकी नीतिका एक ही उद्देश्य था कि सारे हिन्दुस्थानको एक शासनके अधीन कर दें । जब कभी उसे लार्ड डेलहौज़ी चौथा अवसर मिला उसने इस नीतिका प्रयोग किया । मित्रताको एक ओर संस्थापक रख दिया और राजाओंसे गोद लेनेका अधिकार भी छीन लिया ।

इस समय ब्रिटिश शक्ति अपने शिखरपर पहुंच चुकी थी । अब एक बड़ा भूकम्पसा आया जिसने उसे जड़से हिला दिया । लार्ड डेलहौज़ीकी नीतिका पता उस नीतिसे लगता है जो सर राबर्ट ग्राण्टको सितारा राज्यको मिला लेनेके सम्बन्धमें बतायी गयी थी । जब बाजीराव पूनाकी गद्दीसे उतारा गया तो सितारकी राजधानी राजा प्रताप-सिंह और उसके उत्तराधिकारियोंको जो कि शिवाजीके वंशज थे दी गयी । कुछ वर्ष उसका बम्बई सरकारसे रियासत सम्बन्धी झगड़ा होता रहा । अन्ततः झगड़ा इतना बढ़ा कि वह एक रात्रिको कैद करके कहीं गुप्त स्थानपर भेज दिया गया । अब प्रश्न उस गद्दीकी मिलकियतके विषयमें था । गवर्नर जनरलने कहा इस राज्यका रखना बड़ी भारी नैतिक भूल थी क्योंकि यह ब्रिटिश राज्यके मध्यवर्ती था । इसे अंग्रेजी साम्राज्यमें मिला लेना चाहिये था । ऐसे उदाहरण हमारे समक्ष उपस्थित थे जब कि हमने कई राजोंको सत्कारपूर्वक गद्दीपर बिठाया और पश्चात् उनको राज्यविहीन करके उनकी राजनीतिक सत्ता नष्ट कर डाली ।

दूसरा प्रकरण ।

संवत् १९१३ का सिपाही-विद्रोह ।

भारतवर्षके इतिहासमें यह सबसे बड़ी अन्तिम घटना है। लार्ड डेलहौजी द्वारा पंजाबको अंग्रेजी राज्यमें मिलानेके उपरान्त भारतवर्षके और बड़े बड़े भाग भी उसमें समाविष्ट किये गये। भारतवर्षसे लौटते समय उसके विचारमें सारा आर्यावर्त आंग्लशासनके अधीन लानेका कार्य समाप्त हो चुका था। उसके जाते ही समस्त देशमें एक भयंकर अग्नि प्रज्वलित हो उठी, जिसमें सहस्रों अंग्रेज तथा भारतीय भस्म हो गये।

भयंकर अग्निका प्रज्वलन

जिस तूफानके कारण सहस्रों प्राणी अपने सम्बन्धियोंसे वञ्चित किये गये हों उसके कारणों तथा परिणामोंका थोड़ासा अध्ययन करना ज़रूरी है। आंग्लभाषामें इस घटनापर सैकड़ों पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। सभी बातोंपर प्रकाश यहां डालना असम्भव है, इसका संक्षिप्त वर्णन तथा तत्सम्बन्धी कतिपय सार्वजनिक विचार ही यहांपर प्रकट किये जा सकते हैं। सबसे पूर्व ही यह प्रश्न होता है कि इस घटनाका नाम क्या रखें। क्या यह राज्यक्रान्ति (रिवाल्यूशन) थी। राज्यक्रान्तिका लक्षण यह है कि यह सर्वसाधारण लोगोंकी ओरसे होती है। इसलिये दो बातोंका होना आवश्यक है। एक तो चिरकालपर्यंत स्वातन्त्र्य विचारोंका प्रचार हो। दूसरे, लोगोंको निःस्वत्वताकी शिकायतें हों। दोनोंके मिल जानेसे राज्यविप्लवकी अग्नि प्रज्वलित होती है। इस अवसरपर स्वतन्त्रताके विचारोंका ज़रा भी प्रचार न हुआ था। अतः इसे राज्य-क्रान्ति नहीं कह सकते।

"राज्यक्रान्ति" न थी

क्या यह सैन्यद्रोह था ? इससे यह ध्वनि निकलती है मानो यह द्रोह सैनिकोंके विश्वासघातके कारण हुआ था, पर वास्तवमें विद्रोह सेनाकी ओरसे न था। इसके वास्तविक प्रवर्त्तक कुछ देशी राजा थे। सैनिकोंने विश्वासभंग नहीं किया। जब उन्हें यह विश्वास दिलाया गया कि सरकार द्वारा उन्हें धर्मच्युत करके ईसाई बनाये जा रहे हैं तो उन्होंने अपने पुराने राजाओं, एवं बादशाहोंके साथ मिलकर अपने धर्मकी रक्षा करना आवश्यक समझा। आर्यावर्तमें धार्मिक क्रूरता ही असह्य क्रूरता समझी जाती है। इंग्लैण्डके युद्ध अधिकतर व्यापारके कारण हुए, किन्तु भारतकी बात न्यारी है। भारतवासी दूसरे सब प्रकारके दुःखोंको सहन कर सकते हैं किन्तु धर्मके विषयमें उन्हें अपने तन और धनकी सुधि नहीं रहती। इसलिये इसे सैन्यद्रोह कहना भी भ्रम है।

यह सैन्य-द्रोह भी न था

वस्तुतः अपने आपको आंग्लशासनसे स्वतंत्र करनेकी यह बड़ी भारी चेष्टा थी जिसके नेता अत्याचारपीड़ित राजा तथा नवाब थे। सैनिकोंने धार्मिक पतनके भयसे उनका साथ देना उचित समझा। इसलिये हम इसे एक बड़ा षड्यंत्र यह स्वतन्त्र होनेकी (क्रान्तिकारी) कह सकते हैं। इसमें कतिपय असहाय राजपुत्रोंने स्वदेशी सेनाकी सहायतासे आंग्लराज्यको उलटना चाहा।

स्वतन्त्र होनेकी चेष्टा थी

इस प्रकारके षड्यंत्र व्यक्तियों तथा वंशोंके विरुद्ध तो सफल हो सकते हैं। एक पुरुष अथवा कुछ पुरुषोंको मार दिया और अपना कार्य सिद्ध हो गया परन्तु जहां एक ओर एक जातिका बल हो और दूसरी ओर कुछ विशेष समूहोंकाही हो वहां उसका सफल होना कठिन है। भारतवासियोंका विचार था कि कुछ अंग्रेज अफसरोंको मार देनेसे उनके राज्यकी समाप्ति हो जावेगी। वे अपने देशमें यही होते देखते चले आये थे। परन्तु अंग्रेजोंकी दशा सर्वथा विभिन्न थी। कतिपय मनुष्योंके मारे जानेसे शासनप्रबन्धमें बड़ा परिवर्तन न हो सकता था, क्योंकि छोटेसे छोटे अंग्रेज उनका स्थान लेकर उनका कर्त्तव्य उसी प्रकार पालन कर सकते थे।

एक बार संवत् १८५६ में केवल कुछ राजाओंने अंग्रेजोंको निकालना चाहा, वे असफल हुए। अब उनके अत्यन्त निर्बल उत्तराधिकारियोंने देखा कि अंग्रेजोंका बल केवल देशी सेनापर निर्भर है। इसलिए उन्होंने सैनिकोंके साथ मिलकर अंग्रेजोंको निकालना चाहा। इसका परिणाम भी यही हुआ।

अंग्रेजोंको अपनी विजयपताका उत्तर भारतमें स्थापित किये अभी कुछ ही वर्ष हुए थे। वे अभी अपनी विजयके गर्वमें थे। उनके पर आगे बढ़ रहे थे। इसी समय पूर्वप्राप्त सफलताके अभिमानमें लार्ड डैलहौजीने ऐसे ऐसे काम किये जिनसे पराजित देशके मृतक लोगोंमें भी एक बार फिर उत्तेजनाकी तरंग लहरा उठी।

सिन्ध, पंजाब और पेगूको जीत करके अंग्रेजी सरकारने अपने अधीन कर लिया। भारतवर्षके लोग इस प्रकारकी विजयोंके अभ्यस्त थे। वे जानते थे कि कोई राजा किसी अन्य जातिके साथ युद्ध कर अपने राज्यको भयमें डालता है और पराजित हो जानेपर उससे देश ले लेना अथवा उसे लौटा देना विजयीके कठोर तथा नम्र स्वभावपर निर्भर है। परन्तु उनकी समझमें यह बात न आ सकती थी कि जब एक राजा पराधीनता स्वीकार कर बिना किसी विरोधके राज्य कर रहा हो तो उसका राज्य क्योंकर ज़ब्त कर लिया जा सकता है। उनके विचारमें इससे बढ़कर और कोई अन्याय और अत्याचार नहीं हो सकता। लार्ड डैलहौज़ीने जनताके इस विश्वासकी ओर कुछ ध्यान न दिया। या तो उसे उसके हानिकारक प्रभावोंका ज्ञान ही न था या उसने अपने बलके घमण्डमें इस विचारको पददलित करना चाहा। दैवयोगसे उसके शासनकालमें ऐसे बहुतसे अवसर आ गये। आर्योंके अन्दर दत्तकपुत्र बनानेका अधिकार ऐसाही पवित्र है जैसा कि अपनी सन्तानके लिये दायभाग छोड़ जानेका। संवत् १९०५ में सितारेका राजा निःसंतान मर गया। उसने अपने कुलके एक व्यक्तिको गोद लिया था। यह कुल शिवाजीका कुल था। इसके तीन वर्ष पश्चात् नागपुरका राजा मर गया। उसने किसीको गोद नहीं लिया था। उसकी रानियोंकी इच्छा थी कि किसीको दत्तकपुत्र बनाकर अपने कुलका नाम स्थिर रखें। इसके एक वर्ष पूर्व झांसीका राजा मर गया था। उसके भी कोई संतान न थी। तीनोंके सम्बन्धमें स्थानीय अफ़्स

सितारा, नागपुर और झांसीके राज्य

रेज़िडेण्ट बेचारा क्या कर सकता था? लार्ड डैलहौज़ीकी अन्तिम आज्ञा मानी गयी और घोषणा द्वारा अवध भी आंग्ल राज्यमें मिला दिया गया।

उपाधियों तथा वृत्ति-यों का अपहरण

जिस प्रकार ये राजा और नवाब अपने राज्यसे वञ्चित किये गये उसी प्रकार कई व्यक्ति उपाधियों तथा पेन्शनोंसे भी वञ्चित कर दिये गये। तंजौरके राजा और करनाटकके नवाब चिरकालसे नाम मात्रके राजा और अंग्रेज़ी सरकारके वृत्तिभोगी चले आते थे। लार्ड डैलहौज़ीने उनकी वृत्ति बन्द कर दी और उनकी उपाधियां भी ले लीं। इसी प्रकारका व्यवहार गद्दीसे उतारे हुए पेशवाके साथ भी किया गया।

पेशवाकी वृत्तिका अन्त

अन्तिम पेशवा द्वितीय बाजीराव संवत १८७४ से बिठूरमें आठ लाख वार्षिक वृत्तिपर निर्वाह करता था। संवत् १९०७ में वह मर गया। उसने बहुतसा धन एकत्र कर लिया था। वसीयतनामा लिख उसने अपने दत्तक-पुत्र धुन्धूपन्त नानासाहिबको अपना उत्तराधिकारी बनाया, धुन्धूपन्तको तीन करोड़ पौण्ड दाय भागमें मिले। यद्यपि आंग्ल कमिश्नरने बलपूर्वक सम्मति दी कि पेशवाकी वृत्ति स्थिर रहनी चाहिये, पर लार्ड डैलहौज़ीने लेफ्टिनेण्ट गवर्नरसे राय लेकर वृत्ति बन्द कर दी। इसपर नानासाहबने बड़ा लम्बा चौड़ा आवेदनपत्र लण्डन भेजा। उसका अभिप्राय यह था कि पिताकी वृत्तिपर मेरा पूरा हक है, वह स्थिर रहनी चाहिये। अधिकारिवर्गने आवेदनपत्रपर ध्यान न दिया, इधर दिल्लीके मुग़ल बादशाहके सम्बन्धमें एक और तजवीज़पर विचार हो रहा था। वह तजवीज़ प्रायः प्रकट हो चुकी थी। दिल्लीके मुग़लवंशको अभीतक भारतका अधिराज कहलानेका अधिकार प्राप्त था। अंग्रेज अफ़सरोंके मनमें यह शंका थी कि यह उपाधि अंग्रेज़ी सरकारके लिये भयानक है। किसी समयपर लोग ऐसे नेताके झण्डेके नीचे एकत्र होकर सरकारके विरुद्ध हो सकते हैं। यह विचार बल पकड़ रहा था कि आगेसे यह उपाधि सर्वथा उड़ा दी जाय, और अंग्रेज़ी सरकार ही भारतवर्षकी सर्वोपरि और सर्वोत्तम शक्ति समझी जाय।

सेनाका मानसिक असन्तोष

भारतीय सेना यद्यपि आंग्ल-अधिकारियोंके नीचे कवायद-दां बन गयी और सदा श्रद्धा तथा भक्तिसे लड़ती रही पर सैनिकोंके हृदयसे यह विचार कदापि दूर नहीं हुआ कि हम एक अन्य जातिके अफ़सरोंके अधीन लड़ रहे हैं। कई अवसरोंपर उन्होंने द्रोह किया। जब कभी उन्हें कोई शिकायत होती थी, तत्काल उन्हें यह ध्यान आ जाता था कि हमारे अंग्रेज अफ़सर इतने बड़े बड़े वेतन लेते हैं और हमें खानेके लिये भी कठिनतासे मिलता है।

जब देशी सेनाको अफ़ग़ानिस्तान, सिन्ध और पंजाब जैसे दूरस्थ प्रान्तोंमें लड़नेके लिये जाना पड़ा तो स्वभावतः उन्हें आशा थी कि हमको भी कुछ लाभ होगा. जब उन्होंने देखा कि देश विजित कर साथ मिला लिया गया है किन्तु हमारी दशा वैसी-की वैसी ही है तो उन्हें बड़ी निराशा हुई। प्रायः सर्वत्र लोग यही कहते थे कि पुराने बादशाह देश विजित कर उसका अधिकांश जागीरोंके रूपमें अपने सैनिकोंमें बांट

दिया करते थे। अंग्रेज तो उन्हें चप्पा भर भूमि भी नहीं देते। इस प्रकार सेनामें असन्तोष धीरे धीरे बढ़ रहा था।

एक ओर अवधके साथ अंग्रेजोंके कठोर व्यवहारकी बातें फैलायी जा रही थीं, दूसरी ओर नागपुर राज्यकी रानीका हृदयवेधी वर्णन किया जाता था। ऐसी अनेक अत्युक्तिपूर्ण कथायें, पथिकों, फेरी देने वालों, तमाशा करने वालों और भीख मांगने वालोंद्वारा सर्वत्र पहुंच गयीं। इन्हींसे आंग्लसरकारके विरुद्ध प्रजा-प्रकोपका बीज बोया गया। पंजाबकी विजयके उपरांत अंग्रेजोंने सिक्खोंको सेनामें भरती करनेका विचार किया। अब धर्मी और उच्च जातिवालोंने समझा कि सेनामें नीच जाति वालोंको भरती करके हमारा मान घटाया जायगा। इनके अतिरिक्त जिस बातने सेनाको बहुत अधिक प्रभावित किया वह विशेषतः धर्म सम्बन्धी शिकायतें थीं।

क्रिश्चियनोंका प्रभाव

उस समय अंग्रेजी पाठशालाओं द्वारा आंग्लभाषा प्रचलित होने लगी थी। बहुतसी पाठशालायें ईसाइयोंकी थीं, इसलिये साथ साथ ईसाई धर्मका भी प्रचार होने लगा था। बंगालकी सेनाके लोग उत्तम कुलोंके थे इसलिये स्वभावसे ही वे अपने आपको आर्य-धर्म और जातिका रक्षक समझते थे। वर्तमान कालकी आंग्ल शिक्षा और सभ्यतामें पले नेताओंकी श्रेणीने अभी जन्म न लिया था। सैनिकोंको संशय होने लगा कि हमने जिस जातिको अपना रक्षक तथा हितैषी समझा है वह तो धर्मको भ्रष्ट करने लगी है। उनकी आत्मा कहती थी कि: विदेशीभाषा, विदेशी सभ्यता तथा विदेशी धर्मके फैल जानेसे हमारी भाषा, जाति और धर्म जीवित नहीं रह सकते।

आंग्लभाषा तथा आंग्ल धर्मका प्रचार

इसके लिये उनके पास कई स्पष्ट प्रमाण थे। कई सैनिक अफसर अपने सैनिकोंमें ईसाई धर्मका स्पष्ट रूपसे प्रचार करते थे। वे साफ कहते थे कि जब हमारा शरीर गवर्नमेण्टकी सेवाके लिये है तो हम अपनी आत्माकी भलाईके लिये ईसाई धर्म अवश्य फैलायेंगे। इतना ही नहीं, लार्ड डेलहौजीके शासनकालमें, प्रचारकोंकी ओरसे एक भाषण सर्व साधारणमें बांटा गया जिसमें लिखा था कि उचित यही है कि अंग्रेजी सरकारकी सारी प्रजा एक ही धर्मकी माननेवाली हो। उसमें यह भी दर्शाया गया था कि समस्त पाश्चात्य सभ्यता ईसाई धर्मके फैलनेका साधन है और समग्र छोटे मोटे मत शासकोंके धर्ममें समाविष्ट हो जावेंगे।

धार्मिक विज्ञापन बांटा गया

लोगोंमें यह अपवाद फैल गया था कि लार्ड कैनिंग राजराजेश्वरी विक्टोरियासे किसी प्रकार भारतवासियोंको ईसाई बनानेका विशेष आदेश पाकर आया है। दैवयोगसे लार्ड कैनिंगने आतेही कलकत्तेकी बाईबिल सोसायटीको, पादरियोंकी सहायता जिसका उद्देश्य बाईबिलको पूर्वदेशीय भाषाओंमें अनूदित करना था और जिसे लार्ड वैलेजलीने स्थापित किया था, तथा श्रीरामपुर और कलकत्तेके पर्व मिशनोंको चन्दे देने आरम्भ किये।

सेनामें यह अग्नि प्रचण्ड रूप धारण ही कर रही थी कि चर्बीवाले कारतूसोंकी बात प्रसिद्ध होनी आरम्भ हुई। पूर्व इसके कि इसका वर्णन किया जाय एक और बातका कथन कर देना आवश्यक है। संवत् १९१० में अंग्रेज जाति क्रीमियाके साथ युद्धमें व्यस्त थी। आर्यावर्तमें चिरकालसे इस बातकी खबर थी कि अंग्रेजोंका रूसके साथ युद्ध होगा। अब भारतवर्षमें यह अफवाह फैलने लगी कि रूसने इङ्गलैण्डको जीत लिया और राजगद्दी वहांसे भाग आयी है। उन लोगोंके लिये यह शुभ अवसर था, जो किसी विधिसे अपना बदला लेना चाहते थे।

जब अंग्रेजी सरकारने अपनी ओरसे सेनाको क्रीमिया युद्ध भेजा तो यह कार्य अंग्रेजी सरकारकी निर्बलताका प्रमाण समझा गया। उसी समय अंग्रेज फ़ारससे युद्ध करनेके लिये तैयार हुए। फ़ारसके बादशाहने अंग्रेजोंको तंग करनेके लिये अपने दूत दिल्लीके बादशाहके पास भेजे। उसने कहला भेजा कि सभी मुसलमानोंको परस्पर एकता करके अंग्रेजी शासकोंको भारतसे बाहर कर देना चाहिये। इस अभिप्रायका एक घोषणापत्र तय्यार किया गया जिसमें मुग़ल-राज्यके पुनरुत्थानकी चर्चा की गयी थी।

यह अफवाह सर्वत्र फैलाया गया कि अब अंग्रेजोंको पलासीके युद्धके पश्चात् पूरे सौ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। एक सौ वर्षही इनका राज्य-काल था। इस प्रकारकी बातोंका सर्वसाधारणके हृदयपर विचित्र प्रभाव होता है।

इन सब बातोंको सिंहासनच्युत राजा तथा नवाब बड़े ध्यानसे देख रहे थे। अंग्रेज़ोंको इनका कुछ भी ज्ञान न था। उस समय 'गुप्तचर विभाग' इतना सुव्यवस्थित भी न था। आर्यों और मुसलमान सैनिकोंको केवल धर्म सम्बन्धी बातें ही प्रभावित कर सकती थीं। राजा और नवाब या तो आर्य थे या मुसलमान। सैनिक लोग उन्हीं धर्मोंके अनुयायी थे। उन लोगोंने धर्मके नामपर अपील करके सेनाको सरकारके विरुद्ध करना चाहा। कोई एक वर्ष तक पत्र व्यवहार होता रहा। नाना साहब और नवाब वज़ीरके प्रतिनिधि परस्पर मिलते रहे। इस पत्र-व्यवहारमें सेनाके देशी अफसर शामिल थे। अन्ततः पलासीकी तिथि सर्वत्र एक साथ उठनेके लिये निश्चित की गयी। इससे कुछ काल पहिले चर्बीवाले कारतूसोंकी बात फैल चुकी थी। देशी पलटनोंके अन्दर पहलेहीसे एक प्रकारकी बन्दूक प्रचलित थी। अब एक नये किस्मकी बन्दूक प्रचलित करनेकी तजवीज़ हुई। इस बन्दूकके लिये जो कारतूस बनाये गये उनमें पशुओंकी चर्बीका प्रयोग होता था। यह विचार प्रायः चारों ओर फैल गया कि यह चर्बी गौ और सूअरकी चर्बी है। दमदममें जो कलकत्तेसे आठ मीलकी दूरीपर है देशी सेना रहा करती थी। जनवरीमें एक खलासीने किसी ब्राह्मण सैनिकसे उसके पात्रका जल मांगा। ब्राह्मणने कहा कि मेरा पात्र अपवित्र हो जायेगा। तब सिपाहियोंने उसे बताया कि अब सब कुछ एक हो रहा है। कारतूसोंमें गौ और सूअरकी चर्बी लगी है, सब आर्यों और मुसलमानोंको उन्हें दांतसे काटना पड़ेगा। ब्राह्मण और भंगी सब एक हो जायेंगे।

इस प्रकार अनेक कारण प्रस्तुत हो रहे थे। परन्तु इतना बड़ा आन्दोलन कदापि न होता यदि उसके पीछे किसी प्रकारका उत्तम संगठन न होता। भारत जैसे देशमें

जहाँ लोग बिना नेताके कुछ उत्साह ही नहीं दिखाते वहाँ आवश्यक था कि कोई उनका नेता बनकर इस कार्यका भार सिरपर उठाता। उस कालकी परिस्थितिका अध्ययन करनेसे विदित होता है कि दिल्लीके सामन्तोंमें राजपुत्रों तथा बेगमोंमें अंग्रेजोंके प्रति घृणा बढ़ रही थी। बहादुर शाहकी बेगम जीनत महल तथा अंग्रेजोंके विरुद्ध कोई न कोई उपाय सोचती ही रहती थी। इसका बड़ा कारण यह था कि अंग्रेजी सरकार स्वयं महाराजाधिराजकी उपाधि लेनेकी तजवीज कर रही थी। इस संगठनका वास्तविक सिरताज नाना साहब था। वह अन्तिम पेशवा द्वितीय बाजीरावका दत्तकपुत्र था। बाजीरावको आठ लाख वार्षिक वृत्ति मिलती थी। उसने बहुतसा धन एकत्र करके अंग्रेजी सरकारको अफगानिस्तान और पंजाबके युद्धोंमें बड़ी सहायता दी थी। उसकी मृत्युके उपरान्त सरकारने नाना साहबकी वृत्ति यह कहकर कि तुम्हारे पास बहुत धन है जब्त करली। सिताराने दत्तकपुत्रकी स्वीकृतिके लिये रंगू बापूजीको और नाना साहबने अजीम अल्लाखां नामक एक योग्य व्यक्तिको अपीलके लिये इंग्लैण्ड भेजा। लाखों रुपये व्यय कर दोनोंको निराश ही वापस आना पड़ा। अजीम अल्लाखां बड़ा शिक्षित और चतुर पुरुष था। वह लौटते समय टर्की, रूस आदिसे होता हुआ आया। उस समय अंग्रेजों और रूसमें युद्ध हो रहा था। अजीम अल्लाखांके लौटनेपर नाना साहबकी सलाहका परिणाम यह हुआ कि अवधका वजीर अली नकीखां, नाना साहब और दिल्लीका शाह अंग्रेजोंके विरुद्ध षड्यन्त्रमें सम्मिलित हो गये। सैकड़ों साधु, पण्डित और मीर मौलवी भेष बदलकर जहाँ तहाँ घूमकर व्याख्यान देने लगे। तमाशा करने वाले भी अपने तमाशोंमें लोगोंको नये परिवर्तनसे अवगत कराने लगे। कारतूसोंकी बातके पश्चात् तो उनके सैकड़ों प्रतिनिधि सब सेनाओंमें फिर गये। वे उन्हें सब अवस्थाओंसे सूचित करते और देशी अफसरोंसे मिलकर गुप्त कमेटियां बनानेको कहते रहे। संवत १९१४ का १० ज्येष्ठ (३१ मई १८५७ ई०) सर्वत्र उठनेके लिये निश्चित किया गया। लोगोंके भाव दृढ़ करनेके लिए सब साधन प्रयोगमें लाये गये। ग्राममें एक स्थानसे दूसरे स्थान रोटियाँ बांटी गयीं जिसका अर्थ लोगोंको गुप्त आन्दोलनका बताना था। नाना साहबने यात्राके बहाने दिल्ली, लखनऊ आदि बड़े बड़े नगरोंका स्वयं दौरा किया। सरकारी पुलिस और दूसरे नौकर भी कम्पनीके विरुद्ध मदद देनेको तैयार हो गये, दूसरे जमींदार और धनाढ्य भी उसमें मिल गये।

इधर यह तूफान मच रहा था उधर आंग्लसेनाके अफसरोंने उन्हीं कारतूसोंको जारी करनेकी भूल की। बारकपुरमें १९ और ३४ नम्बरकी दो पलटनें थीं। १९ नम्बरको कारतूसोंको काटनेकी आज्ञा हुई। पलटनने आज्ञाका पालन करना अस्वीकार किया। उस पलटनको हटा देनेका निर्णय हुआ।

जब यह आदेश सुनाया गया तो ३४ नम्बरमें भी हलचल मच गयी। नौकरी छोड़नेके लिए अभी दूसरे सोच ही रहे थे कि एक ब्राह्मण सैनिक मंगल पाण्डेने तलवार हाथमें लेकर कहा, "उठो भाइयो, समय आगया है।" यह कह उसने अकेले ही अपनी पलटनके तीन अंग्रेज अफसरोंका वध कर डाला।

सेनामें यह अग्नि प्रचंड रूप धारण ही कर रही थी कि चर्बीवाले कार्तूसोंकी बात प्रसिद्ध होनी आरम्भ हुई। पूर्व इसके कि इसका वर्णन किया जाय एक और बातका कथन कर देना आवश्यक है। सन् १९१० में ओरूस जाति क्रीमियाके साथ युद्धमें व्यग्र थी। आर्यावर्तमें चिरकालसे इस बातकी खबर थी कि अंग्रेजोंका रूसके साथ युद्ध होगा। अब भारतवर्षमें यह अफवाह फैलने लगी कि रूसने इङ्लैण्डको जीत लिया और राजमहिषी वहांसे भाग आयी हैं। उन लोगोंके लिये यह शुभअवसर था, जो किसी विधिसे अपना बदला लेना चाहते थे।

जब अंग्रेज़ी सरकारने अपनी आंग्लसेनाको क्रीमिया बुला भेजा तो यह कार्य अंग्रेजी सरकारकी निर्बलताका प्रमाण समझा गया। उसी समय अंग्रेज़ फ़ारससे युद्ध करनेके लिये तैयार हुए। फ़ारसके बादशाहने अंग्रेजोंको तंग करनेके लिये आने दूत दिल्लीके बादशाहके पास भेजे। उसने कहला भेजा कि सभी मुसलमानोंको परस्पर एकता करके अंग्रेजी शासकोंको एशियासे बाहर कर देना चाहिये। इस अभिप्रायका एक घोषणापत्र तय्यार किया गया जिसमें मुग़ल-राज्यके पुनरुत्थानकी चर्चा की गयी थी।

यह जनप्रवाद सर्वत्र फैलाया गया कि अब अंग्रेजोंको पलासीके युद्धके पश्चात् पूरे सौ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। एक सौ वर्षकी इनका राज्य-काल था। इस प्रकारकी बातोंका सर्वसाधारणके हृदयपर विचित्र प्रभाव होता है।

इन सब बातोंको सिंहासनच्युत राजा तथा नवाब बड़े ध्यानसे देख रहे थे। अंग्रेज़ोंको इनका कुछ भी ज्ञान न था। उस समय 'गुप्तचर विभाग' इतना सुव्यवस्थित भी न था। आर्यों और मुसलमान सैनिकोंको केवल धर्म सम्बन्धी बातें ही प्रभावित कर सकती थीं। राजा और नवाब या तो आर्य थे या मुसलमान। सैनिक लोग उन्हीं धर्मोंके अनुयायी थे। उन लोगोंने धर्मके नामपर अधीर करके सेनाको सरकारके विरुद्ध करना चाहा। कोई एक वर्ष तक पत्र व्यवहार होता रहा। नाना साहब और नवाब वज़ीरके प्रतिनिधि परस्पर मिलते रहे। इस पत्र-व्यवहारमें सेनाके देशी अफसर शामिल थे। अन्ततः पलासीकी तिथि सर्वत्र एक साथ उठनेके लिये निश्चित की गयी। इससे कुछ काल पहिले चर्बीवाले कार्तूसोंकी बात फैल चुकी थी। देशी पलटनोंके अन्दर पहलेहीसे एक प्रकारकी बन्दूक प्रचलित थी। अब एक नये किस्मकी बन्दूक प्रचलित करनेकी तजवीज़ हुई। इस बन्दूकके लिये जो कार्तूस बनाये गये उनमें पशुओंकी चर्बीका प्रयोग होता था। यह विचार प्रायः चारों ओर फैल गया कि यह चर्बी गौ और सूअरकी चर्बी है। दमदममें जो कलकत्तेसे आठ मीलकी दूरीपर है देशी सेना रहा करती थी। जनवरीमें एक खलासीने किसी ब्राह्मण सैनिकसे उसके पात्रका जल मांगा। ब्राह्मणने कहा कि मेरा पात्र अपवित्र हो जायेगा। उस सिपाहियोंने उसे बताया कि अब सब कुछ एक हो रहा है। कार्तूसोंमें गौ और सूअरकी चर्बी लगी है, सब आर्यों और मुसलमानोंको उन्हें दांतसे काटना पड़ेगा। ब्राह्मण और भंगी सब एक हो जायेंगे।

इस प्रकार अनेक कारण प्रस्तुत हो रहे थे। परन्तु इतना बड़ा आन्दोलन कदापि न होता यदि उसके पीछे किसी प्रकारका उत्तम संगठन न होता। भारत जैसे देशमें

सुरक्षित रखा प्रत्युत सारे भारतमें अपना राज्य बचा लिया। मेरठका समाचार सुनते ही उन्होंने बड़ी निपुणतासे मियांमीर और पंजाबकी समस्त पलटनोंसे शस्त्र ले लिये, लाहौर दुर्गसे देशी सिपाहियोंको निकालकर अंग्रेजी सिपाही प्रविष्ट कर दिये। इसका परिणाम यह हुआ कि पंजाबकी पलटनें शान्त बैठी रहीं और लारेन्सने पंजाबी पलटनको दिल्ली भेज दिया। उस समय प्रायः समस्त भारतीय पलटनें सिपाहीदलमें सम्मिलित हो चुकी थीं। अतः केवल जालन्धर और फिरोजपुरकी पलटनें दिल्ली भेजी गयीं। पेशावरकी पलटनसे शस्त्र ले लिये गये। होतीमरदानके ५५ नम्बरके सैनिकोंने हथियार देनेसे इन्कार किया। जब निकलसन आंग्लसेना लेकर उनके पीछे गया तो वह लड़ते मरते चले गये, बहुतेरे सीमा प्रदेशमें भाग गये। कितनेही काश्मीर रियासतमें प्राण-रक्षाके लिये गये, पर वहां राजाज्ञासे या तो क़त्ल किये गये या बाहर निकलवा दिये गये। उनमेंसे एक सहस्रके लग भग तोपोंके मुंहपर बांधे गये। इस प्रकार पंजाबका कंटक दूर हो जानेपर अंग्रेजी सेनाको दिल्ली भेजना सरल था।

पंजाबके अन्दर इस तूफानको रोकना इस कारण भी सुगम था कि पंजाब अभी कुछ ही वर्ष पूर्व अपना बल अंग्रेजोंके साथ आजमा चुका था। इतने शीघ्र फिर पंजाबके लोग अंग्रेजोंके साथ युद्ध करनेका साहस न करते थे। यदि कुछ विशेष चुने हुए मनुष्य आंग्ल-राज्यके विरोधी भी थे तो वे उस समय कूका-आन्दोलनमें सम्मिलित होगये थे, जो अभी गत दो वर्षसे आरम्भ हुआ था।

पंजाबके अतिरिक्त राजपूताना, बम्बई और मद्रासका भी इस आन्दोलनमें क्रिया रूपमें कोई भाग न था। दिल्ली, कानपूर और लखनऊ इस विद्रोहके तीन बड़े केन्द्र थे। ज्येष्ठ मासमें (मईके अन्त और जूनके आरम्भमें) ये नगर एक दूसरेके पश्चात् उठते गये।

विद्रोहके तीन बड़े केन्द्र

एक ब्राह्मण सिपाही अलीगढ़ सेनामें सरकारके विरुद्ध व्याख्यान देता हुआ पकड़ा गया। उसे सारी रजिमेण्टके सामने फांसी दी गयी। इसका परिणाम प्रभाव और भय न होकर प्रतिकूल ही हुआ। सारा नगर अंग्रेजोंके विरुद्ध उठ खड़ा हुआ। इसके अनन्तर इटावा और नसीराबादमें भी यही वायु चली। रुहेलखण्डमें बरेली बड़ा भारी सैन्य-स्थान (छावनी) था। सरदार खां बहादुर रुहेले नियाज़ अली रहमतकी सन्तानसे था। उसपर अंग्रेजी सरकारका बड़ा विश्वास था। जब उसे दिल्लीके बादशाहकी ओरसे सन्देशा पहुंचा तो उसके साथ सारा नगर उठ खड़ा हुआ। सब अंग्रेज नैनीतालकी ओर भाग गये। सूबेदार बख्तखां सेनापति बनाया गया और खांबहादुर बादशाहकी ओरसे रुहेलखण्डका सूबेदार स्वीकार किया गया।

बरेली केन्द्र

बरेलीके पश्चात् शाहजहांपुर, मुरादाबाद और बदायूं सभी विद्रोही

३५

स्थानोंका अनुकरण किया। सिपाही, पुलिस और जनताने मिलकर रुहेलखण्डको स्वतन्त्र कर लिया। बनारस और इलाहाबादमें भारतीय पल्टनोंके अतिरिक्त सिक्खोंकी रेजिमेन्टें भी विद्यमान थीं। १ ज्येष्ठ (३१ मई) को बनारसके बारिकोंमें आग लगा दी गयी। २० ज्येष्ठ (३ जून) को आज़मगढ़में नक़ारा बजाकर सिपाही लोग उठ खड़े हुए। उन्होंने किसी अंग्रेज़को कष्ट न दिया बल्कि गाड़ियोंमें बिठाकर उन्हें बनारस भेज दिया। उसी समय जनरल नील कुछ आंग्लसेना लेकर बनारस पहुंच गया था। उसने सैनिकोंसे शस्त्र लेनेकी तजवीज़ की। सैनिक सामना करनेके लिये उद्यत हो गये। सिक्खसेना अंग्रेज़ोंके साथ हो गयी। अतएव बनारस भी पजाब सदृश दबा दिया गया। अंग्रेज़ सेनापतिने सहस्रों देशी अबलाओं तथा मनुष्यों का वध कर दिया और फांसी दी। इलाहाबादमें लोगोंने उठकर जेल, रेल, तार और बैंक तोड़ दिये। लयाक़तअली नामक एक व्यक्ति उनका नेता था। वह प्रति दिन दिल्ली बादशाहके पास रिपोर्ट भेजा करता था। जनरल नील २८ ज्येष्ठ (११ जून) को इलाहाबाद पहुंचा। दुर्ग अभी सिक्खोंके कारण सुरक्षित था। लयाक़तअली अपने साथियोंको लेकर कानपुर चला गया।

संयुक्त प्रान्तमें विद्रोहका प्रसार

विद्रोहियोंका सद्व्यवहार

जनरल नीलका रक्तपात तथा हत्याका कार्य बनारससे भी बढ़ गया, यद्यपि कानपुरमें भी अंग्रेज़ महिलाओं और बच्चोंके वधकी घटना अत्यन्त शोचनीय है। इसका बहुत कुछ उत्तरदायित्व जनरल नीलके ही सिरपर है।

जनरल नीलका उत्तरदायित्व

कानपुर विद्रोहका केन्द्रस्थान था। आश्चर्यकी बात है कि जब नाना साहब अपने भाइयों और तांतियाटोपी सहित इस सारे आन्दोलनके उपाय सोचता था तब भी अंग्रेज़ अफ़सर उसे अपना शुभचिन्तक ही समझ रहे थे।

जब कानपुरके सेनाध्यक्ष सर ह्यू वेलरको कानपुरमें प्रजाक्षोभका भय हुआ तो उसने नाना साहबसे रक्षाके लिये प्रार्थना की। नाना साहबने वहां अपने सैनिक कोषके चारों ओर एकत्र कर दिये। साथही उसने लखनऊसे थोड़ी आंग्लसेना मंगायी और दुर्गमें भोजनकी सामग्री एकत्र करा ली। नगरके लोग—आर्य, मुसलमान और सिपाही—बड़े बड़े कुञ्जोंमें एकत्र होते थे। उत्तेजनाका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि वेश्याएँ भी जो नाचनेका काम करती थीं सम्मिलित होकर सिपाहियोंको उत्तेजित करती थीं। १० ज्येष्ठ (२४ मई) को ईदका दिन था। सर ह्यू के विचारमें प्रजाविक्षोभ अनिवार्य था किन्तु वह दिन शान्तिसे व्यतीत हो गया। कानपुरमें २२ ज्येष्ठ (५ जून) को सेनाने विद्रोह कर दिया। तीन सहस्र सैनिक उठे और नाना साहबके कैम्पमें जा पहुंचे।

कानपुरमें विद्रोह

सिपाहियोंने नाना साहबको अपना बादशाह अंगीकार कर लिया। सूबेदार

सिक्खसिंह सेनाका जनरल नियत किया गया। अब नाना साहबने मिस्टर ह्यू को लिख भेजा कि दूसरे दिन तुमपर आक्रमण होगा। दुर्गपर आक्रमण हुआ। अंग्रेजोंने जहां तक हो सका सामना किया, परन्तु कहां विश्रामसे रहना, कहां इतनी कड़ी गरमी और तोपके गोलोंका प्रतिक्षण भय?

नाना साहबका नेतृत्व

इधर लोगोंका उत्साह बढ़ गया। ग्रामके लोग भी नानासाहबके झण्डेके नीचे एकत्र होने लगे। स्त्रियां अपने हाथोंसे सिपाहियोंको जल तथा दूध पहुंचाती थीं। जब सिपाही थक जाते थे तो हट जाते थे। ऐसा कई दिन होता रहा। नाना साहबने लोगोंकी सम्मतिके अनुसार नगरके प्रबन्धके लिये अध्यक्ष और न्यायाधीश स्थिर कर दिये। ११ आषाढ़ (२५ जून) को सर्वथा निराश होकर सर ह्यू ने सन्धिसूचक झंडा दिखलाया। अंतमें निश्चय हुआ कि अंग्रेज दुर्ग और सर्वसामग्री नाना साहबके अधिकारमें दे दें और सब अंग्रेज इलाहाबाद पहुंचा दिये जायं। १३ आषाढ़ (२७ जून) को अंग्रेज नावोंमें सवार होकर इलाहाबाद जानेवाले थे। घाटपर सहस्रों लाखों पुरुष एकत्र थे। नाना साहबकी सेना भी वहां विद्यमान थी। इस जनसमूहमें बनारस और इलाहाबादके जिलोंसे नाना साहबका नाम सुनकर सैकड़ों पुरुष कानपुरमें आये थे। ये वे लोग थे जिनके सम्बन्धियों, बालकों या स्त्रियोंको सेनापति नीलकी आज्ञासे फांसी दी गयी थी।

अंग्रेजोंको ले जानेके लिये विशेष नौकायें तैयार की गयी थीं। उनमें भोजन आदिकी सामग्री भी रखी गयी थी। अंग्रेज स्त्रियां और बच्चे पालकियोंमें बिठाकर वहां लाये गये। जब वे नावोंमें बैठे तो सहसा जनसमूहसे 'मारो फिरंगीको' के शब्दके साथ गोलियोंकी वर्षा होने लगी। कितने ही अंग्रेज मारे गये। कितने ही नदीमें कूद पड़े और डूबकर मर गये। नाना साहब अपने भवनमें था। जब उसे यह समाचार मिला तो उसने तत्काल अश्वारोहियोंको भेजा कि अबलाओं तथा बच्चोंको कोई हानि न पहुंचे। इस आज्ञाके पहुंचनेपर १२५ अबलायें और बच्चे जलमेंसे बचा लिये गये और वे एक प्रकारकी नजरबन्दीमें रखे गये।

जन समूहकी उत्तेजना

इसी प्रकार २१ ज्येष्ठ (४ जून) को सेना झांसीमें उठी। लक्ष्मीबाईको रानी स्वीकार कर लिया और दुर्गपर अधिकार करके सौसे अधिक अंग्रेजोंको कैद कर यह निर्णय सुनाया गया कि इनका झांसीमें कोई अधिकार न था इसलिये सबका सिर शरीरसे पृथक् किया जाय।

झांसीकी रानी लक्ष्मीबाई

नवाब अवधको सिंहासनसे उतारनेके कारण लखनऊके लोग बहुत असन्तुष्ट थे। सर हेनरी लारेन्स जो अवधका चीफ कमिश्नर बनाया गया था बड़ा सज्जन था। उसने लोगोंको प्रसन्न करनेका हर प्रकारसे यत्न किया पर उनमें असन्तोष बढ़ता ही गया। मौलवी अहमदशाह नामक एक बड़े नेताको पकड़कर फांसीकी आज्ञा दी गयी। दिल्लीके समाचार आनेके पश्चात् सर हेनरी लारेन्सने आत्म-

ज्यों ज्यों काल व्यतीत होता गया सिपाही एक दूसरेपर दोषारोपण करने लगे। उन्होंने नगरके धनाढ्य पुरुषोंको लूटना भी प्रारम्भ कर दिया। नीमचकी सेना बख़्तख़ाँकी आज्ञा न मानकर एक ग्राममें चली गयी। इसपर ९ भाद्रपद (२५ अगस्त) को निकलसन सेना लेकर उसपर आ पड़ा। देशी सैनिक बड़ी वीरतासे लड़े पर सब कटकर मर गये। इस विजयसे आंग्ल सेनाका दिल और बढ़ गया, इधर देशी सिपाहियोंमें अशान्ति फैल गयी। अब आंग्लसेनाने चार भागोंमें दिल्लीपर आक्रमण करनेका उपाय किया।

दिल्लीपर आक्रमण

२९ भाद्रपद (१४ सितम्बर) को यह धावा हुआ। सिपाही लोग बहुत वीरतासे लड़े। कितने अंग्रेज़ अफ़सर मारे गये। केवल एक चौथाई दिल्ली उनके अधिकारमें आया। निकलसन ज़ख़्मी होकर अस्पतालमें पड़ा था। प्रधानसेनापति इतना भयभीत हुआ कि उसने घेरा उठा लेना चाहा। जब निकलसनको यह बात ज्ञात हुई तो उस वीर सिपाहीने कहा "ख़बरदार पीछे न हटना। मेरे अन्दर अभी शक्ति है कि मैं विलसनको जाकर गोलीसे मार दूं।" ऐसे समयमें अफ़सरोंकी कौंसिल हुई। अन्ततः यही निश्चय हुआ कि दिल्लीपर अवश्य अधिकार करना चाहिये। दूसरी ओर सिपाहियोंमें दो दल हो गये। कुछ तो दिल्लीको छोड़ना चाहते थे और कुछ इसके विरुद्ध थे। उनमें बहुसम्मतिका भी नियम न था। ऐसी दशामें आधे सिपाही दिल्ली छोड़कर चले गये। शेष सिपाहियोंने ३० भाद्रपदसे ८ आश्विन (१५ से २४ सितम्बर) तक भीषण प्रतिरोध किया। तब तक केवल तीन चौथाई नगर अंग्रेज़ोंके हाथ आया। बख़्तख़ाँने बादशाहसे प्रार्थना की कि यद्यपि दिल्ली हाथसे जा रहा है फिर भी हम बाहर निकलकर शत्रुका सामना कर सकते हैं, आप साथ चलें। वृद्ध बादशाह घबरा गया। उसने यह उपदेश स्वीकार न किया प्रत्युत इलाही बख़्श नामक एक व्यक्तिका कहना मानकर उसने अपने आपको आंग्लसेनाके अर्पण कर दिया। यह इलाही बख़्श आंग्लसेनासे मिला हुआ था। बादशाहको केवल प्राणरक्षाका वचन दिया गया। इलाही बख़्शने बादशाहके दो पुत्रों और एक पौत्रको पकड़वा दिया। हॉडसनने तीनोंको गोलीसे उड़ा दिया। दिल्लीमें इतनी लूट मार हुई कि नादिरशाहकी लूट भी इसके सामने मात हो गयी। दिल्लीके भाग्यमें सदासे यही लिखा चला आता है।

बादशाहका आत्म-समर्पण

इलाहाबादका दुर्ग सिक्ख सेनाकी सहायतासे अंग्रेज़ोंके हाथ आगयी, कुछ दिन पश्चात् लार्ड कैनिङ्ग स्वयं कलकत्तेसे इलाहाबाद आगया। भाग्यवश फ़ारसके साथ युद्ध समाप्त होगया था। वहाँकी सेना जनरल हैवलाकके अधीन लौटकर इलाहाबाद आ पहुंची। अब यह सारी सेना कानपुरकी ओर चली। इसने पुर्व सारा फतहपुर अनेक निवासियों सहित जला दिया गया। नानासाहब यह समाचार सुनकर स्वयं प्रतिरोधार्थ तैयार हुआ। उस समय कुछ गुप्तचर भी पकड़े गये जो

अंग्रेज़ स्त्रियोंकी ओरसे पत्र लेकर आरहे थे। उनका वध कर दिया गया। साथ ही यह भी निश्चय हुआ कि उन अंग्रेज़ स्त्रियोंका भी वध कर दिया जाय। कानपुरहुर ही वह स्थान है जहांपर यह नृशंस कार्य किया गया।

१ श्रावण (१७ जुलाई) को हैवलाक कानपुर पहुंचा। यद्यपि नाना साहबकी सेना बड़ी वीरता और निर्भयतासे लड़ी तथापि क्षेत्र अंग्रेज़ोंके हाथ रहा। कानपुरपर अंग्रेज़ोंका अधिकार होगया। नाना साहब अपना कोष आदि लेकर भाग गया। कानपुरमें अगणित पुरुष फांसीपर लटका दिये गये। जनरल नील भी सेना लेकर कानपुर आ-पहुंचा। हैवलाकने नीलको कानपुरमें छोड़कर स्वयं लखनऊकी ओर बढ़नेका विचार किया।

कानपुरपर अंग्रेज़ोंका अधिकार

लखनऊमें नवाब वाजिद अलीका पुत्र सिंहासनपर बैठाया गया। वह अभी बच्चा था अतएव उसकी माता उसकी संरक्षिका बनायी गयी। ऐसा प्रतीत होता है कि लखनऊमें उस समय कोई योग्य पुरुष न था जो सिपाहियोंको अपने वशमें रख सकता। फिर भी कुछ सिपाहियोंने रेज़िडेन्सीपर आक्रमण कर दिया पर कोई व्यवस्था न होनेके कारण उन्हें लौटना पड़ा। इसके उपरान्त सिपाहियोंने अनेक बार डाइनामाइटसे रेज़िडेन्सीको उड़ानेका यत्न किया किन्तु पूर्ण सफलता न हुई। सर हेनरी लारेन्स मारा गया। उसके स्थानपर मेजर बैंक नियत हुआ। इसके मर जानेपर इंग्लिसकी नियुक्ति हुई। आंग्लसेना इतनी व्यवस्थित थी कि सेनापतिका मर जाना भी कोई बात न थी। उनकी सफलताका यही रहस्य था। आंग्लसेनाको, ठीक निराशाकी दशामें, जनरल हैवलाकके आगमनकी सूचना मिली, पर हैवलाकको असफल होकर कानपुर लौटना पड़ा। मार्गमें एक ग्रामके लोग उठ खड़े हुए और उन्होंने उसका मार्ग सर्वथा रोक दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि अवधके ठाकुर और भूमिहारोंने इसे अंग्रेज़ोंकी पराजय समझकर लखनऊ दरबारकी अधीनता स्वीकार कर ली।

अन्तिम सफलताका रहस्य

हैवलाक १ भाद्रपद (१७ अगस्त) को नाना साहबकी सेनासे युद्ध करनेके लिये गया। बड़ी कठिनतासे उसने उसे परास्त किया। उसने कलकत्ते लिख भेजा कि बिना और सहायताके मैं कुछ न कर सकूंगा।

४ आश्विन (२० सितम्बर) को हैवलाकने सेना लेकर प्रस्थान किया, और मार्गमें जहां कहीं किसी भूमिहारने सामना किया उसका वध करता हुआ, ग्रामोंको जलाता लखनऊके पास आ पहुंचा। आलमबागमें घुलघर तुमुल युद्ध हुआ। संग्राममें जनरल नील मारा गया। सिपाहियोंने हैवलाककी सेनाको भी घेर लिया। अब सब ओरसे सेनायें लखनऊको चलीं। नया सेनाध्यक्ष कैम्बेल भी कलकत्तेसे लखनऊ पहुंच गया। चार दिन निरन्तर भयंकर रक्तपातके पश्चात् मैदान अंग्रेज़ोंके हाथ रहा। ठीक विजयके समय जनरल हैवेलाक ज्वरग्रस्त हो कर मर गया।

लखनऊ विजय

इतनी बड़ी विजयके पश्चात् भी लखनऊ नगरका लेना अभी शेष था। कानपुरमें एक और बड़ा भारी शत्रु उत्पन्न हो गया। वह नाना साहबका कुर्क तांतिया-टोपी था। तांतिया टोपीने कानपुरकी पराजयके उपरान्त युद्धसम्बन्धी उपाय सोचनेमें इतनी योग्यता दिखायी कि नाना साहबने उसे सेनाध्यक्ष बना दिया। जब

तांतिया टोपी

दूसरी बार कानपुरमें पराजय हुई तो तांतिया टोपी ग्वालियर पहुँचा। उसने वहांकी सेनाको अपने साथ कर लिया, फिर दूसरे सैनिकोंको एकत्र करके उसने काल्पीके दुर्गपर अधिकार कर लिया। कानपुरमें आंग्लसेनाका सेनापति वण्डाम था। तांतियाने उसे परास्त कर कानपुरको वशमें कर लिया। सेनाध्यक्ष, कैम्पबैल कानपुर पहुँचा। दो दिन तांतिया कैम्पबैलके सामने डटा रहा।

२० मार्गशीर्ष (६ दिसम्बर) को तांतियाकी सेना पराजित हुई। इसके उपरान्त कैम्पबैलने अलीगढ़, इटावा, फर्रुखाबाद और अयोध्याको विजित किया। इसमें जंगबहादुरकी नेपाली सेनाने बड़ी वीरतासे अंग्रेज़ी सरकारकी सहायता की। सेनाके भिन्न भिन्न भाग अब लखनऊ आ पहुँचे।

लखनऊ नगरके अन्दर एक ही नेता काम करनेवाला था और वह फैजाबादका मौलवी अहमदशाह था। जब २ माघ (१५ जनवरी) को सूचना आयी कि आंग्लसेना कानपुरसे चल चुकी है तो उसने कौंसिल (सभा) की। मौलवी अहमदशाह भिन्न भिन्न सम्मतियोंके कारण कुछ निर्णय न हुआ। उसने अकेले ही अपने आदमी लेकर युद्ध आरम्भ कर दिया। वह ज़ख्मी हो गया और बड़ी चतुरता तथा वीरतासे उसके सिपाही उसे उठा लाये। थोड़े दिन पश्चात् स्वस्थ हो कर वह पुनः क्षेत्रमें आया। वह कहता था, 'यत्न करना कर्तव्य है, परिस्थिति चाहे कैसी ही हो'। अन्ततः कैम्पबैलकी सेना लौट आयी। अहमद शाहने फिर रहे सहे मनुष्योंको एकत्र करके नगरपर धावा किया। आंग्ल-सेनाने उनका सामना किया। जब उनमेंसे अनेक मारे गये तो मौलवीने भाग कर अपने प्राण बचाये।

लखनऊमें भी दिल्लीके सदृश लूट मार हुई। सहस्रों जन फांसीपर चढ़े। बेगमोंका वध हुआ। मौलवी भाग कर रुहेलखण्ड जा पहुँचा। उसके सैनिक अंग्रेज़ी सेनाकी तोपों और कवायदबन्दीके सामने न ठहर सके। इसलिये युद्ध आरम्भ न कर उसने गरिला युद्ध-प्रणाली शुरू की। यहां यह भी कह देना आवश्यक है कि एक छोटेसे रईस नरपतसिंहने भी आंग्ल सेनाका सामना किया। युद्धमें जनरल होप मारा गया। जब सफलता न हुई तो नरपतसिंह अपने सिपाही लेकर भाग गया।

आंग्लसेना शाहजहांपुरको जा रही थी क्योंकि मौलवी अहमदशाह और नाना साहब वहां विद्यमान थे। परन्तु जब सेना समीप पहुँची तो दोनों नेता दुर्ग-विध्वंस कर बरेली चले गये। बरेलीमें अभी खानबहादुरखां राज्य करता था। आंग्लसेना बरेलीकी ओर बढ़ी। उसने जाकर नगरको घेर लिया। वहांके मनुष्य गाज़ी बननेपर तैयार हो गये और प्रत्येकने तोपोंके सामने दौड़ दौड़कर

रह छिपे। एक गाज़ी मुर्देके समान पड़ा था कि सेनाध्यक्ष कैम्पबेल उसके पाससे गुज़रे। इसने झपटकर कैम्पबेलपर आक्रमण किया, परन्तु एक सिक्ख साथ था जिसने गाज़ीका सिर काट डाला। २४ बैसाख (५ मई) को खां बहादुर खां और सब नेता बरेलीसे निकल गये। जब अंग्रेज़ोंकी सेना बरेलीमें प्रविष्ट हुई तो मौलवीने शाहजहांपुरपर अधिकार कर लिया। वहां थोड़ी आंग्लसेना पड़ी थी, उसने उसे व्याकुल कर दिया। शेष सेना भी वहां पहुंच गयी और उन्होंने सब ओरसे सिपाहियोंकी सेना एकत्र कर ली। आंग्लसेना युद्ध करनेके लिये भेजी गयी, मौलवी उसका सामना करता हुआ अवधमें जा निकला। उस समय उसने पुवांके भूमिहार जगन्नाथ सिंहसे सहायता मांगी। उसने मौलवीको बुला भेजा और धोखेसे उसका सिर काटकर आंग्लसेनामें पहुंचा दिया। इसके बदले उसे पचास सहस्र रुपया पारितोषिक मिला। लखनऊ अधीन होनेपर एक प्रकारसे इस हलचलकी समाप्ति हो गयी; पर अंग्रेजी सरकारको एक वर्षसे अधिक तांतियाटोपे आदि नेताओंको दबानेमें लगा।

(रेलीमें घेरा)

बिहार भी इस हलचलसे शून्य न था। सिपाहियोंकी सेना दानापुरमें थी पर बड़ा नगर पटना था। वहांके लोगोंमें भी आन्दोलनकी चर्चा बढ़ गयी। कमिश्नर टेलरने बड़ी योग्यतासे पटनेको आरम्भमें ही दबा देना चाहा। पुलिसके एक जमादार वारिस अलीको पकड़कर फांसी दे दी, और कतिपय भले आदमियोंको निमंत्रणमें बुलाकर इनमेंसे तीन मौलवियोंको पकड़ लिया। इसका फल यह हुआ कि पीर अली नामक एक पुस्तक-विक्रेताने झंडा खड़ा करके गिर्जाको जला दिया। सिक्खोंकी सेना तत्काल वहां उपस्थित हो गयी और उसने सब कोलाहल शान्त कर दिया। पीर अलीको फांसी दी गयी। दानापुरके लोगोंने जगदीशपुरके रईस कुंवर सिंहको अपना नेता बना लिया, और आराको जा घेरा। वहां दुर्गमें थोड़ीसी अंग्रेज़ी और सिक्ख सेना थी। जब पानीका अभाव हो गया तो सिक्खोंने २१ घण्टेके भीतर नया कुआं खोद दिया। १२ श्रावण (२८ जुलाई) को आंग्लसेना दानापुर पहुंची। सिपाही उसपर टूट पड़े और उन्होंने सबको मार दिया। बीबीगंजमें तुमुल युद्ध हुआ। कुंवरसिंह परास्त होकर भाग गया। आंग्लसेनाने जगदीशपुरका विध्वंस कर दिया। जब सेना लखनऊ जा रही थी तो कुंवर सिंह अपने सिपाही लेकर उसकी ओर चल पड़ा। अतरौलियाके स्थानपर मिलमैन उसके प्रतिकूल भेजा गया। कुंवरसिंह पीछे हट गया। आज़मगढ़में उसे और आंग्लसेना मिली। यहां कुंवरसिंहने १४ चैत्र (२८ मार्च) को इसे बुरी तरह कर्नल डेम्सको पराजित किया और स्वयं बनारसकी ओर चल पड़ा। जब आंग्लसेना सब ओरसे आकर मिल आ पहुंची तो कुंवरसिंहने लौटते हुए जगदीशपुरकी ओर प्रस्थान किया। अंग्रेज़ी सेना उसका पीछा कर रही थी। भागीरथी नदीसे उसके सिपाही पार हो रहे थे। उसी समय कुंवरसिंहकी कलाईपर एक गोली लगी। उसने अपनी तलवारसे यह हाथ काटकर गंगामें डाल

(बिहारमें हलचल)

दिया और स्वयं अपने साथियों सहित ५ वैशाख (२२ अप्रैल) को जगदीशपुरमें प्रविष्ट हुआ। अंग्रेज़ी सेना दूसरे दिन सामना करनेके लिये आ पहुंची। यद्यपि कुँवरसिंहके सिपाही थोड़े रह गये थे और वे थे भी थके मांदे, फिर भी वे इस वीरतासे लड़े कि आंग्लसेनाके पांव उखड़ गये। कुंवरसिंहके सिपाहियोंने पीछा करके सबको काट डाला। सेनापति ग्रान्ट भी मारा गया। इस बड़ी विजयके पश्चात् कुंवरसिंह अपने पुराने सिंहासनपर राज-धमसे बैठा। हाथका ज़ख्म बड़ा खराब तथा विषैला सिद्ध हुआ। ११ वैशाख (२९ अप्रैल) को कुंवरसिंहने परलोक गमन किया।

सारे सैन्यविप्लवमें एक भी ऐसा आदमी नहीं था जो वीरता और समरनीतिमें कुंवरसिंहके तुल्य कहा जा सके। कुंवरसिंहके मरनेपर उसका छोटा भाई अमरसिंह भी बड़ी वीरतासे सामना करता रहा, पर अन्तमें निराश होकर कहीं चला गया।

जगदीशपुरके बाद झांसीका क्रम आता है। यहां लक्ष्मीबाई रानी स्वीकृत हो चुकी थी। वह बड़ी योग्य और नीतिनिपुण स्त्री थी। उसने निश्चय कर लिया था कि जबतक मैं जीवित हूं झांसी नहीं दूंगी। सर ह्यू रोज़ झांसीको झांसीपर अधिकार ओर भेजा गया। उसके साथ आंग्लसेनाके अतिरिक्त मद्रास, बम्बई, हैदराबाद और भोपालकी देशी सेना भी थी। यह सेना ६ चैत्र (२० मार्च,) को झांसीके निकट पहुंची। मार्गमें इसे बड़ा कष्ट हुआ क्योंकि रानीकी आज्ञासे रसद आदिके सब पदार्थ नष्ट कर दिये गये थे। मार्गमें कहीं वृक्षका पत्तातक दिखायी न देता था। परन्तु सिन्धिया, और ओरछेके राजाने मार्गकी सब सामग्री प्रस्तुत कर दी। सैनिक, निकटस्थ भूमिहार और ताल्लुकेदार, झांसीमें एकत्र होकर सामना करनेके लिए तैयार हो गये। आंग्लसेनाने १० चैत्र (२४ मार्च) से दुर्गपर गोलाबारी आरम्भ की। रानी स्वयं इधर उधर जाती और सैनिकोंका उत्साह बढ़ाती थी। अन्तमें १७ चैत्र (३१ मार्च) को आंग्लसेना दुर्गमें प्रविष्ट हो गयी। नगरमें सर्वसाधारणका वध हुआ। सारा नगर उजड़ गया। इस दुःखके समयमें तांतिया टोपी अपने सिपाही लिये झांसी आ पहुंचा पर उसके सिपाहियोंने बड़ी कायरता दिखायी। रानीने जब झांसीकी यह दशा देखी तो उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह चली। अन्तमें रानिको सब सरदारों की सम्मतिसे चुने हुए सवार ले हाथीपर चढ़कर वह वहांसे निकल काल्पीकी ओर चली। आंग्लसेनापतिने उसका पीछा किया। ज्यों ही वह रानीके सामने आया रानीने तलवारसे वार किया, वह ज़ख्मी होकर भूमिपर गिर पड़ा। भल्लयुद्धके पश्चात् रानी निकल गयी और रात्रिको काल्पीमें जा पहुंची। उसका घोड़ा सौ मीलसे अधिक दौड़ता आया था। पहुंचते ही भूमिपर गिर पड़ा और मर गया। यहांपर रानी और तांतिया टोपीने पुन: युद्धकी तैयारी की। आंग्लसेनाका एक और भाग बुन्देलखण्डकी ओर भेजा गया था। उसने बान्दाके नवाबको पराजित किया। यह नवाब भी भागकर काल्पी आ गया।

ह्यूरोज़ सेना लेकर आया। उसने तांतिया टोपीको पराजित किया। तांतियाटोपी दरबार मतभेदके कारण चला गया। यमुनाके तटपर झांसीकी रानीने युद्धवस्त्र पहने, अंग्रेज़सैनिकोंको परास्त किया। अगले दिन सेना को एकत्र कर ह्यूरोज़ फिर आ गया। इस बार उसने काल्पीपर अधिकार कर लिया परन्तु, रावसाहब, बान्दाका नवाब और रानी तथा उनके सब साथी वहांसे निकल गये। तांतिया ग्वालियरसे कुछ सेना एकत्र करके गोपालपुरमें इनसे आ मिला। अब सब ग्वालियरको चल पड़े। वहां सिन्धिया अपनी तोपें लेकर इनके विरुद्ध आया। रानी रसाला लेकर उनपर टूट पड़ी और उसने उसकी सेनाको भगा दिया। सिन्धिया वहांसे भागकर आगरा पहुंचा। ग्वालियरके सब लोग, सरदार और ठाकुर पेशवाकी ओर आ गये। इस प्रकार तांतियाने स्वतन्त्रता-संग्रामका एक और बड़ा केन्द्र-स्थान बना लिया। उधरसे ह्यूरोज़ सिन्धियाको साथ लिये अपनी सेनाके साथ ग्वालियर आ पहुंचा। तांतियाटोपी आगे बढ़ा। रानी अपने युद्धवस्त्र धारणकर सामना करनेके लिये तैयार हो गयी। उसकी सहायिका दो और सखियां मन्दिरा और काना थीं। इनके मोक़ाबलेपर जनरल स्मिथ था। जब वह आक्रमण करता तब रानी बड़ी वीरतासे उसका उत्तर देती। इस प्रकार ३ आषाढ़ (१७ जून) को स्मिथको पीछे हटना पड़ा। ४ आषाढ़ (१८ जून) को फिर उसने आक्रमण किया। रानी भी तय्यार थी, किन्तु उसके पीछेसे ह्यूरोज़की सेना आ रही थी। रानी अपने कतिपय सवार लेकर अंग्रेज़सेनामेंसे निकल भागी। एक अंग्रेज़ सिपाहीने उसकी सखीको मार डाला। वह रानीके हाथसे मारा गया। रानी निकली जा रही थी, अंग्रेज़ सिपाही पीछा कर रहे थे। मार्गमें एक नाला पड़ा। घोड़ा नया था, वहीं अड़ गया। इतनेमें अंग्रेज़ सैनिक आ पहुंचे। रानीने तलवारसे सामना किया किन्तु पीछेसे एक तलवार उसके सिरपर लगी। रक्तसे भरी हुई वह नीचे गिर पड़ी। एक नौकर उसे उठाकर पासकी कुटियामें ले गया। वहांपर बाबा गंगादास द्वारा मुंहमें जल डाले जानेपर उसकी आत्माने इस नश्वर शरीरको छोड़ दिया। रानीका शरीर उसके कथनानुसार शीघ्र ही जला दिया गया। इस प्रकार यह वीर स्त्री २३ वर्षकी आयुमें अपने जीवनमें एक चमत्कार दिखा गयी। कोल्हापुर, जबलपुर इत्यादिमें भी शोर हुआ पर शीघ्र ही दबा दिया गया। निज़ामकी मैत्रीने हैदराबादको सर्वथा सुरक्षित रखा।

रानी लक्ष्मी बाईकी [illegible]

दिया और स्वयं अपने साथियों सहित ९ वैशाख (२२ अप्रैल) को जगदीशपुरमें प्रविष्ट हुआ। अंग्रेज़ी सेना दूसरे दिन सामना करनेके लिये आ पहुंची। यद्यपि कुँवरसिंहके सिपाही थोड़े रह गये थे और ये थे भी थके मांदे, फिर भी वे इस वीरतासे लड़े कि गोराखेनाके पांव उखड़ गये। कुंवरसिंहके सिपाहियोंने पीछा करके सबको काट डाला। सेनापति मार्ग्ड भी मारा गया। इस बड़ी विजयके पश्चात् कुंवरसिंह अपने पुराने सिंहासनपर सज-धजसे बैठा। हाथका घाव बड़ा खराब तथा विषैला सिद्ध हुआ। ११ वैशाख (२१ अप्रैल) को कुंवरसिंहने परलोक गमन किया।

सारे सैन्यविप्लवमें एक भी ऐसा आदमी नहीं था जो वीरता और समरनीतिमें कुंवरसिंहके तुल्य कहा जा सके। कुंवरसिंहके मरनेपर उसका छोटा भाई अमरसिंह भी बड़ी वीरतासे सामना करता रहा, पर अन्तमें निराश होकर कहीं चला गया।

जगदीशपुरके बाद झांसीका क्रम आता है। यहां लक्ष्मीबाई रानी स्वाधीन हो चुकी थी। वह बड़ी योग्य और नीतिनिपुण स्त्री थी। उसने निश्चय कर लिया था कि जबतक मैं जीवित हूं झांसी नहीं दूंगी। सर ह्यू रोज़ झांसीको [illegible] अधिकार और भेजा गया। उसके साथ गोराखेनाके अतिरिक्त मद्रास, बम्बई, हैदराबाद और भोपालकी देशी सेना भी थी। यह सेना ९ चैत्र (२० मार्च,) को झांसीके निकट पहुंची। मार्गमें इसे बड़ा कष्ट हुआ क्योंकि रानीकी आज्ञासे रसद आदिके सब पदार्थ नष्ट कर दिये गये थे। मार्गमें कहीं तृणका पत्तातक दिखायी न देता था। परन्तु सिन्धिया, और धारांके राजाने मार्गकी सब सामग्री प्रस्तुत कर दी। सैनिक, निरुद्यम भूमिहार और ताल्लुकेदार, झांसीमें एकत्र होकर सामना करनेके लिए तैयार हो गये। गोराखेनाने १० चैत्र (२४ मार्च) से दुर्गपर गोलाबारी आरम्भ की। रानी स्वयं इधर उधर जाती और सैनिकोंका उत्साह बढ़ाती थी। अन्तमें १० चैत्र (२१ मार्च) को गोराखेना दुर्गमें प्रविष्ट हो गयी। नगरमें सर्वसाधारणका वध हुआ। सारा नगर उजड़ गया। इस दुःखके समयमें तांतिया टोपी अपने सिपाही लिये झांसी आ पहुंचा पर उसके सिपाहियोंने बड़ी कायरता दिखायी। रानीने जब झांसीकी यह दशा देखी तो उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह चली। अन्तमें रात्रिको सब सरदारों को सम्मतिसे चुने हुए सवार ले हाथीपर चढ़कर वह वहांसे निकल काल्पीकी ओर चली। [illegible] उसका पीछा किया। ज्यों ही वह रानीके सामने आया रानीने तलवारसे वार किया, वह घायल होकर भूमिपर गिर पड़ा। [illegible] रानी [illegible] और [illegible] पहुंची। उसका घोड़ा भी [illegible] [illegible] था। [illegible] ही भूमिपर गिर पड़ा और मर गया। [illegible] रानी और तांतिया [illegible] युद्धको तैयार हो। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] परास्त किया। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गया।

रानी लक्ष्मी बाईकी वीरता

ह्यूरोज़ सेना लेकर आया। उसने तांतिया टोपीको पराजित किया। तांतियाटोपी परस्पर मतभेदके कारण चला गया। यमुनाके तटपर झांसीकी रानीने युद्धवस्त्र पहने, आंग्लसैनिकोंको परास्त किया। अगले दिन सेनाको एकत्र कर ह्यूरोज़ फिर आ गया। इस बार उसने काल्पीपर अधिकार कर लिया परन्तु, राव साहब, बान्दाका नवाब और रानी तथा उनके सब साथी वहांसे निकल गये। तांतिया ग्वालियरसे कुछ सेना एकत्र करके गोपालपुरमें इनसे आ मिला। अब सब ग्वालियरको चल पड़े। वहां सिन्धिया अपनी तोपें लेकर इनके विरुद्ध आया। रानी रसाला लेकर उसपर टूट पड़ी और उसने उसकी सेनाको भगा दिया। सिन्धिया वहांसे भागकर आगरा पहुंचा। ग्वालियरके सब लोग, सरदार और ठाकुर पेशवाकी ओर आ गये। इस प्रकार तांतियाने सैन्यविप्लवका एक और बड़ा केन्द्र-स्थान बना लिया। उधरसे ह्यूरोज़ सिन्धियाको साथ लिये अपनी सेनाके साथ ग्वालियर आ पहुंचा। तांतियाटोपी आगे बढ़ा। रानी अपने युद्धवस्त्र धारणकर सामना करनेके लिये तैयार हो गयी। उसकी सहायिका दो और सखियां मन्दिरा और काना थीं। इनके मोकाबलेपर जनरल स्मिथ था। जब वह आक्रमण करता तब रानी बड़ी वीरतासे उसका उत्तर देती। इस प्रकार ३ आषाढ़ (१७ जून) को स्मिथको पीछे हटना पड़ा। ४ आषाढ़ (१८ जून) को फिर उसने आक्रमण किया। रानी भी तय्यार थी, किन्तु उसके पीछेसे ह्यूरोज़की सेना आ रही थी। रानी अपने कतिपय सवार लेकर आंग्लसेनामेंसे निकल भागी। एक अंग्रेज़ सिपाहीने उसकी सखीको मार डाला। वह रानीके हाथसे मारा गया। रानी निकली जा रही थी, अंग्रेज़ सिपाही पीछा कर रहे थे। मार्गमें एक नाला पड़ा। घोड़ा नया था, वहीं अड़ गया। इतनेमें आंग्ल सैनिक आ पहुंचे। रानीने तलवारसे सामना किया किन्तु पीछेसे एक तलवार उसके सिरपर लगी। रक्तसे भरी हुई वह नीचे गिर पड़ी। एक नौकर उसे उठाकर पासकी कुटियामें ले गया। वहांपर बाबा गंगादास द्वारा मुंहमें जल डाले जानेपर उसकी आत्माने इस नश्वर शरीरको छोड़ दिया। रानीका शरीर उसके कथनानुसार शीघ्र ही जला दिया गया। इस प्रकार वह वीर स्त्री २३ वर्षकी आयुमें अपने जीवनमें एक चमत्कार दिखा गयी। कोल्हापुर, जबलपुर इत्यादिमें भी शोर हुआ पर शीघ्र ही दबा दिया गया। निज़ामकी मैत्रीने हैदराबादको सर्वथा सुरक्षित रखा।

चौथा प्रकरण।

कम्पनीके राज्यकी समाप्ति।

इसके पश्चात् संवत् १९१५ के १५ कार्तिक (१ नवम्बर १८५८ ई०) को कम्पनी सरकारकी समाप्ति कर राजेश्वरी विक्टोरियाने भारतका राज्य अपने हाथमें लिया। एक बड़ा घोषणापत्र प्रकाशित कर सारे देशमें बांटा गया जिसमें इन सबको क्षमा दी गयी जो सरकारके विरुद्ध लड़े थे। प्रतिज्ञायें की गयीं कि भविष्यमें किसी राजाकी रियासत ज़ब्त नहीं की जायगी, किसीके धर्ममें हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा, सबको धर्ममें पूर्ण स्वतंत्रता होगी, बिना किसी पक्षपातके पद दिये जावेंगे, इत्यादि।

महारानी विक्टोरियाकी घोषणा

इधर दिनपर दिन विद्रोहका दमन होते देख नानासाहब अवधकी बेगम आदि नेपालमें पहुंचे। उनके साथ पचास, साठ सहस्र सैनिक भी थे। उन्हें आशा थी कि नेपालका आर्य राजा हमारी सहायता करेगा, पर जंगबहादुरने उन्हें आश्रय देनेसे भी इन्कार कर दिया। नाना साहबने बड़ा कठोरपत्र लिखा और कहा कि यदि नेपालका राजा हमारे साथ हो तो जो कुछ हम जीतें वह नेपालका राज्य होगा। साथ ही यह भी लिखा कि हम लौटनेकी अपेक्षा आर्योंके हाथोंसे मर जाना उत्तम समझते हैं। इसपर जंगबहादुरने आंग्लसेनाको अपनी रियासतमें आ कर उनको नष्ट करनेकी आज्ञा दे दी। बहुतसे जंगलोंमें भाग गये और वहीं भूखों मर गये।

विरोधियोंका नेपाल-गमन

तांतिया अभी लड़ता रहा। अन्तमें २५ चैत्र १९१६ (८ अप्रैल १८५९) को वह पकड़ा गया और उसे फांसी दी गयी। इस प्रकार यह तूफान भारतमें आ कर चला गया। इसकी असफलताका कारण यह था कि इन्हीं दुर्जय सेनाओंने अंग्रेजोंके लिये पंजाबकी विजय की थी। अब बदला लेनेके लिये पंजाबियोंने इनके लिए भी विजय करा दी। इसके पश्चात् धार्मिक स्वतन्त्रता स्थापित हो गयी।

तांतिया टोपीका अन्त, सात वर्ष पूर्व

रियासतें सदाके लिए बच गयीं पर साथ ही अंग्रेजी सरकारने सर्व साधारणका शस्त्र रखना बन्द कर दिया। इसका एक बड़ा परिणाम यह हुआ कि आंग्लस्थान अब समस्त भारतकी विजय करनेके लिये जो तय्यारी कर रहा था, उसने उसका त्याग कर दिया। इस प्रकार भारत इस आक्रमणसे बच गया।

तूफानके पश्चात् स्वभावतः शान्ति हुई। महर्षि दयानन्द और इत्यादि अब इस तूफानमें काम आये। सर्वसाधारणका उनका प्रभाव हटा हुआ था। यह शान्ति अढ़ाई शताब्दी तक विस्तार बनी रही।

नवयुग प्रभात

पाँचवाँ प्रकरण।

ब्रिटिश-साम्राज्य।

ब्रिटिश-साम्राज्य की विशेषता

क है बल्कि विशेषतामें भी बढ़ा हुआ है। राज्यकी आन्तरिक सभा इसीसे प्रकट होती है कि इसने लोगोंके हृदयपर कितना गम्भीर प्रभाव उत्पन्न किया है। प्रभाव अच्छा हो अथवा बुरा, इससे कुछ सम्बन्ध नहीं। जहां तक अनुमान-शक्ति काम कर सकती है इससे पूर्व भारतवर्षमें ऐसा कोई राज्य न था जो इतना विस्तृत हो, और साथ ही जिसने लोगोंके हृदयपर इतना गहरा प्रभाव भी उत्पन्न किया हो। कहा जा सकता है कि इसका कारण आधुनिक कालकी भिन्न भिन्न शालाओंकी उन्नति है। ठीक है, किन्तु फिर भी घटनाए हमारे सम्मुख हैं। जहां अशोकको अपने राज्यकी सीमा बतानेके लिये बड़े बड़े स्तम्भ खड़े करनेकी आवश्यकता पड़ी थी वहां अंग्रेजराज्यकी शालायें, पाठशालायें, रेलवे, तार, डाक और औषधालय आदि लोगोंको इसका स्मरण प्रत्येक समय दिलाते रहते हैं।

किसी देशका दूसरे देशद्वारा पराजित होकर उसके अधीन रहना उसके लाभके लिये नहीं होता। दासत्वमें निःसन्देह बहुत बड़े बड़े दोष हैं। परन्तु इसके साथ हमें यह

जातीय एकता

भी मानना पड़ता है कि ब्रिटिशराज्यके समय अनेक लाभदायक प्रभाव भारतवर्षपर पड़े हैं, चाहे वे स्पष्टरीतिसे हुए हों या अस्पष्ट रीतिसे। इनमें सबसे बड़ा प्रभाव जातीय एकता है। हमारे अन्दर इस जातीय एकताका विचार भारतवर्षके समस्त प्रांतोंके एक शासकके अधीन होनेसे उत्पन्न हुआ है। परमेश्वरके काम करनेका ढंग विचित्र होता है। जब कोई जाति इतनी छिन्न भिन्न हो जाती है कि वह किसी उपायसे भी एक नहीं हो सकती तो उसके लिये इस अवस्थासे गुजरना आवश्यक होता है ताकि दासत्वद्वारा उसमें समानता आजाय। जब भिन्न भिन्न स्थानोंके कैदी एक ही कारागृहमें ठूंसे जाते हैं तब उनके दुःख तथा कष्ट सब एक हो जाते हैं। उनके अन्दर पारस्परिक सहानुभूतिका भाव बड़ा बलवान् हो जाता है। यही सहानुभूतिका सम्बन्ध जातीय एकता है। रेलोंका प्रचार होनेसे एक स्थानसे दूसरे स्थान जाना सुगम हो गया। परस्पर मिलकर हम एक दूसरेको भाई भाई समझने लगे। समाचारपत्रों द्वारा एक स्थानके समाचार दूसरे स्थानको जानेसे हमारी सहानुभूतिका क्षेत्र दिन प्रतिदिन विस्तृत होता गया। इतनेमें लार्ड डफरिनके कालमें 'नेशनल कांग्रेस' (जातीय महासभा) स्थापित की गयी। उसको स्थापित करनेका आशय कुछ ही हो, उसका स्थापन करने वाले चाहे जो हों, हमारा काम केवल यह देखना है कि इस राष्ट्रीय सभाने जातीयताको स्पष्ट रूप देकर

होते हैं और उन्हें कैसे दूर करना चाहिए। पौराणिक पण्डित मानने वाले न थे। वे मुकाबला भी न कर सकते थे परन्तु विरोध अवश्य करते रहे। स्वामी दयानन्दकी क्रियाने ईसाइयोंकी उन्नतिके सामने दीवार खड़ी कर दी।

मैडमने अमरीकामें थियोसफीका प्रवेश

इसके साथ ही मैडम "ब्लावाट्स्की" द्वारा थियोसफी भारतवर्षमें आयी। मैडमने अमरीकामें इसे आरम्भ किया। फिर यह तथा कर्नल आल्काट अमरीकासे चल कर बम्बई पहुंचे। उन्होंने थियोसफिकल सोसाइटीको आर्यसमाजकी एक शाखा स्वीकार किया और स्वामी दयानन्दको अपना गुरु बना कर कुछ काल काम किया। ये कई बातोंमें उनके विरुद्ध हो गये। मैडम ब्लावाट्स्की तथा कर्नल आल्काटने मद्रासमें जाकर इसे अपना केन्द्रस्थान बनाया। इधरके कई पढ़े लिखे मनुष्य उसे आर्यधर्मको बचाने वाली क्रिया समझ कर इसमें शामिल हो गये।

संयुक्तप्रान्तमें एक ही क्रियाने ज़ोर पकड़ा और वह गोरक्षिणी सभा थी। यह आधी राजनीतिक, आधी धार्मिक थी। इसके कारण उस भागमें आर्य तथा मुसलमानोंके विवाद भी अधिक होते रहे। गतकालमें ब्राह्मसमाजके गिर जानेपर बंगदेशमें स्वामी विवेकानन्दके वेदान्तका प्रचार हुआ। स्वामी विवेकानन्दके कामका बड़ा अंश यह था कि उन्होंने अमरीका आदि देशोंमें हिन्दू धर्मके सिद्धान्तोंका प्रचार कर संसारमें यह सिद्ध कर दिया कि पश्चिमी देशोंको धार्मिक संसारमें भारतवर्षसे अभी बहुत कुछ सीखना है।

जातीय महासभा

जातीय महासभा सम्वत् १९४० में स्थापित की गयी। इसके स्थापनका अभिप्राय यह था कि शिक्षितवर्गके नेता प्रतिवर्ष भारतके किसी नगरमें एकत्र होकर देशकी परिवेदनाओंको गवर्नमेण्ट तक पहुंचा दें। आरम्भमें गवर्नमेण्ट इसकी वृद्धि चाहती थी परन्तु तीन चार वर्षके भीतर महासभा स्वतन्त्र सी होने लगी और सरकारने भी अपना प्रवाह बदल दिया। कई वर्षों तक कांग्रेसमें भारतवर्षके भिन्न भिन्न प्रान्तोंके प्रसिद्ध प्रसिद्ध नेता तथा पुरुष एकत्र होते रहे। सरकारने इनके दुःखनिवेदनों या आवश्यकताओंपर कुछ भी ध्यान न दिया। महाराष्ट्र प्रान्तमें केवल राजनीतिक विचारोंका प्रचार था। मराठा इतिहास वहांके लोगोंको अपनी राजनीतिका स्मरण कराता है। एक प्रकार इस प्रान्तमें राजनीतिक झगड़े भी होते रहे। अन्ततः शान्तिके कालमें जातीय महासभाका ज़ोर केवल महाराष्ट्रमें रहा। इसका कारण यह था कि महाराष्ट्र देशका एक राजनीतिक नेता विद्यमान था। [illegible] जातीय जीवन उत्पन्न करके जातिमें [illegible] आदर्श अपने आप [illegible] बना लिया। महाराज [illegible] वहां एक काल रहा। प्रतिवर्ष देशके किसी नगरमें उत्सव करके व्याख्यानों तथा प्रस्तावों द्वारा राजनीतिक जागृति उत्पन्न करना ही [illegible] जातीय महासभाका काम रहा।

भारतवर्षके भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें कोई राजनीतिक समानता थी, और न [illegible] हुई थी। अब समय आर्यसमाजकी देशभक्ति और स्वार-

शीलता बहुत बड़ी हुई थी, कांग्रेसके कामकी विशेष सत्ता न थी । जहाँ कहीं देशमें दुर्भिक्ष हुआ अथवा भूकम्प आया, या प्लेगका ही प्रकोप हुआ कि आर्यसमाजने अपने स्वयंसेवक तथा उपदेशक भेजकर पीड़ित लोगोंकी सहायता की । आर्यसमाजने स्वदेशीका थोड़ा बहुत प्रचार भी किया, अछूत जातियोंको उठाने और उनको शिक्षा देनेका भी प्रबन्ध किया । जातीय महासभा उस समय केवल प्रस्ताव पास करके सरकार-का ध्यान इस बातकी ओर दिलाती रही कि भारतवासियोंको बड़े बड़े पद मिलने चाहियें, उनके साथ अच्छा व्यवहार किया जाना चाहिये । ब्रिटिश गवर्नमेण्टने इन प्रस्तावोंको लापरवाहीसे देखा ।

भारतपर रूस-जापान-युद्धका प्रभाव

कालने रंग बदला । जापान जैसे छोटेसे देशने रूस जैसी बलवती जातिको पराजित कर दिया । दोनों जातियाँ आंग्लजातिके मुकाबलेकी थीं । दोनोंमेंसे किसी-का गिर जाना अंग्रेजोंके लिये प्रसन्नताकी बात थी । जहाँ रूसकी पराजयके उपरान्त अंग्रेज़ोंको प्रसन्नता हुई वहाँ भारतवर्षपर इस युद्धका एक बड़ा प्रभाव यह हुआ कि यहांके लोगोंने निद्रा त्यागी । लार्ड कर्ज़नका काल था । उन्होंने भारतवासियोंकी इच्छाओंकी जितनी ही उपेक्षा की उतनी ही अधिक जलन देशमें उत्पन्न हुई । परिणाम यह हुआ कि अधिक उत्तेजित दल कांग्रेससे असन्तुष्ट हो गया । इस दल वालोंने एक गुप्त तहरीककी नींव डाली, जिसका कुछ कुछ प्रत्यक्ष प्रचार कलकत्तेमें संवत् १९६४ में हुआ । इस आन्दोलनसे पूर्व केवल पूनामें प्लेगसे उत्पन्न हुई अशान्ति-के कारण राजनीतिक हत्या हुई जिसमें रैण्ड एक पिस्तौलसे मार दिया गया । सरकारने केवल सन्देहपर नातू भाइयोंको निर्वासित कर दिया, और तिलक महाराजको एक राजनीतिक अभियोग में १॥ वर्षका दण्ड मिला । मारने वाले दो भाई थे जिनके साथ एक और पुरुष था । वह सरकारी गवाह बन गया और उसने दोनों भाइयोंको पकड़वा दिया । उनका एक तीसरा भाई था । उसने अपनी मातासे आज्ञा मांगी और एक पिस्तौल भर कर न्यायालयमें चला गया । न्यायालयमें अपने भाइयोंके पकड़वानेवालेको उसने गोलीसे मार दिया । तीनोंने अपने प्राण सरकार-को अर्पित कर दिये ।

बंगालके नवयुवकोंका जोश

गवर्नमेण्टको सन्देह था कि तिलक महाराजका हाथ इस हत्यामें था । बंगाल-में श्री अरविन्द घोषने स्पष्ट रूपसे स्वतंत्रताका प्रचार किया । अल्पकालमें ही सारे बंगालमें जोश उत्पन्न हो गया और कई नवयुवक अपने प्राणोंपर खेलनेके लिये तैयार हो गये । कई समाचारपत्र निकलने लगे जिन्होंने स्वतंत्रताकी पताका उत्तोलित की । यह थोड़े दिनोंकी बात थी । गवर्नमेन्ट भी अपनी ओरसे तैयार हो रही थी । उसको तत्काल अवसर मिल गया । जिन नवयुवकोंने गुप्त समिति बनाकर अपने मनुष्य देशसे भेजकर बम्ब बनानेकी विधियाँ सीखी थीं वे मिस्टर किंगस्फोर्डको मारना चाहते थे । जिस बग्गीपर बंब फेंका गया उसपर वह सवार न था, बल्कि दो अंग्रेज़ महिलाएं मारी गयीं । इस सम्बन्धमें जांच करनेपर "मानिकटोला गुप्त षड्-

यन्त्र" प्रकट हुआ जिसमें गोसाईं नामक एक मनुष्य सरकारी गवाह बन गया। बहुतसे नवयुवक पकड़े गये। खुदीराम बोसको बम्ब फेंकनेके अपराधमें फांसी दी गयी। इस साज़िशके अभियोगमें एक अद्भुत बात यह हुई कि एक नवयुवक मुकुन्द कन्हाई-लालदत्तने कारागृहके अन्दर पिस्तौल मँगवाकर सरकारी गवाह गोसाईंको गोलियोंसे मार डाला और स्वयं हंसते हुए फांसीपर चढ़ गया। बंगालमें इतना जोश था कि इस नवयुवककी भस्म पवित्र समझी गयी।

लार्ड कर्जनने बंगालके दो भाग कर दिये। बंगभाषा बोलने वाली जनताने समझा कि यह हमको निर्बल करनेके लिये किया गया है। इसपर बंगालमें बड़ा विक्षोभ हुआ। जब इससे कोई लाभ प्रतीत न हुआ तो लोगोंने स्वदेशी और बायकाट (बहिष्कार) का शस्त्र प्रयुक्त किया। इस पथपर चलता हुआ बंगाल तत्काल दूसरी सीढ़ीपर चढ़ गया। स्वदेशी तथा बायकाटकी तरंग उत्तरभारत और पञ्जाबमें आ फैली। पञ्जाबमें सरदार अजितसिंह और लाला लाजपतराय इसके नेता थे। सरदार अजितसिंह और उनके साथियोंके व्याख्यान बड़े प्रभावशाली तथा सरकारके विरुद्ध होते थे। रावलपिण्डी और लायलपुरमें भूमि-कर बढ़ानेपर लोगोंमें अप्रसन्नता फैलनी आरम्भ हुई जिसका प्रभाव सेनाओंपर जा पड़ा। मई (बैसाख) मास समीप

स्वदेशी और बायकाट

[illegible]

इसके गुप्तचरोंने रपोट सुना सुनाकर द्विगुण कर दिया। उन्होंने कहा कि पञ्जाबमें आर्य-समाजियोंकी एक लाख सेना लाला लाजपतरायकी सहायतामें द्रोह करनेके लिये उद्यत है, और आर्यसमाज विद्रोहका केन्द्र है। ११ मई १९०७ ईसवी (२८ बैशाख सं० १९६४) के दुर्दिन लाला लाजपतराय और सरदार अजित सिंह बर्मामें निर्वासित कर दिये गये। इसका अर्थ देशने यह समझा कि गवर्नमेण्ट साधारण राजनीतिक आन्दोलनको दबानेके लिये किसी नियमको ध्यानमें नहीं लाती। प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि यदि गवर्नमेण्ट इस प्रकार लोगोंकी इच्छाओंकी तरफसे आंख बन्द करले तो क्या करना चाहिये। बंगालके नवयुवक गुप्त समितियां बनाकर इस परिणामपर पहुंचे कि जो अफसर इस प्रकार क्रूरता करें उनको अपने प्राणोंके भयमें डाल देना चाहिये। इस नीतिपर चलते हुए इन नवयुवकोंने कितने ही देशी पुलीस अफसरोंका वध किया कई बड़े बड़े अंग्रेज अफसरोंपर बम चलानेका यत्न किया और अपने ध्येय प्राप्त करनेके लिये अनेक डाके डाले। ऐसे कार्योंके करनेसे लोगोंकी सहानुभूति उनसे हट गयी। केवल थोड़े राज्यविद्रोहियोंका समूह रह गया। सरकारको भारतवर्ष तक कई मुकदमे चलाने पड़े। अन्ततः युद्धके आरम्भ हो जानेपर परिमित नवयुवकों-को कैद करके जेलोंमें नज़रबन्द कर देनेसे इस समूहकी लगभग समाप्ति हो गयी।

लाला लाजपतराय का निर्वासन

प्रायः कोई विचार एक स्थानपर ही उत्पन्न होता है पर जहां कहीं उसे उपयुक्त भूमि मिलती है वहींपर वह फूट निकलता है। लन्दनमें भारतीय विद्यार्थियोंकी पर्याप्त संख्या है। पेरिसमें कुछ भारतीय कुटुम्ब रहते थे जो मोतियोंके व्यापारपर निर्वाह करते थे। अमेरिकाकी राजधानी सानफ्रान्सिस्को-के समीप कैलिफोर्निया और वाशिंगटन रियासतोंमें और उसी ओर कैनेडामें कई सहस्र सिक्ख रहते थे। वे खेती या लकड़ी-के कारखानोंमें मजदूरी करते थे। भारतवर्षकी वायुका प्रभाव पहले पहल आंग्ल-स्थानपर हुआ। लन्दनमें कई वर्षसे पंडित श्यामजी कृष्णवर्मा रहा करते थे। वे एक मासिक पत्र "इण्डियन सोशियालोजिस्ट" निकाला करते थे। इसका अभि-प्राय भारतवर्षकी स्वतंत्रताका प्रचार था। यह पत्रिका कांग्रेसकी नीति और उसके कार्यकर्ताओंपर सदा आक्षेप करती थी। लाला लाजपतरायके निर्वासनका प्रभाव लन्दनमें बहुत पड़ा। वहां एक बड़ी पब्लिक मीटिंग की गयी जिसमें मि० हाइन्डमैनने एक लम्बी चौड़ी वक्तृता दी। वहां अगणित स्त्री पुरुष थे जिनको सभामण्डपमें स्थान न मिला। इसपर एक और मण्डपमें सभा की गयी जिसमें उनका जीवनचरित्र सुनाया गया।

विदेशोंमें भारतकी स्वतन्त्रताका प्रयत्न

लन्दनमें एक मकान लेकर श्यामजी कृष्ण वर्माने "इण्डिया हाउस" नामक एक बोर्डिङ्ग हाउस बनाया था जिसमें कुछ भारतीय विद्यार्थी रहा करते थे। उनमें सबसे अधिक जोशीले श्री सावरकर थे। श्री सावरकर उन विद्यार्थियोंके नेता थे जो स्वतंत्रताके इच्छुक प्रतीत होते थे। दिन प्रतिदिन अंग्रेजराज्यके विपरीत उनकी भावना बढ़ती गयी। उसकी सीमा उस समय आ पहुंची जब सर कर्ज़न वाईलीको एक जल्सेमें मदनलाल ढींगराने पिस्तौलसे मार डाला। इस वधका कारण भी यही विचार था कि सर कर्ज़न भारतीय विद्यार्थियोंके विरुद्ध रिपोर्ट करने वाले विभागका अफसर समझा जाता था। मदन लालकी जेबसे एक लिखा हुआ पत्र निकला। उसमें यह लिखा था कि यदि प्रत्येक भारतवासी मेरे सदृश देशको और अपना कर्तव्य पालन करनेपर तैयार हो जाय तो देश तत्काल स्वतन्त्र हो सकता है। राज्य-विप्लवकी तरंगका यह बीजमन्त्र था।

सर कर्जनका वध

इस घटनाके अनन्तर सावरकर पेरिस चले गये। लाला हरदयाल भी वहां ही विद्यमान थे। उन्होंने देशके बाहर स्वतन्त्रताके आन्दोलनका केन्द्र पेरिस-में जा बनाया। इससे चिरकालपूर्व श्यामजी कृष्णवर्मा भी अपना समाचारपत्र वहां ही लेगये थे। वहांपर रहकर और तो कुछ कार्य वे लोग न कर सकते थे, हां ब्रिटिश राज्यके प्रति उन्होंने स्वतन्त्रताके विचारको जीवित रखनेका प्रयत्न अवश्य किया। सरकारको सन्देह था कि सर कर्जनका वध सावरकरकी सम्मतिसे हुआ है। सावरकर इसकी पहुंचसे बाहर थे। उन्होंने सावरकरके बड़े भाई गणेश सावरकरपर राष्ट्रीय कविताओंकी एक पुस्तक छापनेके कारण अभियोग चलाया। हाईकोर्टसे उन्हें मरणपर्यन्त कालापानीका दण्ड मिला। इस अन्यायसे असन्तुष्ट होकर

कुछ मराठा युवकोंने गुप्त षड्यन्त्र किया और नासिकके प्रसिद्ध कलक्टर जैक्सनको एक थियेटरमें मार दिया। मारने वाला युवक पकड़ा गया। उसके मकानकी तलाशी-से उसके सब मित्रोंका पता लग गया। इस अभियोगमें अनेकोंको फांसी और शेषको कालापानीका दण्ड मिला।

श्री सावरकरकी गिरफ्तारी

इस अभियोगमें एक सरकारी गवाहने यह बताया कि वह पिस्तौल जिस-से जैक्सनकी हत्या हुई थी पेरिससे सावरकरने भेजी थी। कथनका यह अंश सर्व-थैव गुप्त रक्खा गया। भारतकी पुलीस लन्दनमें गिरफ्तारीके लिये पहुंची हुई थी। सावरकरके कार्योंकी जांच पेरिसमें हो रही थी। अभियोगके वृत्तान्त जाननेपर जब सावरकरका यह विचार हुआ कि मेरे ऊपर कोई दोष नहीं है, तो वे लन्दनके लिये चल पड़े। विक्टोरिया स्टेशनपर पहुंचते ही पुलीसने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। वहांके न्यायालयमें यह मुकद्दमा उपस्थित किया गया। प्रश्न यह था कि क्या भारत सरकार आंग्ल स्थानसे अपराधीको कैद करके वापस मगा सकती है। इसका निर्णय भारत सरकारके पक्षमें हुआ, और श्री सावरकरको जहाजपर लेकर पुलीस भारतकी ओर चली।

मार्सेल्सके पोताश्रयस्थानपर जहाज तटसे कोई आध मील समुद्रमें होगा कि सावरकरने अपने बचावके लिये यत्न किया। यह मनुष्यके अद्भुत साहसका उदाहरण है। सावरकर जहाजके अन्दर स्नानालयमें प्रविष्ट हुए। पोर्ट-होल अर्थात् "गुसलखाने"से नंगे समुद्रमें कूद गये यद्यपि छिद्रसे निकल जाना कठिन प्रतीत होता है। जब पुलीसको सुध हुई तो वे समुद्रका बहुत सा भाग तैर चुके थे। उनके पीछे नौका छोड़ी गयी। सावरकर तटपर पहुंच गये। फ्रैञ्च पुलीस सिपाहीने उन्हें पकड़ लिया और धोखेमें आकर उसने सावरकरको आंग्ल अफसरके सुपुर्द कर दिया।

अब एक बड़ा भारी अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न उपस्थित हुआ कि क्या अंग्रेज फ्रांसकी भूमिसे राजनीतिक अपराधीको ले सकते थे या नहीं। फ्रांसीसी राजसभाने जोर दिया कि उन्हें सावरकरको लौटा देना चाहिये। मुकदमा कई मास-पर्यन्त बम्बईमें मुल्तवी किया गया। अन्ततः यह मुकदमा बम्बई हाईकोर्टमें गया। वहां न्यायाधीशोंने यह निर्णय किया कि यदि अपराधी फ्रांसकी भूमि-पर होता तो आंग्लस्थान किसी प्रकारसे उसे पकड़ न सकता था। किन्तु जब कि फ्रांसके एक कान्स्टेबलकी अज्ञानतासे वह अंग्रेजी गवर्नमेण्टके अधिकारमें चला गया है तो वह किसी प्रकार उसे लौटानेपर मजबूर नहीं की जा सकती। सर्वा-पत सावरकरको कालापानीका दण्ड हुआ, और वे भी अपने भाईके पास उसी कारागृहमें जा पहुंचे। परन्तु वे वहां अपने भाईसे मिल नहीं सकते थे।

लाला हरदयाल फिरते फिराते सानफ्रान्सिस्को जा पहुंचे। इस प्रान्तमें ऐसे पंजाबियोंकी पर्याप्त संख्या थी जो मजदूरी करके धन एकत्र करते थे। साथ ही अमे-रिकामें कई वर्ष रहनेसे उनके मन स्वतन्त्र हो गये थे। उनके अन्दर देशानुरागका भाव बड़े वेगसे काम करता था। लन्दन और पैरिसमें तो राज्यविप्लवकी अग्नि शान्त हो रही थी। भारतवर्षमें भी धीमी पड़ गयी किन्तु एक घटनाने उसे पुनर्जीवित कर दिया और वह घटना थी दिल्लीमें लार्ड हार्डिंगपर बम्बका फेंका जाना।

राजनीतिक अपराधियोंको दण्ड

का दण्ड दिया गया। लाहौरमें षड्यंत्रके मुकदमे तीन चार वर्ष पर्यन्त कारागृहमें निरन्तर होते रहे, जिनमें अपराधियों और सरकारी गवाहोंकी संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती गयी। जो पुरुष अपने आपको बचाना चाहता था कई और मनुष्योंको फंसा कर एक नया मुकदमा खड़ा कर देता था। ये सब मुकदमे 'डिफैन्स आफ इण्डिया ऐक्ट' (भारत-रक्षा-विधान) के अन्तर्गत थे। इनके लिये कोई अपील न थी। सौसे अधिक व्यक्तियोंको फांसी दी गयी, कितने ही आमरण कैद किये गये, कितने ही सिपाही गोलीसे मार दिये गये।

इस समय बर्लिन भारतवर्षकी स्वतंत्रताका केन्द्र बन गया। बंगाली, पंजाबी और दूसरे लोग वहां आ एकत्र हुए। उन्होंने जर्मन गवर्नमेण्टके अधीन एक आन्दोलन कमेटी बनायी। वे जर्मन कमेटीसे सहायता लेकर अमेरिकाके भारतवासियों द्वारा ग़दर पार्टीकी सहायता करते थे।

युद्धमें भारतकी सहायता

इस युद्धमें भारतीय सेनाने फ्रांस, टर्की और मैसोपोटेमियामें जान तोड़ कर अंग्रेज़ सरकारकी सहायता की। आरम्भमें जब कि अंग्रेज़ जर्मन आक्रमणसे सदा भयभीत रहते थे, भारतीय सेनाने अपने प्राणोंसे पैरिसको आक्रमणसे बचा दिया। इङ्गलैण्डका दावा युद्धमें यह था कि वह बल बलहीन तथा छोटी जातियोंकी रक्षाके लिये युद्ध कर रहा है, जिन्हें जर्मनी अपने अधीन करना चाहता था। जब युद्धकी गति इङ्गलैण्डके पक्षमें हुई तो इसे केवल रूसकी ओरसे आक्रमणका भय था। उस समय भारतवर्षको अपने साथ रखनेके लिये और अपने दावेको क्रियारूपमें सिद्ध करनेके लिये इङ्गलैण्डने भारतवर्षको स्वराज्य देनेकी प्रतिज्ञा की। वह प्रतिज्ञा अन्तमें संशोधित व्यवस्था—मांटेगू-चेम्सफर्ड रिफार्म्स स्कीम—में प्रकट हुई।

परन्तु इसके साथ अराजकताका समूल नाश करनेके लिये रौलट जजको भेजकर कमीशन बैठानेके उपरान्त रौलट कानून पास किया गया। इसका उद्देश्य यह था कि जहांपर ब्रिटिश गवर्नमेण्ट एक हाथसे थोड़ा सा टुकड़ा दे रही थी वहां दूसरे हाथसे नियम बनाकर लोगोंके हृदयोंसे स्वतंत्रताकी इच्छाओं या विचारोंका मूल नष्ट करनेका प्रबन्ध भी कर रही थी।

रौलट ऐक्ट

रौलट ऐक्टके विरोधमें देशसे एक स्वर उठा। आर्य, मुसलमान और सिक्ख इसके विरुद्ध उठ खड़े हुए। महात्मा गांधी जिन्होंने सत्याग्रहकी नींव रक्खी थी इस विरोधके नेता बन गये। महात्मा गांधीका पिछला जीवन इस बातकी पर्याप्त साक्षी देता है कि उनके हृदयमें किसी जाति अथवा मनुष्यसे द्वेष नहीं है। महात्मा गांधी सबसे एक सा प्रेम करते थे, परन्तु जहां कहीं अन्याय या अत्याचार होता था वहां वे पीड़ित जनोंकी रक्षामें अपना सर्वस्व बलिदान करनेपर उद्यत थे। उन्होंने युद्धके दिनोंमें अपनी शक्तिसे अंग्रेज़ी सरकारकी सहायता की। उन्होंने समस्त देशसे अपील की कि वह रौलट ऐक्टके विरोधमें ६ अप्रैलको हड़ताल करे। उनकी यह आज्ञा जिस प्रकार

उसका प्रतिकार किया। उसने वैशाखी मेलेके दिन एकत्र हुए लोगोंपर जलियांवाला बागमें गोलियोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। वहांसे बाहर निकलनेके मार्ग बहुत ही थोड़े और बहुतही तंग थे। हज़ारसे ऊपर निर्दोष पुरुष, स्त्री तथा बालक वहां मारे गये। इस दारुण घटनाने देशमें खलबली उत्पन्न कर दी, लोग हवाई जहाज़ों और तोपोंसे डर गये। मार्शल ला समाप्त हुआ। पण्डित मदनमोहन मालवीय और पण्डित मोतीलाल नेहरू पंजाबमें आये। सर्वत्र अनग कर जांच की। महात्मा गांधीने आज्ञा दी कि जब तक गवर्नमेण्ट खिलाफ़तके अन्याय और पंजाबके अत्याचारके कलंकको न धो डाले उससे असहयोग किया जाय। इसी आन्दोलनपर इस समय देशकी आंखें लगी हैं।

इति।

शब्दानुक्रमणिका ।

शब्दानुक्रमणिका।

ल

व

स

इस विषयकी अन्य उपयोगी पुस्तकें ।

(१) प्राचीन भारतके सम्बन्धकी ।

१. प्राचीन भारत–श्रीहरिमंगल मिश्रका 'ज्ञानमण्डल' से प्राप्य ।
२. प्राचीन भारतकी सभ्यताका इतिहास श्रीरमेशचन्द्रका अंग्रेजी या हिन्दीमें
३. पूर्व भारत–मिश्र-बन्धुओंका
४. भारतके प्राचीन राजवंश
५. सम्राट हर्षवर्द्धन–श्री सम्पूर्णानन्द कृत
6. V. A. Smith : Early History of India.
7. ,, : Asoka.
8. J. W. McCrindle : Ancient India.
9. T. W. Rhys Davids : Buddhist India.
10. Dr. R. C. Majumdar : Corporate Life in Ancient India.
11. Z. A. Ragozin : Vedic India (Story of the Nations Series).
12. R. C. Dutta : Ancient India.
13. ,, : Civilization in Ancient India.
14. Max-muller : India, What it can teach us.
15. E. J. Rapson : Cambridge History of Ancient India.
16. B. G. Tilak : Arctic Home in the Vedas.
17. A. C. Das : Rig-Vedic India.

(२) राजपूतोंके सम्बन्धकी ।

१. आर्यकीर्ति, बंगलामें
२. भारतकीर्ति-
३. महाराणा प्रतापसिंह–पंडित चन्द्रशेखर पाठक कृत ।
४. मेवाड़का इतिहास–कुंवर हनुमन्तसिंहका
५. राजस्थानका इतिहास–खड्गविलास प्रेसका या वेंकटेश्वर प्रेसका
६. राजकाहिनी, बंगलामें ।
7 Todd : Annals of Rajasthan

(३) मुगलोंके सम्बन्धकी ।

१. अकबर–चन्द्रमौलिशुक्लका
२. औरंगजेबनामा–राय देवीप्रसाद मुंसिफका
३. जहांगीरनामा–,, ,, ,,
४. पठान राजवृत्त–बंगला
५. मुसलमानी राज्यका इतिहास–श्री मन्नन द्विवेदी गजपुरी काशी. ना० प्र० सभाका
६. मोगलवंश–बंगलामें
७. सम्राट् अकबर
8. Colonel Franklin : Life of Shah Alam
9. Stanley Lanepoole : Medieval India
10. ,, ,, : The Muhammadan Dynasties
11 Stanley Lanepoole : The Mughal Emperors.
12 H. C. Fanshawe : Delhi, Past and Present.
13 Keene : Fall of the Mughal Empire.
14 ,, : Turks in India.
15 Prof. Jadunath Sarkar : History of Aurangzeb
16 ,, : Nadir Shah's invasion.
17 ,, : Studies in Mughal India.
18 ,, : Later Mughals.
19 ,, : Mughal Administration.
20 ,, : Anecdotes of Aurangzeb
21 Prof. K. R. Qanungo : Sher Shah.

22 Prof. Beni Prasad: Jehangir.
23 F. F. Catram · General History of the " " Moghul Empire.
24. " " Moghul Empire.
25. " " India under Muhammadan Rule.
26 Col Malleson: Akbar.
27. S. Lanepoole. Babar.
28. " Aurangzeb.

(४) मराठेंके सम्बन्धकी।

१ मराठे और अंग्रेज–श्री नृसिंह-चिन्तामणि केलकर, मराठी अथवा हिन्दीमें
२. मराठोंका उत्कर्ष–श्री रानाडेकृत, अंग्रेजी अथवा हिन्दीमें
३. महाराष्ट्र रहस्य–श्री लक्ष्मणनारायण गर्दे।
४. माधोराव सिंधिया–श्री सम्पूर्णानन्द
5. Prof. Jadunath Sarkar: Shivaji.
6. M. G. Ranade. The Rise and Fall of the Maratha Empire
7. J. C. Duff: History of the Marathas
8 J. C. Morison: Madho Rao Sindhia.
9 L W. Shakespear. Local History of Poona and its Battlefields.
10 H. G. Keene: Madho Rao Sindhia.

(५) सिक्खोंके सम्बन्धकी।

१. इतिहास गुरु खालसा–श्री गोविन्दसिंहका
२. तवारीख पटियाला–उर्दूमें
३. तवारीख पंजाब–राय कन्हैयालालकृत
४. पंजाबकेसरी–श्री नन्दकुमार देवशर्मा (हिन्दी गौरवग्रन्थमाला)
५. बंदा बहादुर–गुरुमुखीमें
६. महाराज रणजीतसिंह–श्री वेणीप्रसाद-कृत (मनोरंजक पुस्तकमाला)
7 W O Osborne Court and Camp of Ranjit Singh
8 H T Prinsep Origin of the Sikhs
9 W Q M'gregor History of the Sikhs
10. J. M. Honigbberger · Thirty-five years in the East
11 " " Anecdotes from Sikh History
12. Sir Lepel Griffin: Ranjit Singh [Rulers of India Series.]
13. Frederick Cooper: The Crisis of the Punjab.
14 Rev. J Brown. The Punjab and Delhi in 1857.
15 Syed Muhammad Latif History of the Punjab
16 Gokulchandra The Transformation of Sikhism
17 Sir Lepel Griffin *Punjab Rajas.*

(६) अंग्रेजोंके सम्बन्धकी।

१. पलासीकी लड़ाई–निखिलनाथ सरकार कृत, बंगला तथा हिन्दीमें
५. सिपाही-विद्रोह-भुवनचन्द्र मुखोपाध्याय, बंगलामें
३. सन्-५७ का गदर–श्री चन्द्रशेखर पाठक
४. सन् १८५७ के गदरका इतिहास–श्री शिवनारायण द्विवेदी, दो भाग।
5 S J Strachey Hastings and Rohilla War
6 Wheeler Early Records of British India.
7 " *India Under British Rule*
8 Woodward Expansion of the British Empire
9 " Outline History of British Empire.
10 Adam Makers of British India.
11 *James Grant Casell's History of* India.

12. J. M. Honighberghar Thirty-five years in the East.
13. M.S. Elphinstone: History of India
14. Sir John Strachey. India.
15 V. A. Smith. Oxford History of India.
16. Harprasad Shastri History of India
17. Sinclair: History of India.
18. Taki: Brief History of India.
19. Taylor: Student's Manual of the History of India
20 Trotter: History of India.
21. F. T. Wheeler: *Short History of India*
22 E. M Duff: College History of India.
23. „ Chronology of India
24. Dr. James Burgess. The Chronology of Modern India
25. Foster: Heroes of the Indian Empire
26. W W Hunter History of the Indian Empire.
27 H. G Keine. History of India 2 Vols
28. Lilly India and Its *Problems*
29. G B. Malleson: The Decisive Battles of India.
30 „ : Final French, Struggles in India
31 Sir H M. Elliot. History of India
32 Flora Annie Steel: India through the Agra.
33. C F. De La Fosse. History of India.
34 R. S. Whiteway. The Rise of the Portuguese Power in India
35 H. H. Wilson: History of India.
36 J. Grant. *History of India*
37. Hunter. Indian Empire
38. Rowbinson: Indian Historical Studies.
39 Malleson. Native States of India
40 L B Bowring: Hyder Ali and Tipu Sultan
41 Sir W Warner Native States of India
42. H M Stephens: Albuquerque
43 Col. Malleson: Dupleix
44. Legge. Travels of Fa-hien.
45 Thompson. History of India.

कुछ प्रसिद्ध घटनाओंकी सूची।

विक्रमसे पूर्व

३०४५ कलियुगका प्रारंभ

५४२ जैनधर्म प्रवर्तक श्रीमहावीरका जन्म

५०० भगवान् गौतमबुद्धका जन्म (पाली ग्रन्थ के आधार पर तथा सिंहल द्वीपोंके मतसे वि० पू० ५६५, किसी किसीके मतसे ५१० भी)

४२० गौतमबुद्धकी मृत्यु, राजगृहमें बौद्धोंकी पहली सभा

३२० राजगृहमें बौद्धोंकी दूसरी सभा

२७० भारतपर सिकन्दरकी चढ़ाई

२६६ बैबिलनमें सिकन्दरका देहान्त

२४९–२११ चन्द्रगुप्तके दर्बारमें मेगास्थनीजका निवास

२१६ अशोकका राज्यारंभ

२१२ अशोकका राज्याभिषेकोत्सव

१८३ पटनेमें बौद्धोंकी तीसरी सभा

विक्रमाब्दसे

१३५ शालिवाहन संवत्का प्रारंभ, बौद्धोंकी चौथी सभा (किसी किसीके मतसे १९७)

४५६ फाहियानका भारत-प्रवेश

६६३ हर्षवर्द्धनका राज्यारम्भ

६६९ हर्षवर्द्धनका राज्याभिषेकोत्सव

६९१ शिलादित्यके समय बौद्धधर्मकी सभा

७६८ सिन्धपर अबुल (मुहम्मद कासिम) कासिमकी चढ़ाई

१०२६ गज़नीपर जयपालका आक्रमण

१०५४ सुबुक्तगीनकी मृत्यु

१०६५ महमूद गज़नवीका पहला आक्रमण

१०८१–८२ महमूद गज़नवीका सोलहवाँ आक्रमण

१३६० पद्मिनीके लिये अलाउद्दीनका चित्तौड़पर आक्रमण

१४५५ तैमूरकी चढ़ाई

१४०४ से १५८२ बाहमनी राज्य

१५४२ चैतन्यका जन्म

१५८३ पानीपतका पहिला युद्ध

१६०१ दादूका जन्म

१६१३ पानीपतका दूसरा युद्ध

१६३२ (श्रावण शुक्ला सप्तमी) हलदी घाटका युद्ध

१६६५ स्वामी रामदासका जन्म

१६८४ शिवाजीका जन्म

१६९५ मैसूरके राजा कान्तिरेवका राज्याभिषेक

१७२७ सिंहगढ़ विजय

१७४२ औरंगजेबका दक्षिण भारतपर आक्रमण

१७७९ सआदत खां अवधका नवाब

१७८२ मुर्शिद कुलीखांकी मृत्यु

१७९५ नादिर शाहका आक्रमण

१७९६–१८१२ अलीवर्दीखां, बंगालका नवाब

१८०० बंगालपर नृ॰ पेशवाकी चढ़ाई

१८०४ अहमदशाह अब्दालीका पहिला आक्रमण (लेन्‌ पूलके अनुसार)

१८०५ अहमदशाहका दूसरा आक्रमण

१८११ ,, का तीसरा आक्रमण

१८१४ प्लासीकी लड़ाई

१८१७ अहमद शाहका चौथा आक्रमण

१८१८ पानीपतका तीसरा युद्ध

१८२१ बक्सरका युद्ध

१८२६ बंगालका दुर्भिक्ष

१८३९ सालबाई अंग्रेजोंकी सन्धि

१८३० रेगुलेटिंग एक्ट पास हुआ

चित्र-सूची ।